आत्मधर्म विशेषांक

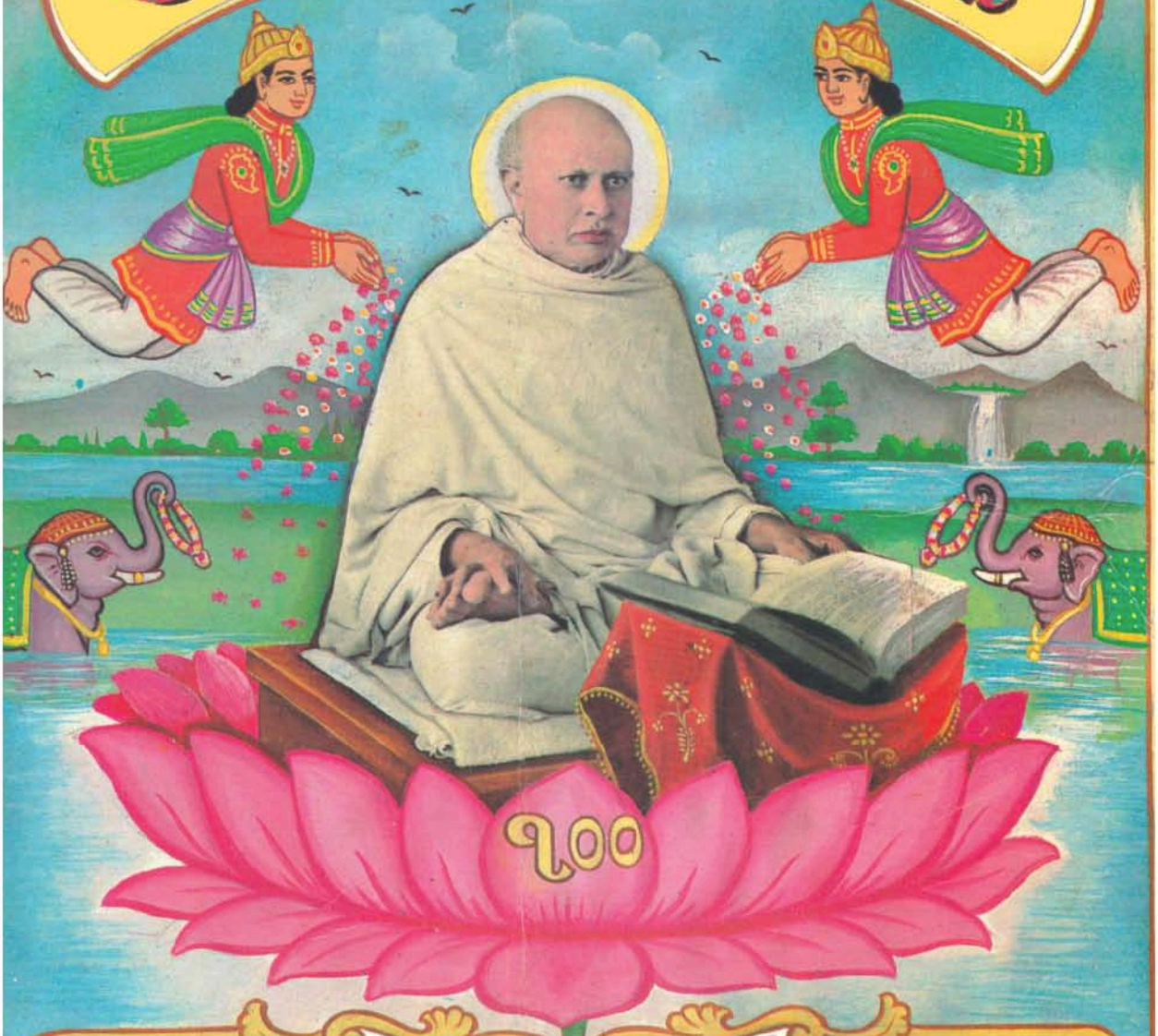

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी जन्मशताब्दी

वि. सं. २०४५
वैशाख शुक्ल २

द्रव्य सकळनी स्वतंत्रता जग मांही गजावनहारा,
वीरकथित स्वात्मानुभूतिनो पंथ प्रकाशनहारा.

५२५-५२६ वर्ष ४४
अंक १०-११

तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रकाशित दिगम्बर जैन धर्म ही सत्य है, ऐसा गुरुदेव ने युक्ति-न्याय से सर्व प्रकार स्पष्ट रूप से समझाया है। मार्ग की खूब छानबीन की है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, आत्मा का शुद्ध स्वरूप, सम्यग्दर्शन, स्वानुभूति, मोक्षमार्ग इत्यादि सब कुछ उनके परम प्रताप से इस काल सत्यरूप से बाहर आया है। गुरुदेव की श्रुत की धारा कोई और ही है। उन्होंने हमें तरने का मार्ग बतलाया है। प्रवचन में कितना मथ-मथकर निकालते हैं! उनके प्रताप से सारे भारत में बहुत जीव मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं। पंचम काल में ऐसा सुयोग प्राप्त हुआ, वह अपना परम सद्भाग्य है। जीवन में सब उपकार गुरुदेव का ही है। गुरुदेव गुणों से भरपूर हैं, महिमावन्त हैं। उनके चरणकमल की सेवा हृदय में बसी रहे।

— बहिनश्री चम्पाबेन

आत्मधर्म

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी-जन्मशताब्दी-विशेषांक

विषयानुक्रमणिका

विषय	
अनन्त-अनन्त वन्दन	(—श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी)
उद्‌गार	(श्री नानालालभाई जसाणी)
आनन्द-ऊर्मि के स्वस्तिक	(पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन)
गुरुभक्ति भीने हृदयोद्‌गार	(पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन)
उपकृतभावभीनी वन्दना	(श्री हिम्मत जे. शाह)
हुकमचन्दजी सेठ के उद्‌गार	
वचनामृत शतक	
विशाल शास्त्र स्वाध्याय	
कुछ अवतरण	
सम्यग्दर्शन की विधि और पुरुषार्थ	
सातिशय प्रभावनायोग	(ब्रह्मचारी चन्दूभाई झोबालिया)

काव्य विभाग

स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे
मधुराधिपति कानजीस्वामी
भक्ति वन्दना
आजे भरतभूमिमां....
अध्यात्मरसना राजवी कहानगुरु
उस देश को भी धन्य है
मेरा मनडा मांही गुरुदेव रमे;
भारतखण्डमां सन्त अहो जाग्या....

श्री समयसार परमागम विषे

पूज्य गुरुदेवश्रीना हृदयोद्गार

(पोताना ही हस्ताक्षरमां)

ॐ

નમઃ સિદ્ધેભ્યઃ

ભગવાન શ્રી કુંદકુંદાચાર્યદેવ સમયપ્રાભૃતમાં કહે છે કે, હું જે આ ભાવ કહેવા માગું છું તે અંતરના આત્મસાક્ષીના પ્રમાણ વડે પ્રમાણ કરજો; કારણ કે આ અનુભવપ્રધાન શાસ્ત્ર છે, તેમાં મારા વર્તતા સ્વ-આત્મવૈભવ વડે કહેવાય છે. આમ કહીને છઠ્ઠી ગાથા શરૂ કરતાં આચાર્યભગવાન કહે છે કે 'ઓ~~આત્મ~~ આત્મ-દ્રવ્ય અપ્રમત્ત નથી અને પ્રમત્ત નથી એટલે કે એ બે ~~અ~~ અવસ્થાનો નિષેધ કરતો હું એક જાણનાર અખંડ છું - એ મારી વર્તમાન વર્તતી દશાથી કહું છું.' મુનિપણાની દશા અપ્રમત્ત અને પ્રમત્ત એ બે ભૂમિકામાં હજારો વાર આવ-જા કરે છે, તે ભૂમિકામાં વર્તતા મહા મુનિનું આ કથન છે.

સમયપ્રાભૃત એટલે સમયસારરૂપી ભેટણું. જેમ રાજાને મળવા ભેટણું આપવું પડે છે તેમ પોતાની પરમ ઉત્કૃષ્ટ આત્મદશાસ્વરૂપ પરમાત્મદશા પ્રગટ કરવા સમયસાર-જે સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રસ્વરૂપ આત્મા તેની પરિણતિરૂપ ભેટણું આપ્યે પરમાત્મદશા—સિદ્ધદશા—પ્રગટ થાય છે.

આ શબ્દબ્રહ્મરૂપ પરમાગમથી દર્શાવેલ એકત્વવિભક્ત આત્માને પ્રમાણ કરજો, હા જ પાડજો, કલ્પના કરશો નહિ. આનું બહુમાન કરનાર પણ મહાભાગ્યશાળી છે.

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

कुंदकुंद-भारतीना पनोता पुत्र, परमागम-अनुवादक आ०पं०
श्री हिम्मतभाई जेठालाल शाहना भक्तिभीना हृदयमांथी वहेली

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

जन्मशताब्दी-विशेषांक

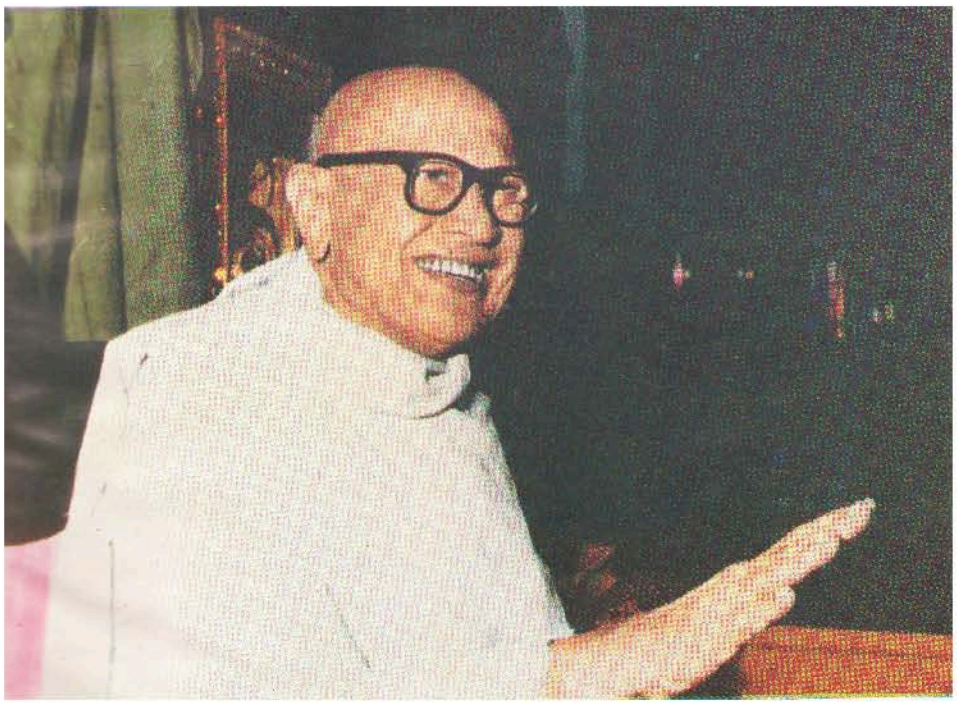

अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

गणनातीत गुरु-उपकार मुज अणु-अणुअे रे,
शब्दोथी केम कथाय, नमुं नमुं भावे रे,
देव-गुरु तणो वसवाट सदा मुज दिलमां रे,
शिवपद तक रहुं तुमदास-भावुं उरमां रे....

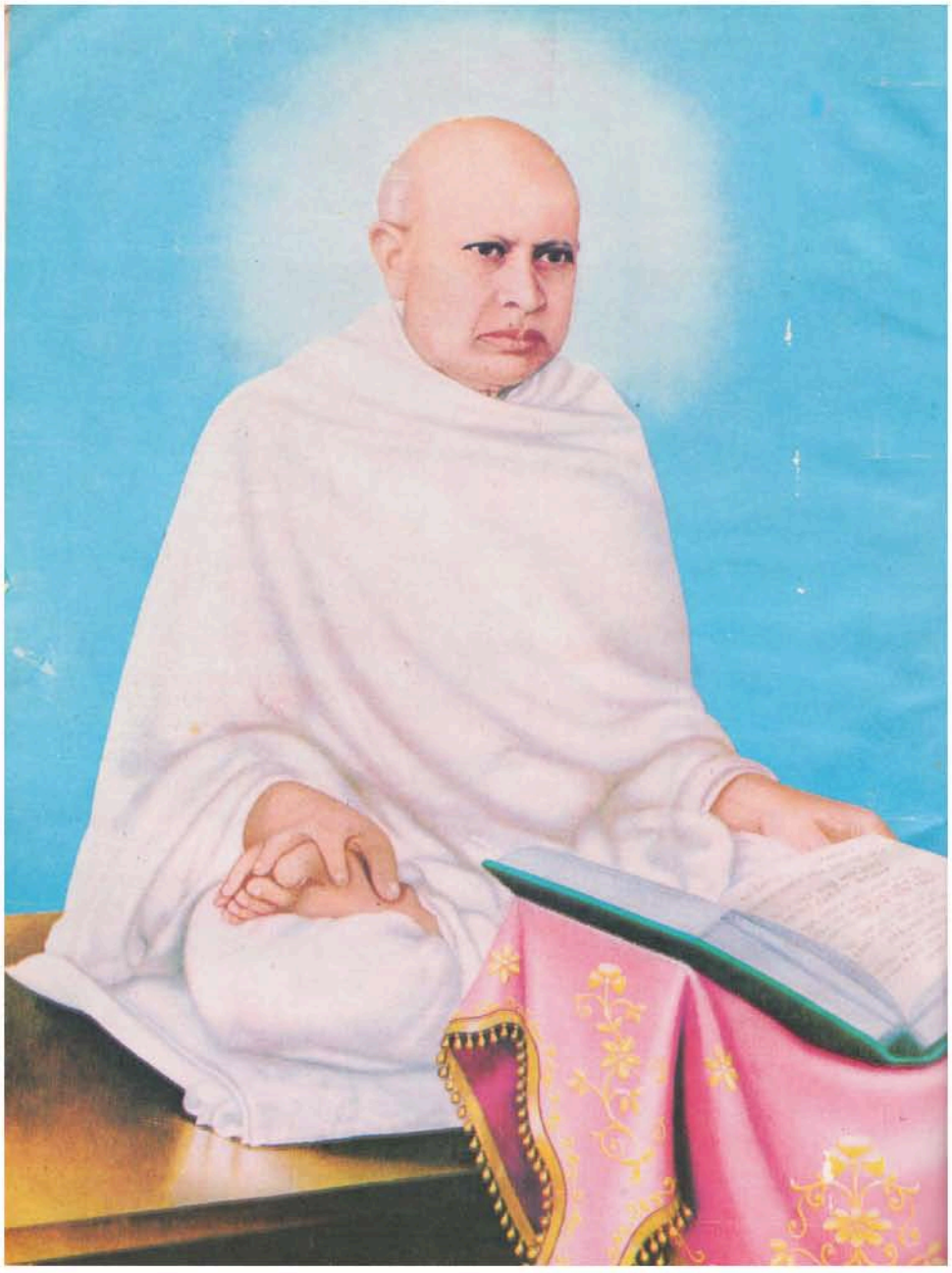

परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

卐 आत्मधर्म 卐

द्वादशांग का सार, खोलता सन्तहृदय का गहरा मर्म।
गुरुवर-अन्तर-आशिषपूत सुमंगलमय यह 'आतमधर्म'॥

[पूज्य-गुरुदेवश्री कानजीस्वामी-जन्मशताब्दी-विशेषांक]

अप्रेल-मई, 1989] अंक 10-11 [525-526] [वर्ष-44

स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे

[राग : सीमन्धरमुखथी फूलडां खरे]

उमराळा धाममां रत्नोंनी वर्षा,
जन्म्या तारणहार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

उजमबा-माताना नन्दन आनन्दकन्द,
शीतल पूनमनो चन्द रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥ १॥

मोतीचन्दभाईना लाडीला सुत अहो!
धन्य माता-कुळ-ग्राम रे;
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

दुषम काले अहो! कहान पधार्या,
साधकने आव्या सुकाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥२॥

विदेहमां जिन-समवसरणना
श्रोता सुभक्त युवराज रे;
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
भरते श्रीकुन्दकुन्द-मार्ग-प्रभावक
अध्यात्मसन्त शिरताज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥३॥

वरस्यां कृपामृत सीमन्धरमुखथी,
युवराज कीधा निहाल रे;
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
त्रिकाळ-मंगळ-द्रव्य गुरुजी,
मंगळमूर्ति महान रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥४॥

आत्मा सुमंगळ, दृगज्ञान मंगळ,
गुणगण मंगळमाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
स्वाध्याय मंगळ, ध्यान अति मंगळ,
लगनी मंगळ दिनरात रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥५॥

स्वानुभवमुद्रित वाणी सुमंगळ,
मंगळ मधुर रणकार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
ब्रह्म अति मंगळ, वैराग्य मंगळ,
मंगळ मंगळ सर्वांग रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥६॥

ज्ञायक-आलम्बन-मन्त्र भणावी,
खोल्यां मंगळमय द्वार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
आतमसाक्षातकार-ज्योति जगावी,
उजाळ्यो जिनवरमार्ग रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥७॥

परमागमसारभूत स्वानुभूतिनो
युग सर्ज्यो उजमाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
द्रव्यस्वतन्त्रता, ज्ञायकविशुद्धता
विश्वे गजावनहार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥८॥

सारा भारतमां अमृत वरस्यां,
फाल्या अध्यातम-फाल रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;

श्रुतलब्धि-महासागर उछळ्यो,
वाणी वरसे अमीधार रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥९॥

नगर नगर भव्य जिनालयो ने,
बिम्बोत्सव उजवाय रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
कहानचरणथी सुवर्णपुरनो
उज्ज्वळ बन्यो इतिहास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥१०॥

'भगवान छो' सिंहनादोथी गाजतुं
सुवर्णपुर तीर्थधाम रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
रत्नचिन्तामणि गुरुवर मळिया,
सिद्ध्यां मनवांछित काज रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥११॥

अनन्त महिमावन्त गुरुराजने
रत्ने बधावुं भरी थाळ रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे;
पावन ए सन्तनां पादारविंदमां
होजो निरन्तर वास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे॥१२॥

अनन्त-अनन्त वन्दन

[संकलित]

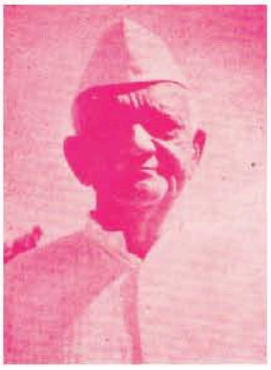

—श्री रामजीभाई माणेकचन्द दोशी

मोक्षमार्ग के पथिक कृपालु गुरुदेव! आपने इस पामर पर अपार उपकार किया है, आप स्वयं मोक्षमार्ग में विचर रहे हो और स्वयं की दिव्य श्रुतधारा द्वारा भरतभूमि के जीवों को सततरूप से मोक्षमार्ग दिखा रहे हो। आपकी पवित्र वाणी में मोक्षमार्ग के मूलरूप कल्याणमूर्ति सम्यक्-दर्शन का माहात्म्य निरन्तर बरस रहा है। आपका पवित्र समागम तथा आपकी सनातन-सत्य-वीतराग-मार्गबोधक अध्यात्मवाणी का अमूल्य लाभ लगभग अर्ध शताब्दी से मुझे मिलता रहा है। सोनगढ़ में आपने सम्प्रदाय छोड़कर मंगल परिवर्तन किया। बाद में आपके प्रभावना-उदय की पवित्र छाया में 'श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट' स्थापित करने का तथा उसका संचालन करने की सेवा का लाभ आपकी सत्कृपा से मुझे मिला है। उसे जीवनपर्यन्त निभाने की शक्ति आपश्री के पुण्य प्रताप से मुझे मिले ऐसी मेरी भावना है। 'आत्मधर्म' का सम्पादन, समयसार वगैरह सत्शास्त्रों का प्रकाशन तथा आपके प्रवचन साहित्य का प्रकाशन वगैरह वीतराग जिनशासन की प्रभावना के विविध कार्यों में—आपके मंगलकारी प्रभावना-उदय में—योगदान देने का जो अमूल्य लाभ आपके सुप्रसाद से वर्षों तक मिला उसके लिये हे अनन्त अनन्त करुणाकर कल्याणमूर्ति सद्गुरुदेव! आपश्री को मेरे अनन्त अनन्त वन्दन...

सेठ श्री नानालालभाई जसाणी के उद्‌गार

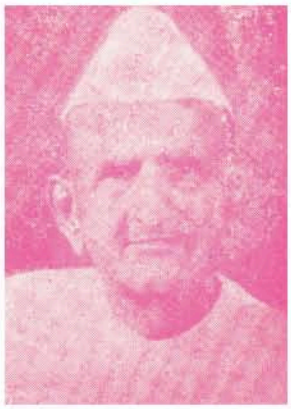

[माननीय सेठ श्री नानालालभाई जो कि आज अपने बीच में नहीं हैं, परन्तु उन्होंने एक बार अपने कुटुम्ब-परिवार के समक्ष गुरुदेव की भक्ति सम्बन्धी जो उद्‌गार कहे और अपने परिवार को भी सोनगढ़ जाकर विशेष लाभ लेने की जो सलाह दी, उससे उनके अन्तर की भावनाओं का ख्याल आ सकता है। यहाँ उनके वे उद्‌गार ही गद्यभक्ति रूप से देने में आये हैं।]

*

मुझे श्रीमद् राजचन्द्रजी के दर्शन बम्बई में हुए और उनके साथ में लगभग 20 दिन उनके घर में रहा था। उनका धर्म के विषय में अति-उच्च बोध था। वे हमेशा रात्रि में आध्यात्मिक स्तवन अपूर्व शान्ति से बोला करते थे। तब से उनकी ओर मेरी खूब जिज्ञासा हुई कि उनके पुस्तक पढ़ूँ और उसमें से बोध प्राप्त करूँ। रंगून में हमेशा एक घण्टा पढ़ता था और मन में ऐसे विचार आते कि ऐसे गुरु कब मिले? 1987 की साल में अमरेली परमपूज्य महाराजसाहेब कानजीस्वामी का परिचय होते विश्वास हो गया कि जो श्रीमद् कहते हैं वही यह कह रहे हैं। तभी से मैंने उन्हें मेरा गुरु स्वीकारा। तुम सब जब-जब समय मिले, तब सोनगढ़ जाना और विशेष लाभ लेना, यह मेरा अनुरोध है।

सेठ रामजी हंसराज ने मुझे अमरेली बुलाया, वहाँ परमपूज्य गुरुदेव कानजीस्वामी का सत्संग हुआ, तब मुझे विश्वास हुआ कि जिस गुरु की शोध में था, वही गुरु मिल गये। तब से उनके सत्संग में रहने का विशेष-विशेष प्रयास करने लगा।

और संवत् 1994 में वे सोनगढ़ विराजते थे, उस समय स्वाध्यायमन्दिर की प्रतिष्ठा थी। उसी समय मुझे ऐसा विचार आया कि ये तो जो कि स्थानकवासी हैं, मुझे यहाँ मन्दिर बाँधने की आज्ञा देंगे ? किन्तु 1995 में पूज्य गुरुदेव राजकोट पधारे, तब बहिनों तथा भाइयों की इच्छा हुई कि सोनगढ़ में जिनमन्दिर बनाया जाये। और मैंने ही गुरुदेवश्री को विनती की। संवत् 1996 में उसकी शुरुआत की और 1997 में उसकी प्रतिष्ठा हुई। मेरा स्वास्थ्य उस समय अस्वस्थ था किन्तु उत्साह बहुत था, इसलिए जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा में पूरा भाग लिया। उसके बाद पूज्य गुरुदेव संवत् 1999 में राजकोट पधारे। 1994 में दस महीना रहे थे और 1999 में लगभग नौ महीना रहे थे। और उनका बोध सुनकर मुझे और पूरे कुटुम्ब को उनके प्रति बहुत-बहुत आदर उत्पन्न हुआ। वैसा आदर तुम सबको उत्पन्न हो, ऐसा मेरा अनुरोध है।

[—पूज्य गुरुदेवश्री के अभिनन्दन ग्रन्थ में से]

शास्त्रों में भरे हुए गहन भावों को खोलने की गुरुदेव की अजब शक्ति थी। उन्हें श्रुत की लब्धि थी। व्याख्यान में निकलते गम्भीर भावों को सुनकर कई बार ऐसा लगता था कि यह तो क्या श्रुतसागर उछल रहा है ? ऐसे गम्भीर भाव कहाँ से निकल रहे हैं ? गुरुदेव जैसी वाणी कहीं भी सुनने में नहीं आई। उनकी अमृतवाणी का गुंजार कितना मीठा था ?—ऐसा लगता था कि सुनते ही रहें। उनके जैसा आत्मा को स्पर्शकर निकलता एक वाक्या भी कोई नहीं बोल सकता। अनुभवरस से तराबोर गुरुदेव की जोरदार वाणी की गर्जना कोई और ही थी;—पात्र जीवों के पुरुषार्थ को जागृत करे और मिथ्यात्व को खण्ड-खण्ड कर दे, ऐसी दैवी वाणी थी। अपने भाग्य हैं कि गुरुदेव की यह मंगलमय कल्याणकारी वाणी 'टेप' में उतरकर जीवन्त रह गयी।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

आनन्द-ऊर्मि के स्वस्तिक पूरते हैं

[पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन जेठालाल शाह]

हे परम कृपालु गुरुदेव! आपके गुणों की क्या महिमा करूँ? आपके उपकारों का क्या वर्णन करूँ? असली स्वरूप का ज्ञान देनेवाले, अपूर्व महिमा के धारक श्री गुरुदेव के चरणकमल की सेवा-भक्ति निरन्तर हृदय में रहो। परम परम उपकारी श्री गुरुदेव के चरणकमल में इस सेवक के बारम्बार भावभीनी भक्ति से कोटि-कोटि वन्दन हो, नमस्कार हो।

हे गुरुदेव! इस भरतखण्ड में आप वर्तमान काल में अजोड़ दिव्य महान विभूति हो, दिव्य आत्मा हो। आपने इस भरतखण्ड में अवतार ले करके अनेक जीवों का उद्धार किया है, सम्यक्पंथ में लगाया है।

आपका अद्भुत श्रुतज्ञान चैतन्य का चमत्कार बतलाता है, चैतन्य की विभूति बतलाता है, चैतन्यमय जीवन बनाता है। आपके आत्मद्रव्य में श्रुतसागर की लहरें उछल रही हैं, आत्मपर्याय में जगमगाट करते ज्ञानदीपक प्रगट रहे हैं जो आत्मद्रव्य को प्रकाश रहे हैं। आपका आत्मद्रव्य आश्चर्य उत्पन्न करता है।

हे गुरुदेव! आपके मुखकमल में से झरती वाणी की क्या बात? वह ऐसी अनुपमरस भरी है कि उस दिव्य अमृत का पान करते तृप्ति ही नहीं होती। आपकी सूक्ष्म वाणी, चमत्कार भरी वाणी भव का अन्त लानेवाली है, चैतन्य को चैतन्य की ज्ञानमहिमा में डुबानेवाली है। सूक्ष्म अर्थों से भरपूर, अपूर्व रहस्यवाली, अनेकविध महिमा से भरी हुई गुरुदेव की वाणी है।

सुवर्णसमान निर्मलता से शोभायमान, सिंहसमान पराक्रमधारी, ऐसे

गुरुदेव ने अनेक-अनेक शास्त्रों का मंथन करके, एकाकी पुरुषार्थ करके, आत्ममार्ग को शोधकर, आत्मरत्न की आराधना कर, चारों तरफ से मुक्तिमार्ग को स्पष्ट कर, परमागमों के सूक्ष्म हार्द को प्रगटकर, चारों तरफ से मार्ग की स्पष्टता कर, अन्तर्दृष्टि बताकर मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है। निस्पृह और नीडर ऐसे गुरुदेव ने मुक्तिमार्ग को सब प्रकार से स्पष्टतापूर्वक सरल करके अपार उपकार किया है, भेदविज्ञान का-स्वानुभूति का मार्ग बताया है, रत्नत्रय का सत्यपंथ प्रकाशित किया है, जिनेश्वर भगवान के कहे हुए और आचार्यदेव के गूँथे हुए अगणित शास्त्रों के रहस्य प्रकाशित किये हैं।

श्री गुरुदेव ने शुभाशुभपरिणाम से भिन्न शुद्धात्मा का स्वरूप, निश्चयव्यवहार का स्वरूप, निमित्त-नैमित्तिक भावों का स्वरूप, ज्ञाता का स्वरूप, कर्त्ता का स्वरूप, वस्तु के सूक्ष्मभावों का स्वरूप, अनेक-अनेकविध वस्तु का स्वरूप बताकर अपार उपकार किया है। अनेक सूक्ष्म न्यायों को प्रकाशकर अमाप उपकार किया है। बारह अंग और चौदह पूर्व के सत्त्वरूप भाव गुरुदेव के ज्ञान में भरे हैं। बहुश्रुतधारी सम्यक्ज्ञानी, सातिशयवाणी और सातिशय ज्ञान के धरनेवाले, परम उपकारी गुरुदेव के चरणकमल में अत्यन्त अत्यन्त भक्ति से वन्दन-नमस्कार हो।

गुरुदेव ने संघ सहित उत्तर और दक्षिण की महान तीर्थयात्रा करके नगर-नगर में शुद्धात्मतत्त्व का ढिंढ़ोरा पीटकर सत् की धर्म की महान प्रभावना की है। उनके ज्ञानचक्र ने सारे हिन्दुस्तान को हिला दिया है। गुरुदेव ने भारतभर में धर्म के बीज बोये हैं।

गुरुदेव ने गाम-नगर, जगह-जगह जिनालयों और जिनेन्द्र भगवन्तों की प्रतिष्ठा की है, सौराष्ट्र-भर में दिगम्बर मार्ग की स्थापना की है, वीतराग-

शासन का उद्योत किया है। ऐसे शासनस्तम्भ हे गुरुदेव! आपके कार्य अजोड़ हैं, इस काल में अद्वितीय है।

पंच परमेष्ठी भगवन्तों की पहिचान करानेवाले हे गुरुदेव! आप जिनेन्द्रदेव के परमभक्त हो, पंच परमेष्ठी के परम भक्त हो, श्रुतदेवीमाता आपके हृदय में उत्कीर्ण हो गयी है, जिनेन्द्र भगवन्तों और मुनिवर भगवन्तों के दर्शन और स्मरण से आपका अन्तःकरण भक्ति से उछल जाता है।

ऐसे अनेकविध अद्भुत गुणमहिमा से शोभित, रत्नत्रय के आराधक है गुरुदेव! आपने उमराला में जन्म लेकर उमराला की भूमि को पावन किया है। आपने बालवय से ही संसार से विरक्त होकर संसार का त्याग किया, जगत में सत्यस्वरूप का दृढ़तापूर्वक प्रकाश किया, वीर का मार्ग स्वयं अन्तर में आराधकर, भारत के जीवों को समझाकर उपकार किया है। इसलिए हे गुरुदेव! आप भारत के भानु हो। आप जैसे दिव्य पुरुष का इस भारत में अवतार हुआ, इसलिए यह भरतक्षेत्र भाग्यशाली है। जिनके घर आपका जन्म हुआ, उन माता-पिता को धन्य है। आप जहाँ बसे, उस भूमि को धन्य है। गुरुदेव जहाँ रहते हैं, उस भूमि के रजकण-रजकण को धन्य है। गुरुदेव जहाँ बसते हैं, उसे क्षेत्र का वातावरण ही निराला है।

परमप्रतापी गुरुदेव ने इस पामर सेवक ऊपर अनन्त-अनन्त उपकार किये हैं।

'अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिन्धु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यों, अहो! अहो! उपकार।'

गुरुदेव के उपकारों का क्या वर्णन हो सकता है? गुरुदेव के गुणों का बहुमान हृदय में हो! गुरुदेव के चरणकमल की सेवा हृदय में हो!

गुरुदेव के चरणकमलों में परम भक्ति से बारम्बार वन्दन नमस्कार करके इस वैशाख शुक्ला द्वितीया के—मांगलिक जन्म-महोत्सव के—प्रसंग पर श्री गुरुदेव का भक्ति पुष्पों से सन्मान करते हैं, आनन्द-ऊर्मि के स्वस्तिक पूरते हैं।

नित नित आनन्द मंगल की वृद्धि के कारणभूत मंगलमूर्ति गुरुदेव का पुनीत प्रताप जयवन्त हो! गुरुदेव के प्रभाव और चैतन्यऋद्धि की वृद्धि हो!

श्री वीरशासन जयवन्त हो!

(—पूज्य गुरुदेवश्री के अभिनन्दन ग्रन्थ से उद्धृत)

आजकल पूज्य गुरुदेव की बात ग्रहण करने के लिये अनेक जीव तैयार हो गये हैं। गुरुदेव की वाणी का योग प्रबल है; श्रुत की धारा ऐसी है कि लोगों को प्रभावित करती है और 'सुनते ही रहें' ऐसा लगता है। गुरुदेव ने मुक्ति का मार्ग दर्शाया और स्पष्ट किया है। उन्हें श्रुत की लब्धि है।

— बहिनश्री चम्पाबहिन

मंगळ प्रयाण..... प्रवचन माटे

कृहानचरणथी सुवर्णपुरनो
उज्जवळ बन्यो इतिहास रे,
स्वर्णभानु भरते ऊग्यो रे।

जन्मशताब्दी-विशेषांक

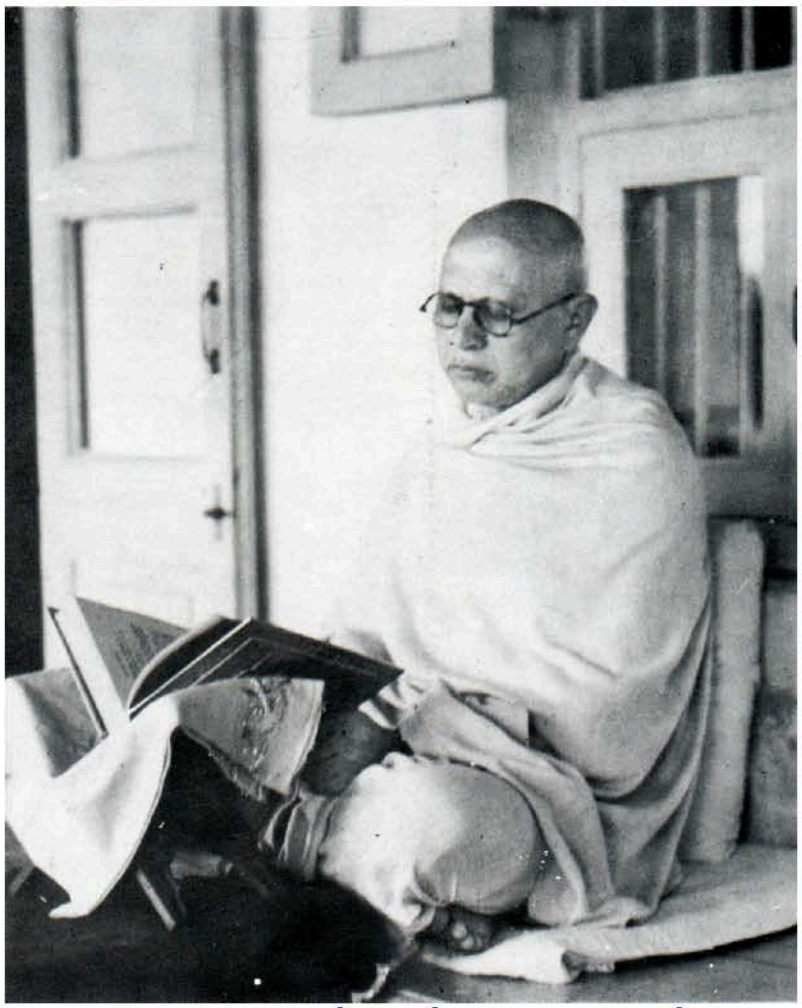

ज्ञानध्यानरत परमोपकारी पूज्य कहानगुरुदेव

सत्यामृत वरसाव्यां आ काळे तमे,
आशय अतिशय ऊंडा ने गंभीर जो;
नंदनवन सम शीतळ छांय प्रसारता,
ज्ञानप्रभाकर प्रगटी ज्योत अपार जो।

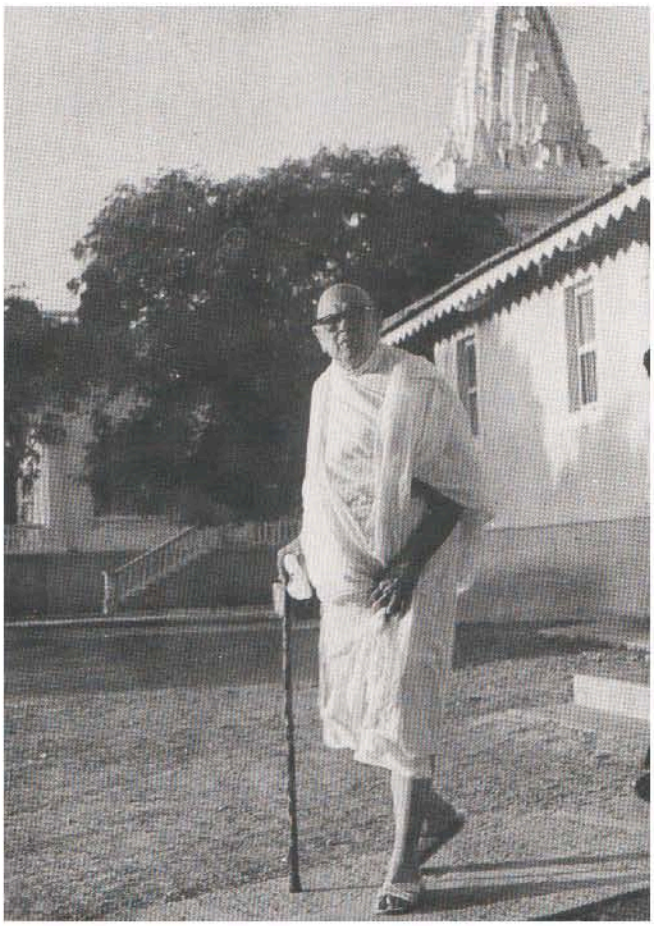

प्रवचन माटे परमागममन्दिर प्रति गमन

कहानगुरुअे आखा भारतने डोलावियुं रे,
गुरुने अंतर उलस्यां श्रुत तणां निधान,
जेना वदनकमळथी अमृतरस वरसी रह्या रे;
अेवा संतजनोनी महिमा केम कथाय,
नित्ये देव-गुरुने शास्त्र वसो मनमंदिरे रे.....

पू. गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

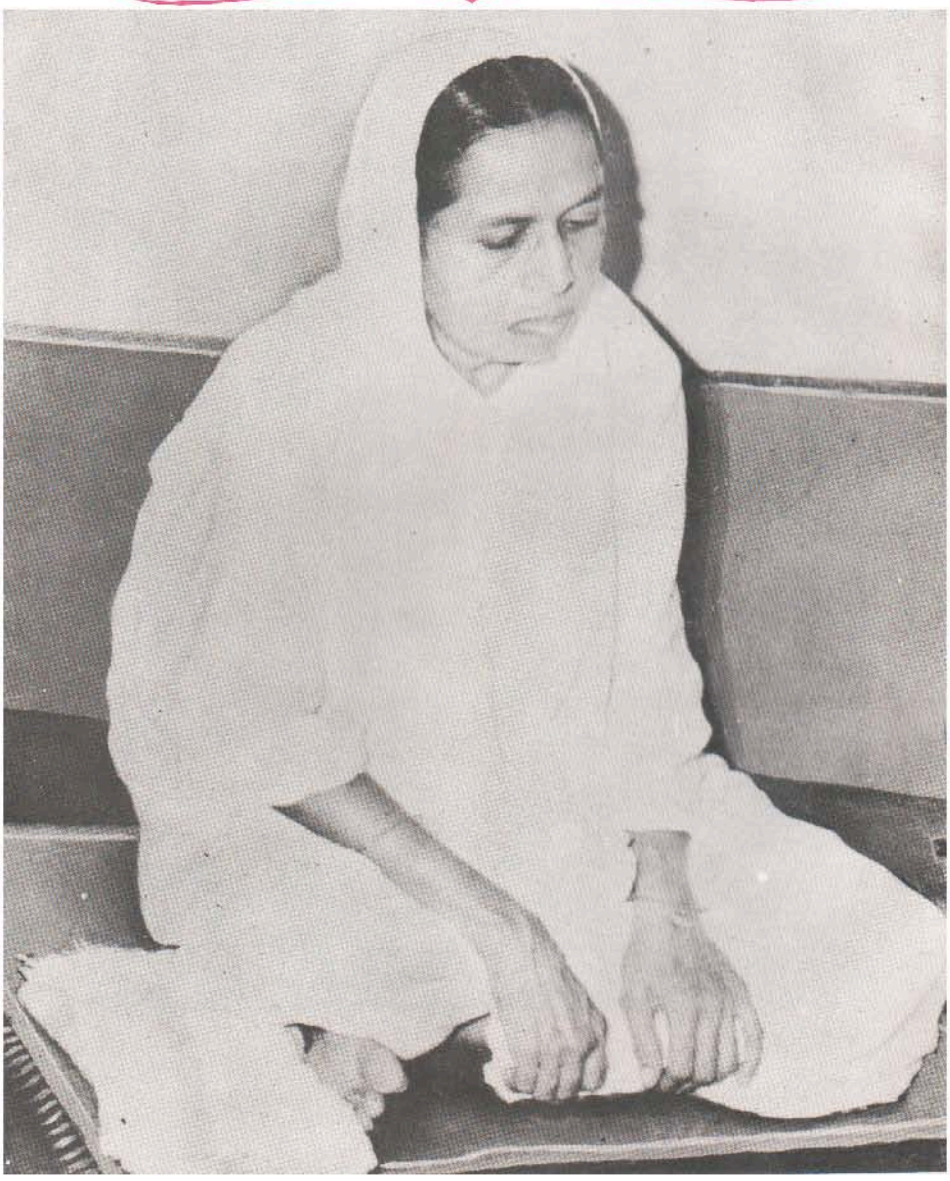

प्रशममूर्ति पूज्य बहेनश्री चंपाबेन

गुरु-जन्मजयन्ती के सन्दर्भ में
धर्मरत्न प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के

गुरु-भक्तिभीने मंगल हृदयोदगार

गुरुदेव की दोज (जन्मजयन्ती वैशाख शुक्ला दोज) आ रही है। गुरुदेव विराजमान थे, उस समय की बात तो कोई और ही थी। गुरुदेव के कारण सारा भारतवर्ष शोभायमान था। शास्त्र में आता है न—हे भगवान! आप जिस नगरी में पधारे, उस नगरी की शोभा स्वर्ग से भी अधिक लगती थी; और जब आप दीक्षा लेकर वन में चले गये, तब वह नगरी बिल्कुल सूनी हो गयी थी; उसी प्रकार गुरुदेव—तीर्थंकरतुल्य धर्मपुरुष—विराजमान थे, तब इस भारतवर्ष की शोभा न्यारी ही लगती थी।

यहाँ (सुवर्णपुरी में) गुरुदेव विराजते थे और निरन्तर उनकी चैतन्यरस झरती अमृतवाणी बरसती थी। धन्य ऐसी यह नगरी! धन्य वह अवसर! गुरुदेव परमपुरुष थे, महाशक्तिशाली थे। भारतवर्ष में इस समय गुरुदेव की वाणी सर्वोत्कृष्ट अतिशययुक्त थी; पंचम काल में भारत के जीवों के चैतन्य को जगानेवाली थी। गुरुदेव जगत से न्यारे ही लगते थे—उनकी मुद्रा भी न्यारी और वाणी भी न्यारी लगती थी। उनकी मुद्रा देखने पर लोग 'यह तो धर्मपुरुष है' यों चकित हो जाते थे; अहो! यह तो चैतन्य की अतिशयता बतानेवाली मुद्रा! वे तो चैतन्यरत्न की पहिचान करानेवाले परमपुरुष थे। प्रवचन देते हों तब और ही लगे। उनके चरणों से भारतवर्ष सुशोभित था, पावन था। वे चैतन्यदेव का मार्ग बताते थे। 'चैतन्य को पहिचानो... पहिचानो!' ऐसी गर्जना

करते थे; 'ज्ञायकदेव, भगवान आत्मा... भगवान आत्मा' की पुकार करते थे; सबको 'भगवान' कहकर बुलाते थे। स्वयं तो भगवानस्वरूप थे—अल्प काल में भगवान हो जायेंगे। गुरुदेव के चैतन्य की शोभा की तो क्या बात! उनके पुण्य की भी शोभा कोई और! ऐसे, बाह्य-अन्तर पुण्य व पवित्रता की मूर्ति थे। भारतवर्ष के भाग्य जो गुरुदेव ने यहाँ जन्म लिया।

गुरुदेव ने चैतन्य का डंका बजाकर सारे भारत में खलबली मचा दी, मुमुक्षुओं के हृदय में खलबली पैदाकर उनकी अन्तर्दृष्टि करने के लिए प्रेरित किया। गुरुदेव कहते थे—'अनन्त शक्ति से परिपूर्ण जो यह आत्मा है, उसे जो ग्रहण करता है, उसको शुद्धि व शुद्धि की वृद्धि प्रगट हुए बिना रहे ही नहीं।' एक शुद्धात्मा को ग्रहण कर। गुरुदेव जैसे 'गुरु' मिले और भगवान ज्ञायकदेव आँगन में पधारे, फिर तो शुद्ध पर्याय ही प्रगट करने की हो न? दूसरा तो जीव को अनन्त काल में क्या नहीं मिला? सब मिल चुका है, सब श्रुत, परिचित व अनुभूत है। केवल चैतन्य के एकत्व की बात सुलभ नहीं है, और सब सुलभ है। जन्म-मरण करते-करते विभाव सुलभ हो गया है, और 'एकत्व' स्वभाव है अपना, फिर भी वह दुर्लभ हो गया है। गुरुदेव के प्रताप से स्वभाव की वार्ता व स्वभाव की अनुभूति सुलभ हो गयी है। स्वभाव की अनुभूति करना, वह अपने हाथ की—पुरुषार्थ की बात है।

गुरुदेव ने अमृत के प्रपात बहाये। उनकी अमृत धारा चारों ओर बरसी। पतली धारा से नहीं अपितु मूसलधार वर्षा बरसाई। सब एक साथ पनप उठे, सब अन्तर के पेड़-पौधे पल्लवित हो जाये ऐसी मूसलधारा बरसाई; किन्तु अपनी उतनी तैयारी होनी चाहिए। अहा! पंचम काल में श्रुत की ऐसी मूसलधार वर्षा! कौन कहनेवाला था—'मूल तत्त्व शुद्धात्मा है, उसे देख?'

वह शुद्धात्मा ज्ञानस्वरूपी, ज्ञान से ओतप्रोत है; उसमें अधूरा ज्ञान नहीं, अधूरा दर्शन नहीं, किन्तु वह परिपूर्ण ज्ञान, दर्शन, व संयम की—चारित्र की मूर्ति है।

चेतनद्रव्य मिथ्यात्व के कारण विपरीत परिणमित हुआ है, किन्तु स्वभाव से दर्शन-ज्ञान-संयम की मूर्ति है, वह अपना आचरण छोड़कर वस्तुतः पर में नहीं गया है, संयममय उसका स्वभाव है। पर्याय में औंधा हो गया है, फिर भी वह है तो ज्ञानमूर्ति, दर्शनमूर्ति, संयममूर्ति। जहाँ विकल्पों की आकुलता नहीं है, ऐसा निराकुल आनन्दमूर्ति चैतन्य—ज्ञान की मुद्रा, संयम की मुद्रा, आनन्द की मुद्रा, ऐसी आश्चर्यकारी अनुपम मुद्रायुक्त चैतन्य अनन्त काल से बाहर में उलझ गया है। गुरुदेव कहते थे भाई! तू वापस लौट, तेरे घर में जा, तेरे घर में जा। तेरे घर में ही सब रिद्धि-सिद्धि भरी हुई है। बाहर में कहाँ खोजता है? जहाँ अनन्त गुणों से भरपूर चैतन्यप्रभु का दरबार है वहाँ—तेरे घर में—जा न! उस गुणमूर्ति चैतन्य प्रभु को जो पहिचाने वह धन्य है।

चैतन्यद्रव्य पर दृष्टि करे तो सब पर्याय (यथासम्भव) शुद्ध परिणमित हो जायें, सारी दिशा बदल जाये। विभाव की दिशा पर सन्मुख है। द्रव्यस्वभाव की ओर दृष्टि जाने पर पर्याय में सारी दिशा पलट जाती है। शुद्धतारूप परिणमन हो जाता है। जिस प्रकार पश्चिम में से पूर्व की ओर मुख फेरते हैं, उसी प्रकार द्रव्य की ओर मुख फेरने से पर्याय की ओर पीठ हो गयी, दृष्टि गयी भगवान की ओर, नयन भगवान को देखने लगे, हाथ उस ओर जुड़ने लगे, साधक के डग उस ओर चलने लगे। ऐसे मंगलमय भगवान के दर्शन से पर्याय में मंगलप्रभा प्रसर गई! अन्तर में ऐसे ज्ञायकदेव को बतानेवाले गुरुदेव स्वयं मंगलमय थे। उनकी मंगल प्रभा से भारतवर्ष सुशोभित था। अभी भी उनकी मंगल प्रभा छाई हुई है।●

जन्म शताब्दी के मंगल अवसर पर

गुरुदेव को उपकृतभावभीनी वन्दना

[परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी जन्मजयन्ती के शुभावसर पर भिन्न-भिन्न वर्षों में गुरुभक्त, गहरे आदर्श आत्मार्थी, अध्यात्मरसिक, आदरणीय विद्वान श्री हिम्मतलालभाई जे. शाह द्वारा समर्पित 'उपकृतभावभीनी वन्दना' से संकलित]

मुमुक्षुजीवन के शिल्पी

हमारे परम उपकारी, हमारे जीवन के शिल्पी, हमें शाश्वत् हित के मार्ग पर ले जानेवाले पूज्य गुरुदेव की पावनकारी जन्मजयन्ती का यह प्रसंग उनके गुणों एवं उपकारों को हृदयंगत करके उन्हें उपकृतभाव से वन्दन करने का अवसर है। गुरुदेव के गुण और विविध उपकार हमें हमारे जीवन को बनाने में सदा निरन्तर सहायक होते हैं, फिर भी मुमुक्षु भाई-बहिनों के लिये विशाल समुदाय में इकट्ठे होकर उनके उपकारों का विशिष्टरूप से मनोभूमि में स्मरण करके वाणी द्वारा व्यक्त करने का आज का शुभ अवसर है।

भेदविज्ञान जग्यौ जिन्हके घट, शीतल चित्त भयौ जिम चन्दन।
केलि करै सिवमारगमें, जग माहिं जिनेसुरके लघुनन्दन॥
सत्य सरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यौ अवदात मिथ्यात निकन्दन।
सान्तदसा तिन्हकी पहिचानि, करै कर जोरि बनारसि वन्दन॥

— इस प्रकार श्री बनारसीदासजी ने सामान्यतः सर्व भेदज्ञानियों को शिवमार्ग में केलि करनेवाले दिखाकर उन्हें हाथ जोड़कर वन्दन किया है।

हमारे गुरुदेव तो मोक्षमार्ग में केलि करनेवाले भेदविज्ञानी सम्यग्दृष्टि होने के उपरान्त हमारे भवभ्रमण के दुःख दूर करने का सच्चा मार्ग दिखानेवाले प्रत्यक्ष अनन्त-उपकारी महापुरुष हैं। आज के अवसर पर हम सब समूह में इकट्ठे होकर उन्हें विशिष्टभाव से वन्दन करते हैं।

जिन्होंने स्वप्न में भी सम्यक्त्व को मलिन नहीं किया है, ऐसे धन्य पुरुष, सुकृतार्थ—अच्छी तरह से कृतकृत्य हुए पुरुष, पण्डित और शूरवीर ऐसे महापुरुष कि जो स्वयं सम्यक्त्व प्रगट करके, अपना जीवन सम्यक्त्व में एवं उसके आश्रयभूत ज्ञायकभगवान के गीत गाने में बिता रहे हैं, और इस प्रकार जिनके द्वारा अनेक जीवों के जीवन योग्यतानुसार कम या ज्यादा अंशों में बने हैं और बनते जा रहे हैं, ऐसे पवित्र महापुरुष की आज परम मंगलकारी जन्मजयन्ती है।

सम्यग्दृष्टि के प्रति माहात्म्यभाव

सम्यग्दृष्टि का अपार माहात्म्य है। भले हमने सम्यग्दर्शन की परिणति प्राप्त न की हो, सम्यग्दर्शन के विषयभूत भगवान आत्मा का हमें दर्शन न हुआ हो, परन्तु सम्यग्दृष्टि के प्रति परम माहात्म्यभाव तो अवश्य हमारे हृदय में सतत रहना चाहिए। वह, भगवान आत्मा की प्राप्ति के पुरुषार्थ की भावना सूचित करता है। यदि सम्यग्दृष्टि के प्रति हमारे अन्तर में परम माहात्म्यभाव न हो, तो हमें भगवान आत्मा प्राप्त करने की ऐसी तमन्ना भी नहीं है।

प्रत्यक्ष-उपकारी सम्यग्दृष्टि की महत्ता की तो क्या बात?

श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है:—'अनन्त काल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को एक समयमात्र में जात्यन्तर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।' अनादि

काल से अनन्त-अनन्त जीवों का समूह बन्धमार्ग पर चला जा रहा है। उन सबका मुख बन्ध की तरफ ही है। 'यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग विराग अथाग लह्यो; वनवास लियो मुख मौन रह्यो, दृढ़ आसन पद्म लगाय दियो।' ऐसी कठोर क्रियाओं के पालन करनेवाले साधु भी उसी बन्धमार्ग पर चलनेवाली विशाल कतार में ही हैं। 'सब शास्त्र के नय धारी हिये, मतमण्डन-खण्डन भेद लिये' ऐसे 11 अंग और 9 पूर्व के ज्ञानवाले साधु भी उसी कतार में चले जा रहे हैं। उनमें से कोई विरल जीव अपूर्व पुरुषार्थ द्वारा अपनी परिणति को पलटकर सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले, वही पुरुष ऐसा है कि जिसने अनन्त-अनन्त काल से अनन्त-अनन्त जीवों की बन्धमार्ग पर चली जा रही कतार से अलग होकर, अपना मुख मोड़कर, मोक्ष के मार्ग पर प्रयाण शुरु किया है। भले उसकी गति मन्द हो, वह साधुपद में न हो, केवलीरूप न हो, किन्तु उसकी दिशा मोक्ष के ओर की है, उसकी जाति मोक्षमार्गी की है।—ऐसी उसकी महत्ता हमारे हृदय में जम जाना चाहिए। केवल सम्यग्दृष्टि के पद का इतना महत्त्व है तो फिर संसारसागर से पार होने का उपाय दिखानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष-उपकारी सम्यग्दृष्टि के माहात्म्य के विषय में तो क्या कहें? ऐसे हमारे परम-उपकारी सम्यग्दृष्टि कृपालु गुरुदेव के चरणों में तो हमारा सर्वस्व निछावर करने के भाव जागे, वह भी कम है। आज के पवित्र प्रसंग पर उनके चरणों में उपकृतभाव से हमारे परमभक्तिपूर्वक वन्दन हों।

बाल्यावस्था से गुणवान्

वीरमार्ग के उद्धारक, अध्यात्मयुगसृष्टा, पूज्य गुरुदेव का मंगल जन्म वि.सं. 1946 में वैशाख शुक्ला दूज के शुभ दिन उमराला गाँव में हुआ था। वे बचपन से ही गम्भीर, विचारशील, प्रत्येक वस्तु के हार्द में उतर जानेवाली

तेजस्वी बुद्धिवाले, वैरागी, सत्यनिष्ठ, अल्पजीवी वस्तुओं के प्रति उपेक्षाभाव रखनेवाले, शाश्वत हित करने की भावनावाले, साधुजनों के संग में अत्यन्त प्रीति रखनेवाले इत्यादि विविध सद्गुणों से अलंकृत थे।

पालेज की दुकान पर बैठते, वहाँ भी अध्यात्मकल्पद्रुम, सज्झायमाला, 'जैन समाचार' मासिक पत्रिका इत्यादि धार्मिक साहित्य पढ़ते और इस जीवन में 'भवभ्रमण का अन्त आ जाये' ऐसा कुल कर लेना चाहिए—ऐसी भावना उनके मन में सदा रहती। उनकी सज्जनता, वैराग्य वगैरह सद्गुणों के कारण लोग उन्हें 'भगत' कहते। उन्होंने निज कल्याण की भावना से वि. सं. 1970 में स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय में मुनिदीक्षा अंगीकार की। आजीवन ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा तो उन्होंने दीक्षा लेने के पहले ही ले ली थी।

भवांत की धड़कन से धबकता हृदय

वे सम्प्रदाय के मुनि के रूप में अति दृढ़ चारित्र पालते। उनका सारा समय प्राय. शास्त्रस्वाध्याय में बीतता। शास्त्राभ्यास ही उनका भोजन था। शास्त्रस्वाध्याय की धुन इतनी तीव्र थी कि आहार लेने जाने में, आहार करने में और निद्रा में जो समय देना पड़े, वह भी उनको खटकता। एक पूरे चातुर्मास में एकान्तर उपवास करके श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रसिद्ध सभी शास्त्रों की स्वाध्याय कर ली थी। इस अल्पायु मनुष्यभव में निज कल्याण की साधना करना, वही परम कर्तव्य है, ऐसा विचार उनकी रगरग में व्याप्त था। दीक्षा के बाद थोड़े समय में उनके गुरु श्री हीराचन्दजी महाराज ने गुरुदेव के सद्गुण, आत्मार्थिता, विद्वत्ता आदि देखकर उनसे व्याख्यान देने को वात्सल्य से कहा था, तब गुरुदेव ने नम्रता से किन्तु दृढ़तापूर्वक कहा था कि 'महाराज! मैं यहाँ व्याख्यान देने के लिये नहीं आया, मैं तो मेरी आत्मा का कल्याण करने के

लिये आया हूँ।' (यद्यपि थोड़े समय के बाद संयोगवशात् व्याख्यान देने का कार्यभार उनके सिर आ पड़ा था।) उनके हृदय की प्रत्येक धड़कन में 'भव का अन्त करना है' यही भाव रहता था। 'भजीने भगवन्त भवन्त लहो' इस पंक्ति के 'भवन्त लहो' पद सुनकर वे डोलने लगते।

अशरीरी होने का शास्त्र

इस तरह भवान्त का ध्येय रखकर निर्दोष पराक्रमी दीक्षित जीवन बिताते हुए उनके हाथ में पुण्ययोग से श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित श्री समयसार नामक शास्त्र आया। उसको पढ़ने पर उनको वह शास्त्र अपार महिमायुक्त लगा और उन्होंने उसको 'अशरीरी होने के लिये उत्तम शास्त्र' कहा। श्री समयसार परमागम के अतिरिक्त उन्होंने अन्य दिगम्बर शास्त्र तथा मोक्षमार्गप्रकाशक, पंचाध्यायी वगैरह का भी गहरा अध्ययन किया, जिससे द्रव्य की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, सम्यग्दर्शन का महिमामय स्वरूप, स्वानुभूति, शुभभावों का भी बन्धस्वरूपपना, ज्ञायक के आश्रयस्वरूप शुद्धभाव में ही मोक्षमार्गपना, निर्विकल्प स्वानुभूति होते सिद्ध के सुख के नमूने का स्वाद—इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का उनके अन्तर में स्पष्ट प्रकाश हुआ।

हृदयपरिवर्तन होते ही व्याख्यान में विलक्षणता

उन शास्त्रों के गहन अवगाहन से निष्पक्ष सत्यशोधक गुरुदेव के हृदय में परिवर्तन हुआ; उनकी समझ में सत्य वस्तुस्वरूप आ गया और मोक्षमार्ग की सच्ची दिशा सूझी। सच्चा मार्ग सूझने से उनके व्याख्यानों में कोई अनोखे प्रकार का प्रकाश प्रकट हुआ। सम्प्रदाय की शैली में जिसका नामोनिशान भी नहीं था, ऐसे जड़-चेतन को भिन्न करनेवाले, शुभभावों से शुद्धभाव का

जात्यन्तरपना दिखानेवाले और सदा सम्यक्त्व के माहात्म्य से सभर तर्कशुद्ध न्याय गुरुदेव के व्याख्यानों में आते, जिनको सुनकर श्रोता मुग्ध हो जाते थे। 'मेरे प्रवचन से ज्यादा लोग समझेंगे तो मुझे ज्यादा लाभ होगा, ऐसी मान्यता झूठी है', 'जिस भाव से तीर्थंकरनामकर्म का बन्ध हो, वह भाव भी हेय है', 'उपसर्ग करनेवाले ऊपर क्रोध करूँगा तो भविष्य में नरकादि के दुःख भोगने पड़ेंगे—ऐसा सोचकर अथवा मेरे अशुभ कर्म के उदय से यह उपसर्ग आया है, तो फिर उपसर्ग करनेवाले के प्रति क्रोध क्या करना—ऐसा सोचकर क्षमा धारण करना मोक्ष का कारण नहीं है, परन्तु शुद्ध आत्मस्वभाव के आलम्बन से जो सहज क्षमा रहती है, वही मोक्ष का कारण है।'—ऐसे सैकड़ों न्याय गुरुदेव के व्याख्यानों में आते, जो अन्य किसी भी जगह सुनने को नहीं मिलते।

सम्यक्त्व का माहात्म्य

वि. सं. 1982 में गुरुदेवश्री का चातुर्मास बढवाण में था। उस समय मेरे बड़े भाई श्री वजुभाई को चार महीने तक व्याख्यान सुनने का अवसर मिला। उस समय में अहमदाबाद में कॉलेज में पढ़ता था। वजुभाई मुझे लिखते:—यहाँ एक महाराज आये हैं। उनके प्रवचन अद्भुत हैं। वे सम्यक्त्व के ऊपर बहुत जोर देते हैं। सामान्यतया ऐसी मान्यता है कि 'जैनदर्शन सच्चा है, ऐसा मानना सो समकित और उसके उपरान्त सामायिकादि व्रत करने से पाँचवाँ गुणस्थान होता है।' उसका ये महाराज निषेध करते हैं। वे सम्यक्त्व की गजब की महिमा गाते हैं। व्याख्यान में कोई भी अधिकार चलता हो तो भी साथ में वे सम्यक्त्व का चमत्कारिक माहात्म्य सुन्दर ढंग से समझाते हैं। वे कहते हैं:—सम्यग्दर्शन महा दुर्लभ है। जीव ने अनन्त बार राजपाट छोड़कर दीक्षा ली है और चमड़ी उतारकर उसके ऊपर क्षार छिड़कनेवालों के प्रति

किंचित्मात्र आँख लाल न करे, ऐसी क्षमा रखी है परन्तु समकित एक बार भी नहीं किया है। समकित में तो आत्मसाक्षात्कार होता है और सिद्धभगवान के सुख के नमूने का आंशिक स्वाद आता है। समकिती का परिणमन जात्यन्तर हो गया है। वह सुनकर लगता है कि सचमुच समकित कोई अद्भुत चीज़ है।—इस व्याख्यानों को वजुभाई लिखते थे। उन्होंने व्याख्यानों की संक्षिप्त नोंध बना रखी थी; वह हम एक जैन पत्र में अलग-अलग चुन-चुनकर छपवाते थे।

परिवर्तन

इस प्रकार महाराजश्री ने सौराष्ट्र में एक अनोखे प्रकार का सम्यक्त्व-प्रधान वातावरण खड़ा कर दिया। उनके ज्ञान और कठोर चारित्र की ख्याति सौराष्ट्र में फैल गई, और स्थानकवासी साधुओं में कानजीस्वामी का नाम अग्रस्थान पर गिना जाने लगा। इस तरह एक ओर से एक उत्तम साधु के रूप में उनकी ख्याति खूब फैलने लगी थी, तो दूसरी ओर श्री समयसारादि शास्त्रों के गहरे अवगाहन से उनके अन्तर में प्रतीति हो गई था कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूल जैनधर्म है। इसलिए 'बाहरी वेश जुदा और भीतर में श्रद्धा कुछ जुदी' ऐसी स्थिति हो गई थी, जो उनको खटकती थी। अन्त में, ऐसी स्थिति लम्बे समय तक नहीं सही जाने से उस सहृदय वीर पुरुष ने, चाहे जैसे उपसर्ग आ पड़े, उन सबको सहन करने की तैयारी करके, वि. सं. 1991 में एक ऐतिहासिक पराक्रमी काम किया—सोनगढ़ में श्री हीराभाई के एकान्त मकान में स्थानकवासी सम्प्रदाय का चिह्न मुँहपत्ती का त्याग किया। सम्प्रदाय में हलचल तो मची, परन्तु धीरे-धीरे उसका शमन हो गया। महाराजश्री ने अपनी सच्चाई से लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त किया था, इसलिए धीरे-धीरे

सत्संगार्थी जनों का पूर सोनगढ़ की ओर बहने लगा, और अनेकानेक लोग पूज्य गुरुदेव के अनुयायी बने। बाद में तो आवश्यकतानुसार स्वाध्यायमन्दिर, जिनमन्दिर, समवसरणमन्दिर आदि बनते गये, दूर-दूर से दिगम्बर जैन भी गुरुदेव का उपदेश श्रवण करने को आने लगे और गुरुदेव का अनुभवमुद्रित सत्य तत्त्वज्ञान भारत में फैलने लगा।

कानजीस्वामी का सोनगढ़

वि. सं. 2001 में इन्दौर के सर सेठ श्री हुकमचन्दजी सोनगढ़ आये और गुरुदेव के तात्त्विक उपदेश से बहुत ही प्रभावित हुए तथा उनके हृदय में गुरुदेव के प्रति जीवनपर्यन्त भक्तिभाव रहा।

वि. सं. 2003 में सोनगढ़ में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद का अधिवेशन हुआ, जिसके निमित्त से करीब 32 प्रतिष्ठित विद्वान पण्डित सोनगढ़ पधारे और गुरुदेव के मुख से स्वतन्त्र द्रव्य-गुण-पर्याय, विज्ञानघन आत्मा और आनन्दस्यंदी स्वानुभूति के मधुर गीत सुनकर पावन हुए। सर्वत्र ज्ञानवार्ता से गुंजता सोनगढ़ का धार्मिक वातावरण देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए थे। एक विद्वान पण्डितजी ने मुझसे कहा था कि यहाँ तो सुबह से लेकर रात तक जहाँ देखो वहाँ—घर में या मार्ग में, बालक या वृद्ध, स्वतन्त्र द्रव्य, ज्ञायक, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार इत्यादि की ज्ञानवार्ता करते ही दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसा धार्मिक वातावरण अन्यत्र कहीं पर नहीं देखा!... दूसरे एक पण्डितजी ने प्रवचन में मण्डनमिश्र का दृष्टान्त देकर ऐसे आशय का कहा था कि:—'शंकराचार्य मण्डनमिश्र के साथ तत्त्वचर्चा करने जा रहे थे। मण्डनमिश्र का गाँव आते ही उन्होंने किसी से पूछा—मण्डनमिश्र का घर कहाँ है? उत्तर मिला—जहाँ बरामदे में लटकते पिंजड़े में तोता और मैना

'स्वत: प्रमाणं परत: प्रमाणं' की चर्चा करते हों, वह मण्डनमिश्र का घर। इसी प्रकार जहाँ सर्वत्र बच्चे भी द्रव्य-स्वातन्त्र्य, ज्ञायक आत्मा इत्यादि की ज्ञानवार्ता कर रहे हों, वह 'कानजीस्वामी का सोनगढ़'।'' सचमुच गुरुदेव ने सर्व द्रव्यों की स्वतन्त्रता, विज्ञानघन आत्मा और आनन्दस्यन्दी आत्मानुभूति की प्रधानता का पवित्र युग प्रवर्तित किया है।

युगप्रधान ही नहीं परन्तु युगसृष्टा

गुरुदेव का आन्तरिक जीवन भेदज्ञानमय परमपवित्र होने के उपरान्त बाह्य में भी उनको आश्चर्यकारी प्रभावनायोग वर्तता था, जिसके कारण भारतवर्ष में एक आध्यात्मिक युग का प्रवर्तन हुआ। 'समयसार-प्रवचनों' की प्रस्तावना में उनके लिये 'युगप्रधान' शब्द लिखा हुआ पढ़कर गुरुदेव ने निर्मानता से कहा था कि 'मेरे लिये बहुत बड़ा शब्द लिख डाला है।' परन्तु उसके बाद थोड़े ही समय में पण्डित लालनजी ने किसी बात पर उल्लास आ जाने से कहा था कि 'गुरुदेव! आप युगप्रधान नहीं हैं परन्तु युगसृष्टा हैं।' इस तरह पण्डित लालनजी को गुरुदेव के लिये प्रयुक्त 'युगप्रधान' शब्द बड़ा नहीं किन्तु छोटा लगा था; 'युगसृष्टा' शब्द ही उचित लगा था। सचमुच पूज्य गुरुदेव ने इस काल में ज्ञानमूर्ति आत्मा का, सम्यग्दर्शन की महिमा का, निश्चयनय की मुख्यता का, द्रव्य के सम्पूर्ण स्वातन्त्र्य का, उपादान-निमित्त के यथार्थ तत्त्वज्ञान का, आध्यात्मिक वस्तुविज्ञान का और समयसार का युग सरजा है।

सत्य मार्ग की सचोट घोषणा

बहुत समय से प्राय: लोग कर्मप्रकृति के ज्ञान को ज्ञान समझते, आत्मश्रद्धा रहित 'वीतराग ने कहा हुआ मार्ग सच्चा है' ऐसी अन्ध-श्रद्धा को

सम्यग्दर्शन समझते, उपवासादिक दैहिक कष्ट को चारित्र मानते। जिस प्रकार गीला वस्त्र धूप में सुखाने से पानी झर जाता है, वैसे शरीर को धूप में तपाने जैसी कष्टप्रद क्रिया से कर्मों की निर्जरा हो जायेगी—ऐसी ऐसी तत्त्वज्ञान रहित मान्यताएँ प्रवर्तती थीं। अबाधित सिद्धान्तों की कसौटी में पार हो सके, ऐसा वीतराग प्रणीत सद्धर्म वैज्ञानिक भूमिका से सरककर रूढ़िगत साम्प्रदायिकता में और क्रियाकाण्ड में फँस गया था। 'वीतराग ने ऐसा कहा है इसलिए वह सत्य होगा, हम अल्पज्ञ क्या जानें?' ऐसी शिथिल बातें करनेवाले लोग ही चारों ओर दिखते थे। किन्तु 'मेरो धनी नहीं दूर दिसंतर, मोहि में है मोहि सूझत नीके' ऐसा अनुभव करके 'मैं ज्ञानमूर्ति भगवान हूँ' ऐसा दृढ़ता से ढिंढोरा पीटकर कहनेवाला कोई दिखता नहीं था। ऐसे समय में गुरुदेव ने समयसार द्वारा परम चमत्कारिक आत्मपदार्थ का अनुभव किया और अनुभवजन्य श्रद्धा की वज्रमयी शिला पर खड़े होकर जगत में घोषित किया कि "अहो! प्राणियों! परभावों से और विकार से भिन्न ज्ञानमूर्ति आत्मपदार्थ के अनुभव से कहते हैं कि हम जिस मार्ग पर चलते हैं और जो मार्ग दिखाते हैं, उस मार्ग पर चले आइये और अगर मोक्ष न मिले तो उसकी जिम्मेदारी हम हमारे सिर लेते हैं। आत्मा में भव है ही नहीं, ऐसा अनुभव किये बिना ज्ञान कैसा? दर्शन कैसा? और वह शुद्धात्मभूमिका को प्राप्त किये बिना तुम चारित्र के चित्र कहाँ पर खींचोगे? यह जो हम कह रहे हैं, वह बात तीन काल और तीन लोक में फिरनेवाली नहीं है। सर्व तीर्थंकरों ने यही बात की है और समस्त अनुभवी पुरुष तीनों काल यही बात कहते रहेंगे।"

इस प्रकार अनुभव की वज्रभूमि के ऊपर खड़े रहकर अत्यन्त निःशंकपने से एवं कभी भी लेशमात्र थकान के बिना, सदा आनन्दसागर को

उछालते, अत्यन्त प्रमोद से चैतन्य भगवान के गीत गाते, अध्यात्म-उपदेश की वर्षा करते हुए गुरुदेव इस काल में एक अजोड़ लोकोत्तर व्यक्ति थे।

व्यापक धर्मोद्योत

सोनगढ़ में गुरुदेव के प्रवचन नियमितरूप से सदा चलते थे; इसके उपरान्त, सोनगढ़ से अनेक सत्शास्त्र और प्रवचनग्रन्थ प्रकाशित होने लगे। 'आत्मधर्म' मासिक पत्रिका निकलती। तीर्थयात्रादि के निमित्त से भारतवर्ष में गुरुदेव के विहार हुए। इस प्रकार विधविधरूप में कल्पनानीत व्यापक धर्मोद्योत गुरुदेव द्वारा हुआ।

यह असाधारण धर्मोद्योत स्वयमेव बिना-प्रयत्न सहजरूप से हुआ है। गुरुदेव ने धर्मप्रभावना के लिये कभी कोई योजना तैयार नहीं की। यह उनकी प्रकृति में ही नहीं था। मुनि को किसी प्रकार के कर्मप्रक्रम के परिणाम नहीं होते अर्थात् मुनि किसी प्रकार की प्रवृत्ति की जिम्मेदारी अपने सिर नहीं लेते—इस प्रवचनसार की बात का विवेचन करते हुए, मानों कि अपने हृदय की बात (अपने को अत्यन्त पसन्द बात) शास्त्र में मिली हो, वैसे वे खूब खिल उठते। उनका पूरा जीवन निज कल्याणसाधना को समर्पित था। जगत की बात जगत जाने, मुझे मेरा हित करना है—यह उनका हृदय था। 'आप मूए सब डूब गई दुनिया' ऐसा कबीर ने गाया है; परन्तु गुरुदेव को तो जीते ही, 'मेरे लिये कोई है नहीं दुनिया' ऐसी परिणति जीवन में गूँथा गई थी।

उन्होंने जो सुधास्यन्दी आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जिन कल्याणकारी तथ्यों को आत्मसात् किये थे, उसकी अभिव्यक्ति 'वाह! ऐसी वस्तुस्थिति!' इस प्रकार विविधरूप में सहजभाव से उल्लासपूर्वक उनके द्वारा हो जाती थी, जिसका गहरा आत्मार्थप्रेरक प्रभाव श्रोताओं के हृदय पर पड़ता।

गुरुगमदाता गुरुदेव

जीव एक स्वतन्त्र पदार्थ है, वह बाह्य क्रियाओं से तो बिल्कुल भिन्न है, उसे बाह्य क्रिया का कोई फल—अच्छा या बुरा—मिलता नहीं है; शुभभाव और अशुभभावों का फल उसे अवश्य मिलता है, किन्तु मूलभूत शाश्वत् सुखरूप फल नहीं;—इत्यादि तत्त्वज्ञान तथा 'भगवान आत्मा... भगवान आत्मा... ज्ञायक' का रणकार सदा जीवनपर्यन्त गुरुदेव ने गजाया। भौतिक जगत में जहाँ 'आत्मा है या नहीं' की शंका में ही बहुत बड़ा जनसमुदाय गोते खा रहा है, वहाँ गुरुदेव ने अत्यन्त जोरदार भेरी बजायी कि—एक ज्ञायक ही मैं हूँ। मैं सबके ऊपर तैरता परम पदार्थ हूँ। वे मस्ती में गाते कि—'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी हो जाय जिनेश्वर।' वे आश्चर्य अनुभवते कि यह, दृष्टि के सामने ही, परम-निधान—समृद्धि भरपूर ज्ञायकतत्त्व—पड़ा है, उसको लाँघकर (उसके प्रति लक्ष्य किये बिना) जगत क्यों चला जाता है? 'यह वस्तु सच्ची', 'यह चीज़ यहाँ प्रत्यक्ष दिखती है', इस तरह दृश्य वस्तु को वह देखता है, किन्तु उसके देखनेवाले को वह क्यों लाँघ जाता है? 'प्रेम-प्रतीत विचारो ढूंकडी, गुरुगम लेजो रे जोड, जिनेश्वर!' सर्व दृश्य वस्तुओं के द्रष्टा की—परमनिधान की—स्वानुभवयुक्त प्रतीति गुरुगम से होती है। ऐसी उस पवित्र गुरुगम के आधार हमारे परमोपकारी गुरुदेव हमारे परम भाग्योदय से हमें मिले।

अकारण पारिणामिक द्रव्य

गुरुदेव सम्प्रदाय में थे, तब से ही प्रत्येक द्रव्य के स्वातंत्र्य की श्रद्धा उनके अन्तर में जम गयी थी। मैं एक स्वतन्त्र पदार्थ हूँ, मुझे कर्म रोक नहीं सकते—ऐसा वे बारबार कहते। वि.सं. 1988 में स्थानकवासी के साधु के

रूप में गुरुदेव का चातुर्मास जामनगर में था, तब मैंने उनसे प्रश्न किया:—'महाराज साहेब! दो जीवों को 148 कर्मप्रकार सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदों के प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभाग सब बिल्कुल समान हो तो वे जीव उस समय समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकार के?' उन्होंने कहा:—'भिन्न-भिन्न प्रकार के।' मैंने प्रश्न लम्बाया:—'दोनों जीवों की शक्ति तो पूर्ण है और आवरण बिल्कुल समान हैं, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकार के कैसे कर सकते हैं?' गुरुदेव ने तुरन्त ही दृढ़ता से उत्तर दिया:—'अकारण पारिणामिक द्रव्य है।' उस समय के ये जोरदार शब्द अभी भी मेरे कानों में गुँजा करते हैं। 'अकारण पारिणामिक द्रव्य' अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं है, ऐसे भावोंरूप स्वतन्त्रतया परिणमता द्रव्य है। इसलिए उसे अपने भावों को स्वाधीनता से करने में वास्तव में कौन रोक सकता है? वह स्वतन्त्ररूप से अपना सब कुछ कर सकता है।

ज्ञानियों के आत्मानन्द की अद्भुतता

एक बार पूज्य गुरुदेव के पास हम कई भाई बैठे थे। और गुरुदेव मुनियों के एवं सम्यग्दृष्टियों के आत्मानन्द की अद्भुतता का वर्णन कर रहे थे:—'मुनि दु:खी नहीं होते, वे तो आनन्द में डोलते हैं। उनके सच्चे आनन्द के पास इन्द्रों के काल्पनिक सुख तो वास्तव में जलन है। सम्यग्दृष्टि जीव ने भी सिद्धसदृश आंशिक सुख का स्वाद चख लिया है, जिस सुख का अंश भी वैषयिक सुखाभासों में नहीं होता। ज्ञानी जीवों का अहो कैसा अलौकिक आनन्द?' मैंने कहा:—गुरुदेव! खाजा और खाण्ड खानेवाले पुरुष को देखकर अथवा उसके आनन्ददायक स्वाद की बात सुनकर देखनेवाले या बात सुननेवाले को जैसा आनन्द आये (और उसकी जैसी भूख मिटे) वैसा

आनन्द आपकी बात सुनकर हमें आता है। गुरुदेव ने मुक्त हास्य किया और कहा 'तुम्हारे पास भी अखूट खाजा और खाण्ड का—अमृत भोजन का—डब्बा भरा पड़ा है, खोलकर खाओ न!' ये वात्सल्यपूर्ण सहृदय प्रेरक वचन सुनकर, 'अहो! वह अमृतभोजन का डब्बा खोलने की कला हमें कब प्राप्त हो और अमृतभोजन करके तृप्त हों!' ऐसी हृदयोर्मि मेरे में जागी।

—इस प्रकार के उपरोक्त साहजिक भाव से मुख्यतया गुरुदेव के द्वारा सत्य धर्म की प्रभावना हुई थी, कोई योजनापूर्वक नहीं।

गुरुदेव का सिंहनाद

जैन के सभी फिरकों में शरीराश्रित क्रियाकाण्डों में अथवा क्रियाकाण्डावलम्बी शुभभावों में प्राय: धर्म माना जाता था। ऐसे समय में गुरुदेव ने स्वानुभूतियुक्त सहज सिंह गर्जना की कि—आत्मा एक ज्ञानानन्दस्वभावी पदार्थ है। उसका स्वानुभव किये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्ज्ञान नहीं होता, सम्यक्चारित्र नहीं होता। स्वानुभूति होते ही जो शुद्धभाव का अंश प्रकट होता है, वही वृद्धिंगत होते-होते मोक्ष को साधता है। यह मोक्ष प्राप्त करने की विधि है। इसके सिवा कोई दूसरी विधि नहीं है—ऐसा हम स्वानुभव से कहते हैं। तुम नि:शंक होकर इस मार्ग पर चले आओ। शुद्धभाव की अपूर्णता में साथ में जो शुभभाव होते हैं, वे तो वास्तव में बन्ध के कारण होने पर भी उपचार से मोक्ष के कारण कहे जाते हैं। इसलिए इस अमूल्य मनुष्यभव में आत्महित कर लेने की इच्छा रखनेवाले जीवों को वस्तुस्वरूप समझकर स्वानुभूतियुक्त सम्यग्दर्शन प्राप्त करके आंशिक शुद्ध परिणति प्रकट करने का पुरुषार्थ कर्तव्य है।

इस प्रकार वास्तव में गुरुदेव ने स्वानुभूतिप्रधानता का युग प्रवर्तित

किया है। 'मेरा धनी नहिं दूर दिसंतर, मोही में है मोहि सूझत नीकै' ऐसी प्रबल सिंह गर्जना करके गुरुदेव ने सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत स्वानुभूतिप्रधान जिनशासन की निस्तेज हुई ज्योत में नया तेज पूरकर आत्मार्थी जीवों पर अनहद उपकार किया है।

गुरुदेव का जीवन : आत्मानुभव

अभी थोड़े दिन पहले ही जीवराजजी महाराज ने मुझसे कहा था कि "बहुत साल पहले गुरुदेव चेला नामक गाँव में मंजिल पर घूम रहे थे और मस्ती में गा रहे थे कि 'सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं, न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः।' खूब धून लग गई थी। अभी भी वह दृश्य मेरी आँखों के सामने तैरता है।"

अनन्त चैतन्यचिह्नवाले भगवान आत्मा का सतत अनुभव वह गुरुदेव का जीवन था और इसके सिवा अन्य किसी भी उपाय से साध्य की सिद्धि नहीं है, नहीं है—यह बात उन्होंने जगत समक्ष जीवनपर्यन्त अत्यन्त जोर से घोषित की और सुपात्र जीवों को कल्याण के सच्चे मार्ग पर लगाया।

मोक्षमार्ग का मूलभूत रहस्य

वे फरमाते थे कि 'अशुभ एवं शुभ दोनों भाव बन्ध के कारण हैं, मोक्ष के नहीं।' 'तो मोक्ष का कारण कौन है?' 'शुद्धभाव।' 'जितना कषाय घटे, इतना तो शुद्धभाव होता है न?' तब दृढ़ता से उत्तर मिलता कि 'यह तो शुभभाव है। निरन्तर शुद्ध ऐसे आत्मपदार्थ की श्रद्धा करना, उसको जानना, और उसमें लीन होना, वह शुद्धभाव है।' 'अशुद्धभाव के समय में भी शुद्ध आत्मपदार्थ? अशुद्ध और शुद्ध साथ में कैसे रह सकते हैं?' 'रह सकते हैं। यद् विशेषेऽपि सामान्यं एकमात्रं प्रतीयते। विशेष अशुद्ध हो, तब भी सामान्य

तो एकरूप-शुद्धरूप रहता है। जहाँ अज्ञानी विशेषों का आस्वाद लेते हैं, वहीं ज्ञानीजन सामान्य के आविर्भावपूर्वक स्वाद लेते हैं। यही संक्षेप में बन्धमार्ग और मोक्षमार्ग का मूलभूत रहस्य है।'

स्फटिकमणि के दृष्टान्त से आत्मा का सदा शुद्धत्व

पूज्य गुरुदेव प्रत्येक पदार्थ की स्वतन्त्रता की घोषणा सदा करते और फरमाते कि विश्व के अनन्त द्रव्य पूर्णतया स्वतन्त्र हैं। सभी द्रव्यों के गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्य को शरीरादि परद्रव्यों के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य पदार्थों से बिल्कुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्धभाव को स्वयं ही करता है। यहाँ स्वभावतः प्रश्न उठता कि "(श्री प्रवचनसार में कहे अनुसार) शुभ या अशुभ में परिणमने से 'शुभ या अशुभ' आत्मा बनता है" ऐसा आप कहते हैं और साथ-साथ "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, जिस शुद्धता का आश्रय करना वह मोक्षमार्ग है" ऐसा भी आप फरमाते हैं, इन दोनों बातों का मेल कैसे बैठता है? इस अत्यन्त अत्यन्त महत्त्व की बात का स्पष्टीकरण गुरुदेव इस तरह करते :—

स्फटिकमणि लाल वस्त्र के संयोग से लाल होता है, तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हो गई, सामर्थ्य-अपेक्षा से—शक्ति-अपेक्षा से वह निर्मल रहा है; वह लाल अवश्य हुआ है, वह ललाई स्फटिक की ही है, वस्त्र की बिल्कुल नहीं; परन्तु वह ललाई लालरंग के चूर्ण की, हिंगुल की या कुमकुम की ललाई जैसी नहीं है; लाल अवस्था के समय में भी सामर्थ्यरूप निर्मलता मौजूद है। उसी प्रकार आत्मा कर्म के निमित्त से शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है, तब भी शुद्धता का सर्वथा नाश नहीं हुआ है, सामर्थ्य-अपेक्षा से—शक्ति-अपेक्षा से वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप अवश्य

परिणमित हुआ है, वह शुभाशुभपना आत्मा का ही है, कर्म का बिल्कुल नहीं है; परन्तु शुभाशुभ अवस्था के समय में भी सामर्थ्यरूप शुद्धता मौजूद है। जिस प्रकार स्फटिकमणि को लाल हुआ देखकर बालक रोने लगता है कि 'अरेरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मलिन हो गया' परन्तु जौहरी ललाई के समय में भी मौजूद रही हुई निर्मलता को मुख्यतापूर्वक जानता होने से वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्मा को शुभाशुभभावरूप परिणमता हुआ देखकर अज्ञानी उसे सर्वथा मलिन हुआ मानकर दु:खी दु:खी हो जाता है परन्तु ज्ञानी शुभाशुभपने के समय में ही मौजूद रही हुई शुद्धता को मुख्यतापूर्वक जानता होने से वह निर्भय रहता है।

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्व कहो, द्रव्य कहो या परमपारिणामिकभाव कहो—ये सब एकार्थ हैं, ऐसा गुरुदेव फरमाते।

बहुत साल पहले जब हमारा मण्डल थोड़े भाई-बहिनों का बना हुआ—छोटा था, तब 'इसी समय में आत्मा शुद्ध है' इस बात ने हमारे सभी के मन में भारी आश्चर्य उत्पन्न किया था। स्फटिकमणि के दृष्टान्त अनुसार उस बात का अस्वीकार भी नहीं हो सकता था। बहुत ही आश्चर्य होता :— 'वाह! अभी भी शुद्ध? ऐसा अनुभव (भले उपयोगरूप या लब्धरूप) ज्ञानी को सदा वर्तता है? गजब का परिणमन!' हमेशां यह बात रसमय चर्चा का विषय बनती तथा ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि के परिणमन प्रति अत्यन्त माहात्म्यभाव उत्पन्न होता था और हृदय झुक जाता था।

सामर्थ्यरूप (शक्तिरूप) शुद्धता के-ध्रुवत्व के भान बिना शुद्ध परिणति होती नहीं। ध्रुवत्व अर्थात् अन्वय का अर्थ केवल 'वह... वह... वह'

इतना ही नहीं है, परन्तु केवलज्ञान के सामर्थ्य से भरपूर, अनन्त-सुखसामर्थ्य से भरपूर, अनन्त वीर्यादि-सामर्थ्य से भरपूर ऐसा 'वह... वह... वह'—ऐसा अन्वय, ऐसा सामान्य, ऐसा पारिणामिकभाव, ऐसा ज्ञायक। ऐसे शुद्ध ज्ञायक का गुरुदेव सतत अनुभव कर रहे थे, इसलिए निरन्तर आंशिक शुद्ध परिणति उन्हें वर्तती थी। उसके साथ वर्तता प्रयोजनभूत विषयों का—द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नवतत्त्व, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त, मोक्षमार्ग इत्यादि का—ज्ञान भी उनमें विशुद्धता से सम्यक्रूप परिणमता था, जिससे शास्त्रों के लुप्तप्राय सच्चे भाव उनके द्वारा खुले और जगत में बहुत प्रसारित हुए।

जगत के अभिप्राय के प्रति अति निरपेक्षता

सिद्धान्तनिष्ठा में अत्यन्त दृढ़ता गुरुदेव की लाक्षणिकता थी। सभी क्रान्तिकारों में यह गुण होता है। सिद्धान्त में वे लेशमात्र भी छूट नहीं रखते। वे जगत के अभिप्राय की परवाह नहीं करते। जगत की ओर से मान मिले या अपमान हो, उस तरफ उनकी सम्पूर्ण उपेक्षा रहती। वे कहते—क्या लोग तुझे स्वीकारे तो ही तू सच है? तू तुझे स्वीकारता है फिर जगत की क्या अपेक्षा है? क्या वे तुझसे बड़े हैं कि तुझे उनके अभिप्राय की अपेक्षा रहती है? और यदि वे छोटे हैं, तो फिर उनके अभिप्राय या मान का मूल्य कितना? 'लही भव्यता मोटुं मान, कवण अभवि त्रिभुवन अपमान'—यह उनका प्रिय सूत्र था। यदि तीर्थंकर के ज्ञान में आया कि तू भव्य है, तो उसके जैसा जगत में दूसरा मान कौनसा है? तीर्थंकर के ज्ञान में तो ठीक, किन्तु स्वयं ही निज तीर्थंकर, उसके ज्ञान में आया कि 'मैं भव्य हूँ', फिर मुझे दूसरा क्या मान चाहिए? और अगर तीर्थंकर ने देखा कि यह अभव्य है—अपात्र है, तो तीन लोक में इसके समान

दूसरा कौनसा अपमान है ? फिर पूरा जगत तेरी फूलों से बधाई करे तो भी उसमें तेरी कौनसी बड़ाई हुई ? इस प्रकार गुरुदेव जगत के अभिप्राय की ओर अत्यन्त निरपेक्ष रहते।

मोक्ष का कारण मात्र शुद्धपरिणति

पूज्य गुरुदेव निजात्मानुभवी युगपुरुष थे। उन्होंने निजात्मानुभूति के प्रकाश द्वारा, 'आत्मा क्या है, उसकी शक्ति-व्यक्ति का क्या स्वरूप है, उसे शरीरादि के साथ कौन सा सम्बन्ध है'—ऐसी किसी भी बात का विचार किए बिना लोग शरीरादि की क्रियाओं को और तदाश्रित शुभभावों को मोक्षमार्ग मानकर—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मानकर—प्रवर्तते थे ऐसे काल में, स्वानुभूति के जोरपूर्वक सिंहगर्जना की कि—अरे जीवों! आत्मा देह से बिल्कुल भिन्न, ज्ञानानन्दस्वभाववाला स्वयंसिद्ध पदार्थ है, उसे देह की क्रियाओं से तो बिल्कुल लाभ-हानि है ही नहीं और तदाश्रित शुभभावों से भी मुक्ति तो अंशमात्र भी नहीं होती, सिर्फ देवादि गति की प्राप्ति होती है। मुक्ति तो सर्व परद्रव्यों से भिन्न, शुभाशुभभावों से भी कथंचित् भिन्न, परिपूर्ण ज्ञानस्वभावी आत्मा की अनुभूति करने से होती है। वह अनुभूति गृहस्थदशा में भी हो सकती है। इसलिए इस अमूल्य मनुष्यभव में तुम स्वानुभूति का प्रयत्न करो। वह स्वानुभूति होते ही जो शुद्ध परिणति प्रगट होती है, उसकी उग्रता होना, वही श्रावकपना और मुनिपना है। शुद्ध परिणति की अपूर्णता के कारण, साथ साथ में श्रावकपने या मुनिपने के व्रतादि शुभभाव होते हैं, वे तो बन्ध के कारण हैं, मोक्ष के बिल्कुल नहीं हैं। मोक्ष का कारण तो शुद्ध परिणति ही है। ऐसा मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप जगत के जीवों को समझाकर, उनका सम्यक् मार्ग पर लाकर, इस काल में गुरुदेव ने अवर्णनीय उपकार किया है।

अशुद्धता के समय में भी द्रव्यरूप शुद्धता

आत्मा 'भविष्य में' सर्वज्ञ होगा, सम्पूर्ण सुखी होगा, निर्विकारी होगा ऐसा नहीं, परन्तु 'अभी भी' वह सामर्थ्य-अपेक्षा से विज्ञानघन है, अनन्तानन्द का पिण्ड है, निर्विकारी है, जिसका ज्ञानी को स्पष्ट सानुभव ख्याल होता है। गुरुदेव फरमाते कि—'तेरो सरूप न द्वंद्व की दोही में, तोही में है तोहि सूझत नांही।' तेरा स्वरूप राग-द्वेषादि द्वन्द्व की दुविधा में नहीं है, अभी भी राग-द्वेषरहित है; उसकी सूझ से ही मोक्षमार्ग शुरु होता है। तुझे उसकी सूझ नहीं है, इसलिए तू संसार में परिभ्रमण करता है।

एक बार रात्रिचर्चा में किसी ने पूज्य गुरुदेव को यही प्रश्न पूछा था कि शुभाशुभ पर्याय के समय में भी परिपूर्ण भरचक शुद्धता का कैसे संभव है? गुरुदेव ने उत्तर दिया था कि 'भिन्न-भिन्न विशेषों के समय में भी सामान्य तो एकरूप ही रहा हुआ दिखता है; यह बात समझाते हुए पंचाध्यायी में अनेक दृष्टान्त दिये हैं।' इन दृष्टान्तों को याद करने के लिए गुरुदेव प्रयत्न करते थे, तब सभा में से कोई भाई यह श्लोक बोले:—सन्त्यनेकेऽत्र दृष्टान्ता हेमपद्मज-लानलाः। आदर्शस्फटिकाश्मानौ बोधवारिधिसैंधवाः॥ श्लोक सुनकर गुरुदेव प्रसन्न हुए और सोना, कमल, जल, अग्नि, दर्पण, स्फटिकमणि, ज्ञान, समुद्र और लवण के दृष्टान्तों द्वारा, विशेष-अपेक्षा से होती अशुद्धता के समय में भी सामान्य-अपेक्षा से रहती द्रव्य की शुद्धता समझाई। गुरुदेव ने फरमाया कि द्रव्य-अपेक्षा से अभी ही शुद्धता विद्यमान न हो तो किसी भी काल में पर्यायशुद्धता हो ही नहीं सकती। सभाजन आनन्दित हुए।

मेरु समान अडिग आत्माभिमुखता

गुरुदेव का आचरण हमेशा ही आत्माभिमुख रहा है। जगत के प्रति

हमेशा दुर्लक्ष। ई.स. 1921, 1930 इत्यादि वर्षों में अत्यन्त प्रचण्ड भारतव्यापी राजकीय आन्दोलन हुए थे, जिसके प्रभाव से शायद ही कोई—गरीब हो या धनवान हो, लौकिकजन हो या धार्मिकजन हो—अस्पृष्ट रहा होगा। अपने साथ सबको खींच जाते उन झंझावात के समान आन्दोलनों के बीच भी गुरुदेव मेरु के समान अडिग रहकर निज अन्तर्मुख जीवन में निरन्तर खड़े थे। 'इस एक भव के सुखाभास के लिये कल्पित व्यर्थ प्रयत्न करने से क्या लाभ? मुझे तो एक भव में अनन्त भवों का नाश करना है'—ऐसे भाव से तब भी वे अन्तर्मुख जीवन में अत्यन्त लीन रहे।

आदर्श जीवन

सम्प्रदाय के साधु के रूप में गुरुदेव की जिस गाँव में स्थिति होती, वहाँ मैं सूरत से अवकाश के दिनों में दर्शन के हेतु जाता था। तब मैं उन्हें शान्त एकान्त कमरे में आँखें बन्द कर गम्भीरता से तत्त्वविचार में बैठे हुए देखूँ, पास में शास्त्र पड़ा हो, आँखें खुलते ही मेरे पर नजर पड़ते 'उपयोग उपयोग में है, क्रोध क्रोध में है' ऐसे कुछ वचन निकलते। इस तरह निज प्रयत्न में लीन गुरुदेव के प्रेरक दर्शन होते ही मुझे हृदय में गहरी चोट लगती:—"वाह! यह सच्चा जीवन है। हम तो जीवन को गँवाते हैं; मैं सूरत में क्यों बैठा हूँ? श्रीमद्जी कहते हैं कि 'एक सत्पुरुष को खोजकर उनके चरणकमल में सर्वभाव अर्पण करके वर्तता रह, फिर यदि मोक्ष न मिले तो मेरे पास से लेना।' और वे कहते हैं:—'एक सत्पुरुष को प्रसन्न करने में, उनकी सर्व इच्छाओं को सराहने में, इन्हें ही सत्य मानने में सारी जिन्दगी बीती तो उत्कृष्ट पन्द्रह भव में अवश्य मोक्ष जायेगा।' ऐसा साधन प्रत्यक्ष है तो फिर सूरत में क्यों धन के लिये पड़ा हूँ?" ऐसे विचार आते और निवृत्ति की भावना होती। 'कैसा यह

निवृत्तिमय आत्माभिमुख उद्यम ? कैसा यह ध्येय को समर्पित उत्तम जीवन ? कहाँ तो यह पवित्र जीवन और कहाँ हमारा जीवन ?' इस प्रकार अभी भी गुरुदेव कभी-कभी प्रेरणा दे रहे हैं।

अनुभूतिमार्ग के प्रणेता

जिस प्रकार श्री प्रवचनसार में आचार्य भगवान ने घोषित किया है कि 'श्रामण्य अंगीकार करने का जो यथानुभूत मार्ग उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं' उसी प्रकार अध्यात्मयुगसृष्टा गुरुदेव का भी अत्यन्त दृढ़ सिंहनाद था कि 'हम अनुभव करके कहते हैं कि भवनाशक सुधास्यन्दी अनुभूति का मार्ग ही मोक्ष का मार्ग है, क्योंकि वह अंशतः मुक्ति ही है; उस बीज से परिपूर्ण मुक्तिरूप वृक्ष अवश्यमेव फलेगा। अतः तुम निर्भयता से इस मार्ग पर चले जाओ।'

अक्षीण महानस ऋद्धिधर आत्मद्रव्य

गुरुदेव ने सम्यग्ज्ञानपरिणतिरूप परिणमन करके देखा कि—इस विश्व में समस्त द्रव्य स्वयंसिद्ध हैं, वे प्रत्येक समय में स्वतन्त्ररूप से अपना कार्य स्वयं ही कर रहे हैं, दूसरे द्रव्य उनका कुछ नहीं कर सकते। आत्मद्रव्य भी प्रत्येक समय में स्वतन्त्ररूप से परिणमन करके अपनी अवस्था आप ही कर रहा है और अपनी विकारी या अपूर्ण अवस्था के समय में भी सामर्थ्य-अपेक्षा से तो वह सदा ही परिपूर्ण रहा है—मानों कि 'अक्षीण महानस ऋद्धिधर' हो। भगवान आत्मा कभी भी न खुटे ऐसा अमृतभोजन का अक्षय महाभण्डार है... 'अक्षीण महानस' है।... अथवा वह पावनमूर्ति 'महानल' है, जिसके दर्शनरूप एक ही चिनगारी प्रगट होते वह क्रमशः सभी दोषों को जला देनेवाले महानल के रूप में व्यक्तता प्रज्वलित होता है।

जिस प्रकार आत्मपदार्थ आनन्दामृतमय 'अक्षीण महानस' है,

सर्वदोषदाहक 'महानल' है, वैसे ही वह सर्वज्ञस्वभावी 'महाप्रकाश' है—जो सिर्फ आँख के छिद्रों से देखे, कान के छिद्रों से सुने और जिह्वारूप चमड़े के टुकड़े से आस्वाद ले ऐसा तुच्छ पदार्थ नहीं है, परन्तु स्वयं परिपूर्ण दर्शनात्मक, स्वयं परिपूर्णश्रवणात्मक और स्वयं परिपूर्ण स्वादनात्मक चमत्कारिक महापदार्थ है—ऐसा गुरुदेव ने अन्तर में अनुभव करके, उन्होंने जगत समक्ष निर्भयता से, नि:शंकता से, परम उल्लास से यह बात रखी कि हे जीवो! जिनेन्द्र भगवन्तों द्वारा कहा हुआ, अनुभवियों द्वारा अनुभूत, मोक्ष का मार्ग वह इस 'महाप्रकाश' की अनुभूति में रहा है। अहो यह 'महाप्रकाश'! इस महाप्रकाश के दर्शन में, उसके आश्रय में, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, व्रत, समिति, गुप्ति आदि सर्व भाव समाविष्ट हैं।

सम्यग्ज्ञानपरिणति में ज्ञात हुए उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक भावों के सम्यक् स्वरूपनिरूपण द्वारा गुरुदेव ने अनेक सत्यों का उद्घाटन किया जो जैन दर्शन में थे तो सही, परन्तु उनके ऊपर आवरण आ गया था। अन्तर का सच्चा मोक्षमार्ग लुप्तप्राय हो गया था। प्राय: सर्वत्र मात्र बाह्य क्रिया को और शास्त्रों को रट लेने की रूढ़ि को ही लोग मोक्षमार्ग मानते थे। गुरुदेव ने अन्दर महाप्रकाश देखकर, मोक्षमार्ग में छा गये कूड़े-कचरों को दूर करके जिनशासनगृह में जो जाले लग गये थे, उन्हें साफ करके परम तेजस्वी जिनेन्द्रशासन को—जो कि निस्तेज हो गया था, उसको—पुन: तेजस्वी किया, महावीर भगवान ने शासन को प्राणवन्त किया। अपन भक्ति में गाते हैं न!—

एवा कंईक प्रभावथी, गगनथी ओ कहान! तुं ऊतरे,
अंधारे डूबता अखण्ड सत्ने तुं प्राणवंतुं करे।

जेनो जन्म थतां सहु जगतनां पाखण्ड पाछां पडे,
जेनो जन्म थतां मुमुक्षुहृदयो उल्लासथी विकसे;
जेना ज्ञानकटाक्षथी उदय ने चैतन्य जुदां पडे,
इंद्रो ए जिनसुतना जनमने आनन्दथी ऊजवे।

'यह मैं परिपूर्ण ज्ञाता हूँ, विभाव का सब मैल मुझसे भिन्न है—ऐसे निर्णय का पुरुषार्थ करके, ऐसा भावभासन उत्पन्न करके, ज्ञान-सामान्य के प्रति जोर लाकर, ज्ञानकटाक्ष के द्वारा उदय और चैतन्य भिन्न होते हैं, अन्तर में परम आह्लाद का संवेदन होता है—ऐसा उन्होंने अनुभव किया। ऐसी वस्तु का और ऐसे स्वानुभूत मार्ग का बोध उन्होंने जगत को दिया, आत्मार्थियों को सच्चा मार्ग बताया।

ऐसे परमोपकारी गुरुदेव ने हमारे ऊपर अपार उपकार किया है,—जिसके बिना, एक बुदबुद जैसा पानी के बुल्ले जैसा—यह मनुष्यभव निष्फल चला जाता—कुछ भी कल्याण किये बिना, बुलबुले के समान फूट जाता। हम ध्येयलक्षी-साध्यलक्षी जीवन की यत्किंचित् प्रेरणा प्राप्त करके सब योग्यतानुसार जो कुछ पुरुषार्थ-प्रयत्न कर रहे हैं, वह सब परम कृपालु गुरुदेव की देन है। उन्हें कुछ भी स्वार्थ नहीं था, मात्र स्वयं जो आनन्दभोजन जीमते थे, उसकी रसीली बात आनन्द से बाहर रखते थे।

जैसी अनुभूति वैसी ही वाणी

गुरुदेव का हृदय स्फटिक जैसा निर्मल और उनकी स्वानुभवमुद्रित वाणी वज्र जैसी जोरदार थी, इसलिए उनके प्रवचन श्रोताओं के हृदय को स्पर्श कर जाते थे। कई व्यक्ति तो विरोध करने के लिये आते थे परन्तु प्रवचन सुनकर शान्त हो जाते और भक्त बनकर लौटते थे। गुरुदेव प्रतिपाद्य सिद्धान्तों

को युक्तिपूर्वक समझाते, पूर्वोचार्यों की साक्षी देते और उसके ऊपर अपने अनुभव की मुहर लगाते थे। किसी को आत्मा के अस्तित्व की ही शंका हो, तो "अरे भाई! 'मैं नहीं हूँ', 'मैं नहीं हूँ', ऐसा भाव किस भूमि में उत्पन्न होता है, वह तो देखो! वह भूमि ही आत्मा है।" —ऐसी स्वानुभवगर्भित युक्ति गुरुदेव देते थे जो उसे विचारमग्न कर देती थी। 'आत्मा हाथ क्यों नहीं हिला सकता?' ऐसी शंका करनेवाले को गुरुदेव "आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत् करोति किं। परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥' ऐसी आचार्यदेव की साक्षीयुक्त स्वानुभवगर्भित युक्ति देते थे जो प्रायः शंकाकार के हृदय को स्पर्श कर जाती। उपरोक्त श्लोक गुरुदेव को प्रिय था और वह धार्मिक शिक्षणवर्गों में बहुत वर्षों तक मंगलाचरणरूप में बोला जाता था। जिस प्रकार गुरुदेव की अनुभूति और ज्ञान अद्भुत थे। उसी प्रकार उनकी वाणी सचोट, मधुर एवं रसपूर्ण थी।

विविध उपकार

ऐसे पवित्र ज्ञानावतार पुरुष कि जिन्होंने इस काल में आवरणस्थिति को प्राप्त सम्यग्दर्शन एवं उसके आलम्बनभूत ज्ञायक भगवान की परम महिमा खुल्ली करके जगत में उसकी भेरी बजाई, वे पवित्र पुरुष हमारे जीवनशिल्पी हैं। उनके प्रत्यक्ष उपदेश द्वारा, उनकी टेइप-अवतीर्ण वाणी द्वारा तथा उनके पुस्तकारूढ़ प्रवचनों के द्वारा उनका हमारे ऊपर अपार उपकार वर्त रहा है। तदुपरान्त, वे अपने जीवन द्वारा भी, प्रतीति एवं भावना के साथ ओतप्रोत वर्तनेवाली साधक की सम्यक् जीवनपद्धति का मूल उपदेश दे रहे थे, इसलिए उनके जीवन का भी—उनके प्रत्यक्ष समागम का भी—हमारे ऊपर अथाह उपकार वर्त रहा है। वे 'ज्ञायक, ज्ञायक, मैं त्रिकाल शुद्ध ज्ञायक हूँ' ऐसी

सानुभव प्रतीति से निरन्तर परिणमित हो रहे थे, तो भी साथ साथ 'मुझे कब मुनिदशा प्राप्त हो, मैं कब सिद्धदशा को प्राप्त करूँ'—ऐसी भावना भी उनको सदा रहती थी। ऐसी ही प्रत्येक साधक की जीवन-कला होती है। श्रीमद् राजचन्द्रजी भी, एक ओर से 'जिसको केवलज्ञान भी नहीं चाहिए, उसे परमेश्वर अब कौनसा पद देंगे ?' ऐसा कहकर आत्मा के त्रिकाल मुक्तत्व की प्रतीति व्यक्त करते थे, तो दूसरी ओर से 'क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो' तथा 'प्रभुआज्ञाए थाशुं ते ज स्वरूप जो' इस प्रकार मुनिपद तथा सिद्धपद की भावना भी भाते थे। गुरुदेव ने अपने पवित्र जीवन द्वारा साधक की ऐसी सम्यक् जीवनकला का दिग्दर्शन कराकर हम पर अपार उपकार किया है।

ज्ञायकोपासक गुरुदेव

पूज्य गुरुदेव का अन्तर सदा 'ज्ञायक-ज्ञायक, ध्रुव-ध्रुव-ध्रुव, शुद्ध-शुद्ध-शुद्ध, परमपारिणामिकभाव' इस तरह त्रैकालिक ज्ञायक के आलम्बनरूप निरन्तर—जागृति में या निद्रा में—परिणमित हो रहा था। श्री समयसार, नियमसार वगैरह शास्त्रों पर प्रवचन करते हुए या चर्चावार्ता के अनुसन्धान में वे ज्ञायकस्वरूप का और उसकी महिमा का मधुर संगीत गाते ही रहते थे। अहा! वे स्वतन्त्रता और ज्ञायक के उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थियों को मुक्ति की सच्ची राह दिखायी।

ज्ञायक तणी वार्ता करे, ज्ञायक तणी दृष्टि धरे,
निजदेह-अणुअणुमां अहो! ज्ञातृत्वरस भावे भरे;
ज्ञायक महीं तन्मय बनी ज्ञातृत्व ने फेलावतो,
काया अने वाणी-हृदय ज्ञातृत्वमां रेलावतो!

—ऐसे ज्ञायकोपासक थे हमारे गुरुदेव।

अनेकान्त सुसंगत सन्धिबद्ध जीवन

वे द्रव्य-अपेक्षा से 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' ऐसा अनुभव करते थे तो भी पर्याय-अपेक्षा से 'हम कब सिद्धपना प्रकट करेंगे'—ऐसी भावना भी भाते थे। सिद्धपने की तो क्या, परन्तु संयम की भावनारूप भी वे परिणमते थे। 'कल्पवृक्ष सम संयम केरी अति शीतल ज्यां छायाजी, चरणकरण गुणधार महामुनि मधुकर मन लोभाया जी' इस प्रकार अनेक बार भावविभोर होकर ललकारते हुए प्रवचन में विविध प्रकार से संयम की भावना करते गुरुदेव की पावन मूर्ति मेरी दृष्टि समक्ष तैरती है।

'सिद्धसमान अपने को पूर्ण शुद्ध देखे-माने तो भी क्या संयम की भावना भावे ?' हाँ, शक्ति-अपेक्षा से परिपूर्ण शुद्ध अपने को देखते-मानते हुए भी व्यक्ति-अपेक्षा से शुद्ध होने की ज्ञानी को भावना अवश्य होती है। गुरुदेव ऐसी शास्त्रोक्त यथार्थ संधिबद्ध सम्यक् परिणतिरूप परिणमित हो रहे थे। वास्तव में तो शुद्धस्वरूप के दृष्टा सम्यग्दृष्टि जीव को ही संयम की सच्ची भावना होती है, क्योंकि वह संयम-परिणति का सच्चा स्वरूप जानता है। मिथ्यादृष्टि को संयम की सच्ची भावना होती ही नहीं, क्योंकि उसे सच्चे संयम का ज्ञान नहीं है।

'बहिनश्री के वचनामृत' 380वें बोल में कहा है कि :—'जिस प्रकार सुवर्ण को जंग नहीं लगता, अग्नि को दीमक नहीं लगती; उसी प्रकार ज्ञायकस्वभाव में आवरण, न्यूनता या अशुद्धि नहीं आती।' जिस प्रकार पूज्य गुरुदेव शक्ति-अपेक्षा का यह बोल बारबार उल्लास से याद करते थे, वैसे ही व्यक्ति-अपेक्षा का, सिद्धत्व प्राप्त करने की भावना का 401वाँ बोल भी अनेक बार उल्लसित भाव से याद करके प्रसन्नता से कहते थे:—देखो, बहिन कैसी

भावना भाती हैं ?'यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ?... अब हम स्वरूप-स्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें त्वरा से हमारे मूल वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।'

ऐसा अनेकान्तसुसंगत यथार्थ सन्धिवाला गुरुदेव का जीवन आज भी हमें सच्चा मार्ग दिखा रहा है। वह पवित्र जीवन हमें किन्हीं भी शुभभावों में सन्तुष्ट न होकर ध्रुवतत्त्व के आलम्बन के पुरुषार्थ की मौन प्रेरणा दे रहा है; तथा इसके अतिरिक्त 'मैं ध्रुव हूँ' ऐसी दृढ़ता के साथ-साथ 'हम हमारे मूल वतन में जाने के लिये तरसते हैं' ऐसी आर्द्रता भी रहनी चाहिए, नहीं तो 'ध्रुवतत्त्व' की समझ के प्रकार में ही कुछ भूल है, ऐसी चेतावनी देकर, प्रकाशस्तम्भरूप रहकर, हमारी जीवन नौका को चट्टानी मार्ग से बचाकर, हमें सच्चे मार्ग पर ले जाता है। गुरुदेव का पवित्र जीवन इस प्रकार हमें परोक्षरूप से भी परम उपकारक हो रहा है।

उपकृतभाव से वन्दना और भावना

तदुपरान्त गुरुदेव के टेप-प्रवचन तो मानों कि गुरुदेव प्रत्यक्षरूप से करुणापूर्वक उपदेश दे रहे हों ऐसा भाव उत्पन्न करके मुमुक्षु हृदयों को तृप्त-तृप्त करते हैं। और किन्हीं अंशों में गुरुदेव के विरह को भूलाते हैं। गुरुदेव के पुस्तकारूढ़ प्रवचन भी हमें सम्यक् वस्तुस्वरूप समझने में और निज कल्याण कर लेने की प्रेरणा प्राप्त करने में अत्यन्त उपकारक होते हैं।

ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शनज्ञानपरिणत जीवन जीनेवाले, निडरपना, निःस्पृहता, जगत के मानापमान के प्रति औदासीन्य, ध्येयनिष्ठा, वैराग्य, सहृदयता, निजहितनिरतनिवृत्ति-प्रधानता इत्यादि अनेक गुणगण से अलंकृत गुरुदेवश्री का हमारे ऊपर अवर्णनीय उपकार है। उनके प्रेरणादायी

आत्माभिमुख पुरुषार्थी जीवन के प्रत्यक्ष परिचय से एवं उनकी भावभीनी, स्वानुभूति के जोरवाली, सम्यक्तत्त्व का उपदेश देनेवाली वज्रवाणी से हमारे जीवन बने हैं। उन्होंने देने में तो कुछ भी बाकी नहीं रखा है। अब पुरुषार्थ तो हमें करना है। उनके द्वारा दिखाई हुई शुद्ध परिणति के पुरुषार्थ की भावना हमारे हृदय में कभी गौण न हो, केवल शुभभावपरिणत जीवन में हम कभी सन्तुष्ट न हो जायें, भवभ्रमण को छेदने की खटक हमेशा हमारे हृदय में बनी रहे, तब ही सत्पुरुष की आज्ञा के अनुसार हम चलते हैं, ऐसा कहा जायेगा। शुद्धता की प्राप्ति का उद्यम करते ही रहें, तब ही अति दुर्लभ ऐसा सत्पुरुष-योग सार्थक हुआ माना जायेगा। जिस प्रकार परिपूर्ण शुद्धपरिणतिरूप परिणत जिनभगवान की निश्चयभक्ति आंशिकरूप से शुद्धपरिणति में परिणमना वही है, वैसा यथायोग्य पवित्र परिणति में परिणत गुरुदेव की निश्चयभक्ति भी उस पवित्र परिणति का अंश हमारे अन्तर में प्रकट करने में है। उस निश्चयभक्ति के पुरुषार्थ की भावना के साथ आज के गुरु जन्मजयन्ती के दिन हम परमोपकारी परम पूज्य गुरुदेव के चरणकमल में अत्यन्त उपकृतभाव से वन्दन करते हैं और उनके पवित्र जीवन के अवलोकन से तथा उनके कल्याणकारी उपदेश के चिन्तन से हम जीवन की सम्यक् कला प्रकट करके अपने संसार-परिभ्रमण का अन्त करें, ऐसी भावना भाते हैं।

भक्तिभीनी नम्रभावना

ऐसे परमोपकारी गुरुदेव को आज के इस मंगलकारी प्रसंग पर हम किस प्रकार से पूजें? जो गुरुदेव निरन्तर ज्ञानप्रकाश फैला रहे हैं, उनकी मणिरत्नों के दीपक से आरती उतारें तो भी इस उपकारभानु के आगे ये दीपक अत्यन्त निस्तेज लगते हैं; जो गुरुदेव अपने को हमेशा आत्मिक सुधारस में

तराबोर कर रहे हैं, उनका क्षीरसागर के नीर से अभिषेक करें तो भी वह अभिषेक इस उपकारसागर के आगे एक वृन्द मात्र भी नहीं लगता; और जो गुरुदेव मुक्तिफलदायक मोक्षमार्ग दिखा रहे हैं, उनका कल्पवृक्ष के फल से पूजन करें तो भी उस उपकार मेरु के आगे तुच्छ लगता है। इस प्रकार दैवी सामग्री से पूजन करने पर भी भावना तृप्त नहीं होगी। परमोपकारी गुरुदेव के प्रति भक्तिभावना तब तृप्त होगी कि जब आत्मिक सामग्री से गुरुदेव का पूजन करें—जब आत्मा के असंख्य प्रदेश में केवलज्ञान के दीपक प्रगटाकर गुरुदेव की आरती उतारें, आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में सुखसिन्धु उछालकर गुरुदेव का अभिषेक करें, आत्मा के सर्व प्रदेशों को सर्वथा मुक्त करके उस मुक्तिफल से गुरुदेव का पूजन करें। ऐसी पूजा करने का सामर्थ्य हमें प्राप्त न हो, तब तक परम कृपालु गुरुदेव हमारा हाथ न छोड़े और सदा सर्वदा उनके पास ही रखें, ऐसी कृपासिन्धु गुरुदेव के पास हमारी नम्र भाव से दीन याचना है।

मधुर मंगलमय जीवन

परमोपकारी गुरुदेव का जीवन पूर्णरूपेण मधुर और मंगलमय है। स्वाध्यायमन्दिर के उद्घाटन के अवसर पर एक भाई ने 'मधुराष्टक' पद्य का भाव लेकर एक अपाद्यगद्य गीत गाया था, जिसे सुनकर सब आनन्दित हुए थे। 'मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः।'—माधुर्य के अधिपति, माधुर्य के स्वामी ऐसे कानजीस्वामी सारे ही मधुर हैं, इस मुख्य पंक्तिवाला वह गीत था। उसका अनुसरण करके एक अपद्यागद्य गीत गाकर मैं मेरा वक्तव्य समाप्त करूँगा।

मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति-गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

आत्मा मधुरः, स्वानुभव मधुरः, वैराग्य मधुरं,
ज्ञानं मधुरं, दर्शन मधुरं, वर्तन मधुरं;
मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति-गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

ज्ञायक मधुरः, लगनी मधुरा, वक्ता मधुरः,
पठनं मधुरं, मननं मधुरं, ध्यानं मधुरं;
मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति-गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

स्वर्णपुर मधुरं, मन्दिर मधुरं, स्वाध्यायमन्दिर मधुरं,
समवसरण मधुरं, मानस्तम्भ मधुरः, परमागम मधुरं;
नन्दीश्वर मधुरं, जिनवृन्द मधुरं, तीर्थ मधुरं,
प्रवचन मधुरं, भक्ति मधुरा, चर्चा मधुरा;
मधुराधिपति कानजीस्वामी अखिलः मधुरः,
मधुराधिपति-गुरुदेवस्य सर्वं मधुरं।

रुचि रखना; रुचि ही काम करती है। पूज्य गुरुदेव ने बहुत दिया है। वे अनेक प्रकार से समझाते हैं। पूज्य गुरुदेव के वचनामृतों के विचार का प्रयोग करना। रुचि बढ़ाते रहना। भेदज्ञान होने में तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है। 'ज्ञायक', 'ज्ञायक', 'ज्ञायक'—उसी की रुचि हो तो पुरुषार्थ का झुकाव हुए बिना न रहे।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

हुकमचन्दजी सेठ के उद्‌गार

जैन समाज का यह बेताज–बादशाह आज हमारे बीच में नहीं है; किन्तु गुरुदेव सम्बन्धी उनके उद्‌गार आज याद आते हैं। सर्वप्रथम संवत् 2001 में सोनगढ़ आये, तब गुरुदेव का प्रवचन सुनते–सुनते आनन्दित होकर वे बोल उठे कि :—

'कुन्दकुन्द भगवान ने तो शास्त्रों में सब कहा है, किन्तु उसका रहस्य समझाने के लिये आपका जन्म है।''सम्यग्दृष्टि के बिना कोई यह बात नहीं समझ सकता। मिथ्यादृष्टि–अज्ञानी जीव आपकी बात नहीं स्वीकार करता, सम्यग्दृष्टि जैसे जीव ही आपकी बात समझ सकते हैं। हमको बहुत आनन्द आता है।'

' अहो सभाजनों! आपका बड़ा भाग्य है कि आप सत्पुरुष के अध्यात्म–उपदेश का बड़ी रुचि से नित्य लाभ ले रहे हैं; मैं तो तुच्छ आदमी हूँ, आप तो बड़े भाग्यवान् हैं। हम तो अल्प लाभ ले सके हैं, तो भी हमारे आनन्द का क्या कहूँ? यदि इस अध्यात्मज्ञान के लिये मेरा सब कुछ अर्पण किया जाये तो भी कम है।'

'महाराजजी का यह अद्‌भुत तत्त्वज्ञान तमाम दुनिया में सब भाषा में प्रचार होवे, ऐसी हमारी भावना है।' [पूज्य गुरुदेव के अभिनन्दन ग्रन्थ से]

तत्त्व के आदर में सिद्धगति है और तत्त्व के अनादर में निगोदगति है। सिद्धगति में जाते हुए बीच में एक दो भव हों, उनकी गिनती नहीं है; और निगोद में जाते हुए बीच में अमुक भव हों, उनकी गिनती नहीं है, क्योंकि त्रस का काल थोड़ा है, और निगोद का काल अनन्त है। तत्त्व के अनादर का फल निगोदगति और आदर का फल सिद्धगति है।

—पूज्य गुरुदेवश्री

जन्मशताब्दी-सुअवसर पर मुमुक्षुमण्डलों के भाई-बहिनों की

सामूहिक अभिवन्दना

हे परम कृपालु गुरुदेव! आपने लघुवय में पूर्वोपार्जित धर्मसंस्कार जागृत करके, ज्ञान-वैराग्य-उपशमपूर्वक तत्त्वनिर्णय के बल द्वारा शुद्धात्माभिमुखता का सातिशय पुरुषार्थ करके सानुभव आत्मसाधना प्रगट की है, आपके सद्धर्मवृद्धिकर पावन प्रभावना-उदय से देशविदेश में हजारों धर्मपिपासु स्वानुभूतिप्रधान अध्यात्मधर्म समझने की ओर झुके हैं तथा उसमें प्रगति कर रहे हैं, आपश्री की चैतन्यस्पर्शी अनुभववाणी के वज्रप्रहार अन्तर के सच्चे आत्मार्थी को मिथ्यात्व के चूरेचूरा कर आत्मानुभूति प्राप्त कराती है, आपके पुनीत प्रताप से गाँव-गाँव में मुमुक्षुमण्डल स्थापित हुए, स्वाध्याय-मन्दिर और जिनमन्दिर हुए, अध्यात्मतत्त्वप्रधान स्वाध्याय की जगह जगह प्रवृत्ति चली;—इस तरह विविध प्रकार से इस काल में मुमुक्षु समाज का नवसर्जन करके आपश्री ने एक असाधारण अध्यात्मयुग का सर्जन किया है; इसलिए अध्यात्मयुगसृष्टा, परम-तारणहार परमोपकारी परमपूज्य हे कहान गुरुदेव! आपश्री के अनुपम असीम उपकारों को हमेशा हृदयोत्कीर्ण रखकर आपके चरणों में अत्यन्त भक्तिभाव से नमस्कार करके आज के जन्म शताब्दी के मंगल अवसर पर आपश्री को पुनः पुनः अभिवन्दन करते हैं।

—सोनगढ़, उमराला, भावनगर, बोटाद, गढडा, वढवाण, सुरेन्द्रनगर, जोरावरनगर, लींबडी, राणपुर, लाठी, अमरेली, सावरकुंडला, कानातलाब, आंकडिया, वडिया, गोंडल, जेतपुर, पोरबन्दर, राजकोट, जामनगर, वांकानेर, मोरबी, चोटीला, अहमदाबाद, वडोदरा, मियांगाम, पालेज, सूरत,

मुम्बई, दादर, घाटकोपर, उपनगर (मलाड), हैदराबाद, बैंगलोर, मद्रास, जलगाम, मलकापुर, खण्डवा, सनावद, इन्दौर, उज्जैन, भोपाल, सागर, ललितपुर, दमोह, विदिशा, बीना, गुना, अशोकनगर, जबलपुर, शिवनी, उदयपुर, कोटा, जयपुर, कलकत्ता, दिल्ली, सहारनपुर, रांची, कानपुर, बुलन्दशहर, अकोला, राघवगढ़, खेरागढ़, नागपुर, दहेगाम, रखियाल, फतेपुर, हिम्मतनगर, रणासण, नैरोबी, मोम्बासा, लंदन, सिकन्दराबाद, कोचीन, देहरादून

—इत्यादि शताधिक देश-विदेशवासी सर्व मुमुक्षुमण्डल के भाई-बहिन।

अहो! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं, उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरु का दासत्व चाहिए।

पूज्य कहानगुरुदेव से तो मुक्ति का मार्ग मिला है। उन्होंने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है। गुरुदेव का अपार उपकार है। वह उपकार कैसे भूला जाये?

गुरुदेव का द्रव्य तो अलौकिक है। उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारी है।

परम-उपकारी गुरुदेव का द्रव्य मंगल हैं, उनकी अमृतमयी वाणी मंगल है। वे मंगलमूर्ति हैं, भवोदधितारणहार हैं, महिमावन्त गुणों से भरपूर हैं।

पूज्य गुरुदेव के चरणकमल की भक्ति और उनका दासत्व निरन्तर हो।

— बहिनश्री चम्पाबहिन

श्री कहानगुरु-जन्मधाम-उमराळा

उमराळामां जनमिया ऊजमबा-कूख-नंद
कहान तारूं नाम छे, जग-उपकारी संत।
मात-पिता-कुळ-जात सुधन्य अहो! गुरुराजनां रे;
जेने आंगण जन्म्या परमप्रतापी कहान,
जेने पारणियेथी लगनी निज कल्याणनी रे;
शासन-उद्धारक गुरु जन्मदिवस छे आजनो रे।

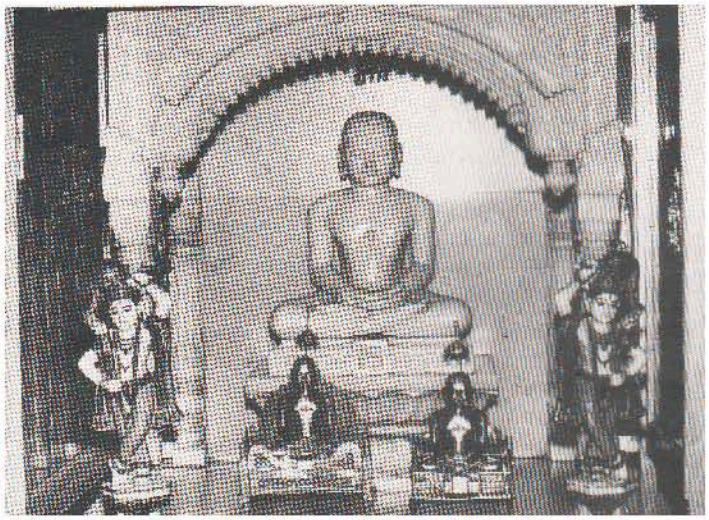

गुरुजन्मधाममां नवनिर्मित श्री सीमन्धर-चैत्यालय

सीमन्धरा! नमं तने शिर नामी नामी!

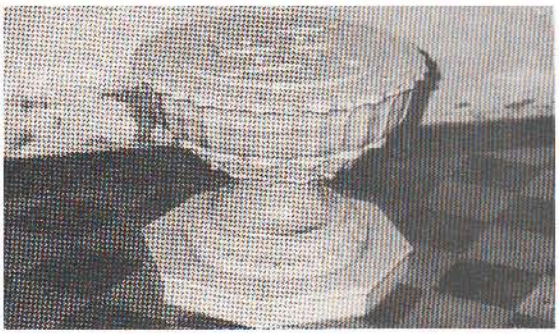

कहानगुरु-जन्मस्थळ पर स्वस्तिक-अंकित भव्य कमळ

तुज पादपंकज ज्यां थयां ते देशने पण धन्य छे;
अे गाम-पुरने धन्य छे, अे मात कुळ ज वंद्य छे,
तारां कर्यां दर्शन अरे! ते लोक पण कृतपुण्य छे;
तुज पादथी स्पर्शाइ अेवी धूलिने पण धन्य छे।

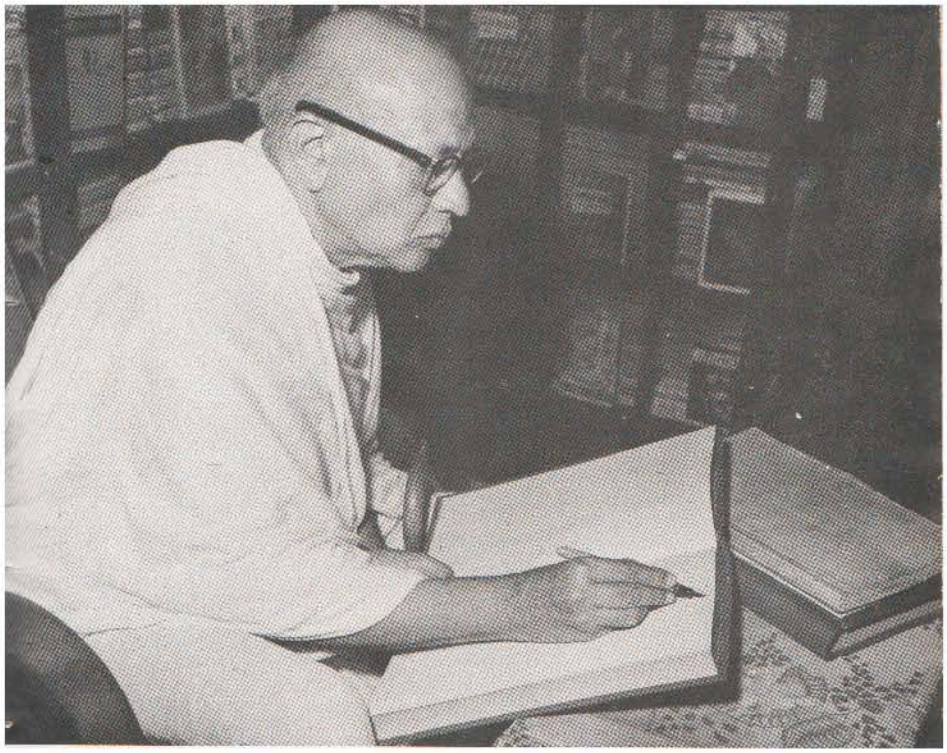

गुरुदेव द्वारा 'ॐकार' लेखन

*

विदेहक्षेत्रमां सीमंधरनाथनी दिव्यध्वनिनुं श्रवण करीने
भरतक्षेत्रे पधारेला कहान-गुरुदेवना हृदयमां नितपत
वर्ते छे
'ॐकार' केरो वास।

जन्मशताब्दी-विशेषांक

(१) श्री आनन्दभाई जसाणी, (२) पण्डित श्री हिमतलालभाई शाह, (३) श्री हसमुखभाई वोरा, (४) श्री चिमनलालभाई मोदी, (५) स्व. श्री व्रजलालभाई शाह, (६) डॉ. प्रवीणभाई दोशी, (७) श्री हीरालालजी काला, (८) ब्र. चन्दुभाई झोबाळिया, (९) श्री शशिकान्तभाई सेठ, (१०) श्री हीरालालभाई शाह, (११) श्री जितेन्द्रभाई शाह, (१२) श्री प्राणलालभाई कामदार, (१३) श्री पवनकुमारजी जैन, (१४) ब्र. व्रजलालभाई शाह, (१५) श्री धीरजलालभाई बोरडिया

सकल मुमुक्षुगण की भक्तिवन्दना

(1)

गम्भीर तारी वाणीमां भावार्थ बहु ऊंडा छतां,
जे हृदय तारूं जाणता ते भाव तारो खेंचता।
तुज वदन-कमळेथी बहे उपदेशनां अमृत अहो!
अध्यात्म-अमृत-पानीथी वारी जता कोटी जनो।
उपकार तारा शुं कथुं? गुणगान तारां शुं करूं?
वन्दन करूं, स्तवना करूँ, तुज चरणसेवाने चहूं।

(2)

पावन-मधुर-अद्भुत अहो! तुज वदनथी अमृत झर्यां,
श्रवणो मळ्यां सद्भाग्यथी, नित्ये अहो! चिद्रसभर्यां;
गुरुकहान तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्या,
भव भव रहो अम आत्मने सांनिध्य आवा संतनां।

(3)

गणनातीत गुरु-उपकार मुज अणु-अणुए रे,
शब्दोथी केम कथाय, नमुं नमुं भावे रे;
देव-गुरु तणो वसवाट सदा मुज दिलमां रे,
शिवपद तक रहुं तुम दास—भावुं उरमां रे॥

आजे भरतभूमिमां....

(राग : मारा मन्दिरियामां त्रिशल्यानन्द)

आजे भरतभूमिमां सोना-सूरज ऊगियो रे;
मारा अंतरिये आनंद अहो! ऊभराय,
शासन-उद्धारक गुरु जन्मदिवस छे आजनो रे;
गुरुवर-गुणमहिमाने गगने देवो गाय,
विधविध रत्नोथी बधावुं हुं गुरुराजने रे। आजे० 1॥

(साखी)

उमराळामां जनमिया ऊजमवा-कूख-नन्द;
कहान तारुं नाम छे, जग-उपकारी संत।

मात-पिता-कुळ-जात सुधन्य अहो! गुरुराजनां रे;
जेने आंगण जन्म्या परमप्रतापी कहान,
जेने पारणियेथी लगनी निज कल्याणनी रे। आजे० 2॥

(साखी)

'शिवमरणी रमानार तुं, तुं ही देवनो देव;
जाग्या आतमशक्तिना भणकारा स्वयमेव।

परमप्रतापी गुरुए अपूर्व सतने शोधियुं रे;
भगवत्कुन्दऋषीश्वर चरण-उपासक सन्त,
अद्भुत धर्मधुरंधर धोरी भरते जागिया रे। आजे० 3॥

(साखी)

वैरागी धीरवीर ने अन्तरमांही उदास;
त्याग ग्रह्यो निर्वेदथी, तजी तनडानी आश।
वन्दुं सत्य-गवेषक गुणवन्ता गुरुराजने रे;
जेने अन्तर उलस्यां आत्म तणां निधान,
अनुपम ज्ञान तणा अवतार पधार्या आंगणे रे। आजे० 4॥

(साखी)

ज्ञानभानु प्रकाशियो, झळक्यो भरत मोझार;
सागर अनुभवज्ञाननो रेलाव्यो गुरुराज।
महिमा तुज गुणनो हुं शुं कहुं मुखथी साहिबा रे;
दुःषमकाळे वरस्यो अमृतनो वरसाद,
जयजयकार जगतां कहानगुरुनो गाजतो रे। आजे० 5॥

(साखी)

अध्यातमना राजवी, तारणतरण जहाज;
शिवमारगने साधीने कीधां आतमकाज।
तारा जन्मे तो हलाव्युं आखा हिन्दने रे;
पंचमकाळे तारो अजोड छे अवतार,
सारा भरते महिमा अखण्ड तुज व्यापी रह्यो रे। आजे० 6॥

(साखी)

सद्दृष्टि, स्वानुभूति, परिणति मंगलकार;
सत्य पन्थ प्रकाशता, वाणी अमीरसधार।

गुरुवर-वदनकमळथी चैतन्यरस वरसी रह्या रे;
जेमां छाई रह्या छे मुक्ति केरा मार्ग,
एवी दिव्य विभूति गुरुजी अहो! अम आंगणे रे। आजे० 7॥

(साखी)

शासननायक वीरना नन्दन रूडा कहान;
ऊछळ्या सागर श्रुतना, गुरु-आतम मोझार।

पूर्वे सीमंधरजिन-भक्त सुमंगल राजवी रे;
भरते ज्ञानी अलौकिक गुणधारी भडवीर,
शासन-संतशिरोमणि स्वर्णपुरे बिराजता रे। आजे० 8॥

(साखी)

सेवा पदपंकज तणी नित्य चहुं गुरुराज!
तारी शीतळ छांयमां करीए आतमकाज।

तारा जन्मे गगने देवदुंदुभि वागियां रे;
तारा गुणगणनो महिमा छे अपरंपार,
गुरुजी रत्नचिंतामणि शिवसुखना दातार छो रे;
तारां पुनित चरणथी अवनी आवजे शोभती रे। आजे० 9॥

देव-गुरु की वाणी और देव-शास्त्र-गुरु की महिमा चैतन्यदेव की महिमा जागृत करने में, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में तथा स्वरूपप्राप्ति करने में निमित्त हैं।

—बहिनश्री चम्पाबहिन

कहानगुरु-जन्मशताब्दी के मंगल अवसर पर

(पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय में उत्कीर्ण)

'गुरुदेवश्री के वचनामृत' से चुना गया

❀ वचनामृतशतक ❀

पूर्णता के लक्ष से शुरुआत ही सच्ची शुरुआत है।1

❀

निश्चयदृष्टि से प्रत्येक जीव परमात्मस्वरूप ही है। जिनवर और जीव में अन्तर नहीं है। भले ही वह एकेन्द्रिय का जीव हो या स्वर्ग का जीव हो। वह सब तो पर्याय में है। आत्मवस्तु स्वरूप से तो परमात्मा ही है। पर्याय के ऊपर से हटकर जिसकी दृष्टि स्वरूप के ऊपर गई है, वह तो अपने को भी परमात्मस्वरूप देखता है और प्रत्येक जीव को भी परमात्मस्वरूप देखता है। सम्यग्दृष्टि सर्व जीवों को जिनवर जानता है और जिनवर को जीव जानता है। अहा! कितनी विशाल दृष्टि! अरे, यह बात बैठ जाये तो कल्याण हो जाये; परन्तु ऐसी स्वीकृति को रोकनेवाले मिथ्या मान्यतारूपी गढ़ों का पार नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि बारह अंग का सार यह है कि आत्मा को जिनवर समान दृष्टि में लेना, क्योंकि आत्मा का स्वरूप परमात्मा जैसा ही है।2

❀

चमड़ा उतारकर जूते बनवा दे, तथापि जिस उपकार का बदला न दिया जा सके—ऐसा उपकार गुरु आदि का होता है। उसके बदले उनके उपकार का लोप करे, वह तो अनन्त संसारी है। किसके पास श्रवण किया जाये, इसका भी जिसे विवेक नहीं है, वह आत्मा को समझने के योग्य नहीं है—पात्र नहीं है। जिनके लौकिक न्याय नीति का भी ठिकाना नहीं है, ऐसे जीव शास्त्रों का

प्रवचन करें और उसे जो सुनने जायें, वे श्रोता भी पात्र नहीं हैं।3

❀

आत्मा का प्रयोजन सुख है। प्रत्येक जीव सुख चाहता है और सुख के लिये झूरता है। हे जीव! तेरे आत्मा में सुख नाम की शक्ति होने से आत्मा ही सच्चे सुखरूप होता है। आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र —यह तीनों सुखरूप हैं। आत्मा का धर्म सुखरूप है, दुःखरूप नहीं है। हे जीव! तुझे अपनी सुखशक्ति में से ही सुख प्राप्त होगा, अन्यत्र कहीं से तुझे सुख की प्राप्ति नहीं होगी; क्योंकि तू जहाँ है, वहीं तेरा सुख है। तेरी सुखशक्ति ऐसी है कि जहाँ दुःख कभी प्रवेश ही नहीं कर सकता; इसलिए आत्मा में डुबकी लगाकर अपनी सुखशक्ति को उल्लसित कर—उल्लसित कर!! अर्थात् पर्याय में परिणमित कर, जिससे तुझे अपने सुख का प्रगट अनुभव होगा।4

❀

मैं एक अखण्ड ज्ञायकमूर्ति हूँ, विकल्प का एक अंश भी मेरा नहीं है—ऐसा स्वाश्रयभाव रहे, वह मुक्ति का कारण है और विकल्प का एक अंश भी मुझे आश्रयरूप है—ऐसा पराश्रयभाव रहे, वह बन्ध का कारण है।5

❀

प्रश्नः—जिस प्रकार स्वद्रव्य आदरणीय है, उसी प्रकार उसकी भावनारूप निर्मल पर्याय आदरणीय कही जाती है?

उत्तरः—हाँ; राग हेय है, उसकी अपेक्षा से निर्मल पर्यायों को आदरणीय कहा जाता है और द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय वह व्यवहार है, वह आश्रययोग्य नहीं होने से हेय कही जाती है। क्षायिकपर्याय भी द्रव्य की अपेक्षा से हेय कही जाती है, किन्तु राग की अपेक्षा से क्षायिकभाव को

आदरणीय कहा जाता है।6

❀

मोक्षमार्ग में व्यवहार का अस्तित्व है किन्तु उसका आश्रय नहीं है। साधक की पर्याय में राग होता है परन्तु साधकपना उसके आश्रय से नहीं है। धर्मी को भूमिकानुसार राग होता है किन्तु राग स्वयं धर्म नहीं है। धर्मी को शुभराग का व्यवहार होता है किन्तु उसके आश्रय से वे लाभ नहीं मानते। जिसके सच्चा व्यवहार है, उसे व्यवहार की रुचि नहीं होती और जिसे व्यवहार की रुचि है, उसके सच्चा व्यवहार नहीं होता। जिसे दु:ख का यथार्थ ज्ञान हो, उसे अकेला दु:ख नहीं होता और जिसके अकेला दु:ख है, उसे उसका यथार्थ ज्ञान नहीं होता। सच्चे पुरुषार्थी को अनन्त भव की शंका नहीं होती और अनन्त भव की शंकावाले को सच्चा पुरुषार्थ नहीं होता। सर्वज्ञ को जो पहिचानता है, उसके अनन्त भव नहीं होते तथा सर्वज्ञ ने उसके अनन्त भव देखे नहीं हैं।7

❀

अति अल्प काल में जिसे संसार परिभ्रमण से मुक्त होना है, ऐसे अति-आसन्न भव्य जीव को निज परमात्मा के सिवा अन्य कुछ उपादेय नहीं है। जिसमें कर्म की कोई अपेक्षा नहीं है, ऐसा जो अपना शुद्धपरमात्मतत्त्व, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है और उसी का आश्रय करने से सम्यक्चारित्र होता है और उसी का आश्रय करने से अल्प काल में मुक्ति होती है; इसलिए मोक्ष के अभिलाषी ऐसे अति-निकटभव्य जीव को अपने, शुद्धात्मतत्त्व का ही आश्रय करना योग्य है, उससे भिन्न अन्य कुछ आश्रय करनेयोग्य नहीं है। इसलिए हे मोक्षार्थी जीव! अपने शुद्धात्मतत्त्व को ही तू उपादेय कर;—वही उपादेय है, ऐसी श्रद्धा कर, उसी को उपादेयरूप जान,

तथा उसी को उपादेय बनाकर उसमें स्थिर हो। ऐसा करने से अल्पकाल में तेरी मुक्ति होगी।8

❀

प्रातःकाल जिसे राजसिंहासन पर देखा हो, वही सायंकाल श्मशान में राख होता दिखायी देता है। ऐसे प्रसंग तो संसार में अनेक बनते हैं, तथापि मोहविमूढ़ जीवों को वैराग्य नहीं आता। भाई! संसार को अनित्य जानकर तू आत्मोन्मुख हो। एक बार अपने आत्मा की ओर देख। बाह्यभाव अनन्त काल करने पर भी शान्ति नहीं मिली, इसलिए अब तो अन्तर्मुख हो। यह संसार या संसार के संयोग स्वप्न में भी इच्छनीय नहीं हैं। अन्तर का एक चिदानन्द तत्त्व ही भावना करनेयोग्य है।9

❀

जिस प्रकार चने में मिठास की शक्ति भरी है, कचास के कारण वह कसैला लगता है और बोने से उगता है, किन्तु सेंकने से उसका मीठा स्वाद प्रगट होता है और वह बोने पर उगता नहीं है; उसी प्रकार आत्मा में मिठास अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्दशक्ति परिपूर्ण विद्यमान है, उस शक्ति को भूलकर 'शरीर सो मैं, रागादि सो मैं' ऐसी अज्ञानरूपी कचास के कारण उसे अपने आनन्द का अनुभव नहीं है किन्तु अशुद्धता का अनुभव है और पुनः-पुनः वह अवतार धारण करता है, परन्तु अपने स्वरूप-सन्मुख होकर उसमें एकाग्रतारूप अग्नि द्वारा सिकने से स्वभाव के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है और फिर उसे अवतार नहीं होता।10

❀

तत्त्वविचार के अभ्यास से जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। जिसे तत्त्व का विचार नहीं है, वह देव-शास्त्र-गुरु तथा धर्म की प्रतीति करता है, अनेक शास्त्रों का अभ्यास करता है, व्रत-तप आदि करता है, तथापि सम्यक्त्व के

सन्मुख नहीं है—सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं है; और तत्त्वविचारवाला उसके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। सम्यग्दर्शन के लिये मूलभूत तो तत्त्वविचार का उद्यम ही है; इसलिए तत्त्वविचार की मुख्यता है। 11

❀

सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं जिसे आत्मा के पूर्ण स्वभाव का अन्तर में विश्वासपूर्वक उसका सच्चा श्रद्धान—सम्यग्दर्शन—हुआ हो। मैं ज्ञान-आनन्दादि अनन्त शक्तियों से परिपूर्ण पदार्थ हूँ—ऐसा प्रथम विश्वास आया, तब अन्तर में आत्मा का अनुभव हुआ। पूर्ण स्वभाव को ग्रहण करने से अन्तर में विश्वास होता है। अनादि से जीव का विश्वास वर्तमान पर्याय में है; परन्तु वह पर्याय जहाँ है, वहीं गहराई में, उसके तल में अखण्ड पूर्ण वस्तु पड़ी है; वह अनन्तानन्त अपरिमित शक्तियों का सागर है, उसका जिसे अन्तर में विश्वास आये और जो अन्तर अनुभव में उतर जाये, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। 12

❀

अहा! देखो यह परम सत्यमार्ग। वर्तमान में भगवान सीमन्धर परमात्मा पूर्व विदेहक्षेत्र में विराज रहे हैं, वहाँ जाकर श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव भगवान की दिव्यध्वनि सुन आये, और फिर उन्होंने इन शास्त्रों में परम सत्यमार्ग की स्पष्टता की है। अहा, कैसा सत्य मार्ग! कितना स्पष्ट मार्ग! कितना प्रसिद्ध मार्ग! लेकिन वर्तमान में लोग शास्त्रों के नाम से भी मार्ग में बड़ी गड़बड़ी पैदा कर रहे हैं। क्या किया जाये? ऐसा ही काल है! परन्तु सत्य मार्ग तो जैसा है, वैसा ही रहेगा। शुद्धोपयोगरूप साक्षात् मोक्षमार्ग तीनों काल जयवन्त है, वही अभिनन्दनीय है। 13

❀

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। मैं भी एक स्वतन्त्र पदार्थ हूँ, कर्म मुझे रोक नहीं सकते।

प्रश्नः—महाराज! दो जीवों को 148 कर्म प्रकृतियों सम्बन्धी सर्व भेद-प्रभेदों के प्रकृति प्रदेश-स्थिति-अनुभाग सब बराबर एकसमान हों तो वे जीव उत्तरवर्ती क्षण में समान भाव करेंगे या भिन्न-भिन्न प्रकार के?

उत्तरः—भिन्न-भिन्न प्रकार के।

प्रश्नः—दोनों जीवों की शक्ति तो पूर्ण है और आवरण बराबर एक समान है, तो फिर भाव भिन्न-भिन्न प्रकार के कैसे कर सकेंगे?

उत्तरः—'अकारण पारिणामिक द्रव्य है' अर्थात् जीव जिसका कोई कारण नहीं है, ऐसे भाव से स्वतन्त्ररूप से परिणमनेवाला द्रव्य है, इसलिए उसे अपने भाव स्वाधीनरूप से करने में सचमुच कौन रोक सकता है? वह स्वतन्त्ररूप से अपना सब कर सकता है।14

❀

द्रव्य में गहरे उतर जा, द्रव्य के पाताल में जा। द्रव्य वह चैतन्यवस्तु है, गहरा-गहरा गम्भीर-गम्भीर तत्त्व है, ज्ञान-आनन्दादि अनन्त-अनन्त गुणों का पिण्डरूप अभेद एक पदार्थ है; उसमें दृष्टि लगाकर भीतर घुस जा। 'घुस जा' का अर्थ ऐसा नहीं है कि पर्याय द्रव्य हो जाती है; परन्तु पर्याय की जाति, द्रव्य का आश्रय करने से द्रव्य जैसी निर्मल हो जाती है; उसे, पर्याय द्रव्य में गहरी उतर गई—अभेद हो गई—ऐसा कहा जाता है।15

❀

स्वानुभूति होने पर जीव को कैसा साक्षात्कार होता है? स्वानुभूति होने पर, अनाकुल-आह्लादमय, एक, समस्त ही विश्व पर तैरता विज्ञानघन परम

पदार्थ-परमात्मा अनुभव में आता है। ऐसे अनुभव बिना आत्मा सम्यक्रूप से दृष्टिगोचर नहीं होता—श्रद्धा में ही नहीं आता, इसलिए स्वानुभूति के बिना सम्यग्दर्शन का—धर्म का प्रारम्भ ही नहीं होता।

ऐसी स्वानुभूति प्राप्त करने के लिये जीव को क्या करना? स्वानुभूति की प्राप्ति के लिये ज्ञानस्वभावी आत्मा का चाहे जिस प्रकार भी दृढ़ निर्णय करना। ज्ञानस्वभावी आत्मा का निर्णय दृढ़ करने में सहायभूत तत्त्वज्ञान का—द्रव्यों का स्वयंसिद्ध सत्पना और स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, नव तत्त्व का सच्चा स्वरूप, जीव और शरीर की बिल्कुल भिन्न-भिन्न कियाएँ, पुण्य और धर्म के लक्षणभेद, निश्चय-व्यवहार इत्यादि अनेक विषयों के सच्चे बोध का—अभ्यास करना चाहिए। तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा कहे गये ऐसे अनेक प्रयोजनभूत सत्यों के अभ्यास के साथ-साथ सर्व तत्त्वज्ञान का सिरमौर—मुकुटमणि जो शुद्ध द्रव्यसामान्य अर्थात् परमपारिणामिकभाव अर्थात् ज्ञायकस्वभावी शुद्धात्म द्रव्यसामान्य—जो स्वानुभूति का आधार है, सम्यग्दर्शन का आश्रय है, मोक्षमार्ग का आलम्बन है, सर्व शुद्धभावों का नाथ है—उसकी दिव्य महिमा हृदय में सर्वाधिकरूप से अंकित करने योग्य है। उस निज शुद्धात्म द्रव्यसामान्य का आश्रय करने से ही अतीन्द्रिय आनन्दमय स्वानुभूति प्राप्त होती है।16

❀

योगीन्द्रदेव कहते हैं कि अरे जीव! अब तुझे कब तक संसार में भटकना है? अभी तू थका नहीं? अब तो आत्मा में आकर आत्मिक आनन्द का भोग कर! अहाहा! जैसे पानी की नहर बहती हो, वैसे ही यह धर्म की नहर बह रही है। पीना आता हो तो पी। भाई! अच्छे काल में तो कल का

लकड़हारा हो, वह आज केवलज्ञान प्राप्त करता था, ऐसा वह काल था। जिस प्रकार पुण्यशाली को पग-पग पर निधान निकलें, उसी प्रकार आत्मपिपासु को पर्याय-पर्याय में आत्मा में से आनन्द के निधान मिलते हैं। 17

❀

जो वीतरागदेव और निर्ग्रन्थ गुरुओं को नहीं मानता, उनकी सच्ची पहिचान तथा उपासना नहीं करता, उसे तो सूर्योदय होने पर भी अन्धकार है। तथा जो वीतराग गुरुओं द्वारा प्रणीत सत्शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता, वह आँखें होने पर भी अन्ध है। विकथा पढ़ता रहे और शास्त्रस्वाध्याय न करे, उसकी आँखें किस काम की? ज्ञानी गुरु के पास रहकर जो शास्त्रश्रवण नहीं करता और हृदय में उनके भाव को नहीं अवधारता, वह मनुष्य वास्तव में कान एवं मन से रहित है, ऐसा कहा है। जिस घर में देव-शास्त्र-गुरु की उपासना नहीं होती, वह सचमुच घर ही नहीं है, कारागृह है। 18

❀

समस्त सिद्धान्त के सार का सार तो बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख होना है। श्रीमद् ने कहा है न!—'उपजै मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अन्तर्मुख अवलोकतैं विलय होत नहिं वार।' ज्ञानी के एक वचन में अनन्त गम्भीरता भरी है।

अहो! जो भाग्यशाली होगा, उसे इस तत्त्व का रस आयेगा और तत्त्व के संस्कार गहरे उतरेंगे। 19

❀

त्रैकालिक सत् चैतन्यप्रभु—तेरा ध्रुवतत्त्व, उसकी दृष्टि तूने कभी नहीं की। वर्तमान रागादि की अथवा अल्प जानपना आदि की जो स्थिति है, दशा है, उस क्षणिक दशा पर तेरी दृष्टि है। पर को अपना माने, वह तो बड़ी भ्रमणा

है ही; परन्तु जानने-देखने की वर्तमान दशा जो तेरी की हुई है, तेरी है, तुझमें है, तेरे द्रव्य का वर्तमान अंश—पर्याय है, उस पर दृष्टि—पर्यायदृष्टि—वह भी मिथ्यात्व है। वह पर्यायदृष्टि अनादि की है। पर्याय के ओर की दृष्टि छोड़कर तेरी दृष्टि त्रैकालिक द्रव्यस्वभाव पर कभी नहीं आयी। मिथ्यात्व एवं रागादि के दुःख के छूटने का—विकल्प तोड़ने का—अन्य कोई उपाय नहीं है; अन्तर त्रैकालिक ध्रुव द्रव्यस्वभाव की—शुद्ध ज्ञायक परमभाव की—दृष्टि करना, वही एक उपाय है।20

❀

अन्तर में स्वसंवेदनज्ञान खिला, वहाँ स्वयं को उसका वेदन हुआ, फिर कोई दूसरा उसे जाने या न जाने—उसकी ज्ञानी को अपेक्षा नहीं है। जिस प्रकार सुगन्धित पुष्प खिलता है, तो उसकी सुगन्ध कोई ले या न ले, उसकी अपेक्षा उस पुष्प को नहीं है, वह तो स्वयं अपने में ही सुगन्ध से खिला है, उसी प्रकार धर्मात्मा को अपना आनन्दमय स्वसंवेदन हुआ है, वह किसी दूसरे को दिखलाने के लिये नहीं है; दूसरे जाने तो अपने को शान्ति हो—ऐसा कुछ धर्मी को नहीं है; वह तो स्वयं अन्तर में अकेला-अकेला अपने एकत्व में आनन्दरूप से परिणमित हो ही रहा है।21

❀

लेंडी पीपर का दाना आकार में छोटा और स्वाद में अल्प चरपराहटवाला होने पर भी उसमें चौंसठ पहरी चरपराहट की—पूर्ण चरपराहट की शक्ति सदा परिपूर्ण है। इस दृष्टान्त से आत्मा भी आकार में शरीरप्रमाण एवं भाव में अल्प होने पर भी उसमें परिपूर्ण सर्वज्ञस्वभाव, आनन्दस्वभाव भरा है। लेंडीपीपर को चौंसठ पहर तक घोंटने से उसकी पर्याय में जिस प्रकार पूर्ण चरपराहट प्रगट होती है, उसी प्रकार रुचि को

अन्तरोन्मुख करके स्वरूप का मन्थन करते-करते आत्मा की पर्याय में पूर्ण स्वरूप प्रगट हो जाता है। 22

❀

सम्यग्दृष्टि के जो अव्रतादि भाव हैं, वे कहीं कर्म की जबरदस्ती से नहीं हुए हैं, किन्तु आत्मा ने स्वयं अपने आप उन्हें किया है। विकार करने में तथा विकार को हटाने में आत्मा की ही प्रभुता है, दोनों में आत्मा स्वयं स्वतन्त्ररूप से कर्त्ता है।

देखो, 'रागादिरूप परिणमित होने में भी आत्मा स्वयं स्वतन्त्र प्रभु है' ऐसा कहा, उसका अर्थ ऐसा नहीं है कि राग क्रमबद्धपर्याय में भले होता रहे। अरे भाई! क्या अकेले विकार में ही परिणमित होने की आत्मा की प्रभुता कही है या विकार तथा अविकार दोनों में परिणमित होने की? विकार तथा अविकार दोनों में स्वतन्त्ररूप से परिणमित होने की मेरे आत्मा की प्रभुता है—ऐसा जो निर्णय करे, वह 'प्रभु' होकर निर्मलरूप से परिणमित होता है, विकाररूप जो अल्पपरिणमन होता है, उसकी उसे रुचि नहीं होती। एकान्त आस्रव-बन्धरूप मलिनभाव से परिणमित हो, उसने वास्तव में आत्मा की प्रभुता को जाना ही नहीं। 23

❀

क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करते हुए दृष्टि द्रव्य पर जाती है, तब क्रमबद्धपर्याय का सच्चा निर्णय होता है। पर्याय के क्रम के सामने देखने से क्रमबद्ध का सच्चा निर्णय नहीं हो सकता, ज्ञायक की ओर ढलता है, तब ज्ञायक का सच्चा निर्णय होता है, उस निर्णय में अनन्त पुरुषार्थ आता है। ज्ञान के साथ आनन्द का स्वाद आये, तब उसे सम्यग्दर्शन हुआ है। सर्वज्ञ ने देखा

है, वैसा होगा, पर्याय तो क्रमबद्ध होती है, उसके निर्णय का तात्पर्य ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि करना है। आत्मा कर्ता नहीं, किन्तु ज्ञाता ही है। 24

❀

ऐसा उत्तम योग फिर कब मिलेगा? निगोद से निकलकर त्रसपना प्राप्त करना, वह चिन्तामणि-तुल्य दुर्लभ है, तो फिर मनुष्यपना प्राप्त करना, जैनधर्म का मिलना तो महा दुर्लभ है। धन-सम्पत्ति एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होना, वह दुर्लभ नहीं है। ऐसा जो उत्तम योग मिला है, वह अधिक काल तक नहीं रहेगा, इसलिए बिजली की चमक में डोरा पिरो लेने जैसा है। ऐसा सुयोग फिर कब मिलेगा। इसलिए तू दुनिया के मान-सन्मान एवं धन-सम्पत्ति की महिमा छोड़कर, दुनिया क्या कहेगी, उनका लक्ष्य छोड़कर, एक बार मिथ्यात्व को छोड़ने का जी-तोड़ प्रयत्न कर। 25

❀

ज्ञानी धर्मात्मा को भगवान की पूजा-भक्ति आदि के भाव आते हैं, परन्तु उसकी दृष्टि रागरहित ज्ञायक आत्मा पर पड़ी है। उसे आत्मा का भान है; उस भान में उसे सतत् धर्म वर्त रहा है। सत्य समझे उसे वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्ति का प्रशस्त राग आये बिना नहीं रहेगा। मुनिराज को भी ऐसे भक्ति के भाव आते हैं, जिनेन्द्र प्रभु के नामस्मरण से भी चित्त भक्तिभाव से उछल जाता है। अन्तर में वीतरागी आत्मा का लक्ष्य हो और बाह्य में तीव्र राग दूर न हो, यह कैसे हो सकता है? भगवान की भक्ति के भाव का निषेध करके जो खान-पानादि के अशुभराग में लगा रहता है, वह तो मरकर दुर्गति में जायेगा। मेरा स्वरूप ज्ञान है, राग मेरा स्वरूप नहीं है—इस प्रकार जो सत्य को जानता है, उसको लक्ष्मी आदि परपदार्थों का ममत्व सहज ही कम हो जाता है, और भगवान की भक्ति, प्रभावनादि के भाव उछलते हैं। तथापि वहाँ वह

जानता है कि यह राग है, यह कोई धर्म नहीं है। अन्तर में शुद्ध चिदानन्दस्वरूप को जानकर उसे प्रगट किये बिना जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा।26

❀

आत्मा केवल ज्ञायक है; उस स्वभाव का नहीं रुचना, नहीं सुहाना उसका नाम क्रोध है। 'अखण्ड चैतन्यस्वभाव वह मैं नहीं हूँ' इस प्रकार स्वभाव की अरुचि-स्वभाव का नहीं सुहाना—वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है। वस्तु अखण्ड है, सब भंग-भेद अजीव के सम्बन्ध से दिखायी देते हैं। दृष्टि में उस अखण्ड स्वभाव का पोषण न होना, वह क्रोध है; परमार्थ के प्रति अहंबुद्धि वह अनन्तानुबन्धी मान है; वस्तु का स्वभाव जैसा है, वैसा न मानकर, वक्रता करके दूसरी तरह मानना, उसका नाम अनन्तानुबन्धी माया है; स्वभाव की भावना से च्युत होकर विकार की इच्छा करना, वह अनन्तानुबन्धी लोभ है।27

❀

मैं आत्मा शुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, नित्य हूँ, अनित्य हूँ, एक हूँ, अनेक हूँ—इत्यादि प्रकारों द्वारा जिसने प्रथम श्रुतज्ञान द्वारा ज्ञानस्वभावी निज आत्मा का निर्णय किया है, ऐसे जीव को, तत्त्वविचार के राग की जो वृत्ति उठती है, वह भी दुःखदायक है, आकुलतारूप है। ऐसे अनेक प्रकार के श्रुतज्ञान के भाव को मर्यादा में लाता हुआ, मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ—ऐसे विचारों को पुरुषार्थ द्वारा रोकता हुआ, पर की ओर झुकनेवाले उपयोग को स्व की ओर खींचता हुआ, नयपक्ष के आलम्बन से होनेवाला जो राग का विकल्प उसे आत्मा के स्वभावरस के भान द्वारा टालता हुआ, श्रुतज्ञान को भी जो आत्मसन्मुख करता है वह, उस काल अत्यन्त विकल्परहित होकर तत्काल निजरस से प्रगट होनेवाले, आदि-मध्य-अन्त रहित आत्मा के

परमानन्दस्वरूप अमृतरस का वेदन करता है।28

❀

जिसे आत्मा की यथार्थ रुचि जागृत हो, उसे चौबीसों घण्टे उसी का चिन्तन, मन्थन और खटका रहा करता है, नींद में भी वही रटन चलता रहता है। अरे! नरक में पड़ा हुआ नारकी भीषण वेदना में पड़ा हो, उस समय भी, पूर्व काल में सत्श्रवण किया हो उसका स्मरण करके, फट से अन्तर में उतर जाता है; उसे प्रतिकूलता बाधक नहीं होती! स्वर्ग का जीव स्वर्ग की अनुकूलता में रहा हो, तथापि उसका लक्ष्य छोड़कर अन्तर में उतर जाता है। यहाँ किंचित् प्रतिकूलता हो तो 'अरेरे! मुझे ऐसा है और वैसा है'—ऐसा कर-करके अनन्त काल गँवा दिया। अब उसका लक्ष्य छोड़कर अन्तर में उतर जा! भाई! इसके सिवा अन्य कोई सुख का मार्ग नहीं है।29

❀

तत्त्व समझने में, उसके विचार में जो शुभभाव सहज ही आता है, वैसे उच्च शुभभाव क्रियाकाण्ड में नहीं हैं। अरे! एक घण्टे तक ध्यान रखकर तत्त्व का श्रवण करे तो भी शुभभाव के ढ़ेर लग जाये और शुभभाव की सामायिक हो जाये; तो फिर यदि चैतन्य की जागृति लाकर निर्णय करे तो उसकी तो बात ही क्या? तत्त्वज्ञान का विरोध न करे और ज्ञानी क्या कहना चाहते हैं, उसे सुने तो उसमें शुभराग का जो पुण्य बँधता है, उसकी अपेक्षा परमार्थ के लक्ष्य सहित सुननेवाले को उत्कृष्ट पुण्य के शुभभाव हो जाते हैं; परन्तु उस पुण्य का मूल्य क्या? पुण्य से मात्र श्रवण करना मिलता है परन्तु उसमें अपने को एकाकार करके सत्य का निर्णय न करे तो सब व्यर्थ है।30

❀

बाहर की विपदा वह वास्तव में विपदा नहीं है और बाहर की सम्पदा वह सम्पदा नहीं है। चैतन्य का विस्मरण ही महान विपदा है और चैतन्य का स्मरण ही वास्तव में सच्ची सम्पदा है।31

❀

आत्मा का स्वभाव त्रैकालिक परमपारिणामिकभावरूप है; उस स्वभाव को पकड़ने से ही मुक्ति होती है। वह स्वभाव कैसे पकड़ में आता है? रागादि औदयिकभावों द्वारा वह स्वभाव पकड़ में नहीं आता; औदयिकभाव तो बहिर्मुख हैं और पारिणामिकस्वभाव तो अन्तर्मुख है। बहिर्मुखभाव द्वारा अन्तर्मुखभाव पकड़ में नहीं आता। तथा जो अन्तर्मुखी औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिकभाव हैं, उनके द्वारा वह पारिणामिकभाव यद्यपि पकड़ में आता है, तथापि उन औपशमिकादि भावों के लक्ष्य से वह पकड़ में नहीं आता। अन्तर्मुख होकर उस परम स्वभाव को पकड़ने से औपशमिकादि निर्मल भाव प्रगट होते हैं। वे भाव स्वयं कार्यरूप हैं और परमपारिणामिक -स्वभाव कारणरूप परमात्मा है।32

❀

मोही मनुष्य जहाँ ऐसे मनोरथ का सेवन करता है कि 'मैं कुटुम्ब तथा समाज का अगुआ बनूँ, धन, मकान तथा बाल-बच्चों में खूब बढ़ूँ और भरा-पूरा परिवार छोड़कर मरूँ', वहाँ गृहस्थाश्रम में रहनेवाले धर्मात्मा आत्मा की प्रतीतिसहित पूर्णता के लक्ष्य में इन तीन प्रकार के मनोरथों का सेवन करते हैं:—(1) मैं सर्व सम्बन्ध से छूटूँ, (2) स्त्री आदि बाह्य परिग्रह तथा विषय-कषायरूप अभ्यन्तर परिग्रह का स्वसन्मुखता के पुरुषार्थ द्वारा त्याग करके निर्ग्रन्थ मुनि होऊँ, (3) मैं अपूर्व समाधिमरण प्राप्त करूँ।33

❀

धर्म भी ज्ञानी को होता है और उच्च पुण्य भी ज्ञानी को ही बँधता है। अज्ञानी को आत्मा के स्वभाव की खबर न होने से उसे धर्म भी नहीं है और उच्च पुण्य भी नहीं है। तीर्थंकरपद, चक्रवर्तीपद, बलदेवपद वे सब पद सम्यग्दृष्टि जीवों को ही बँधते हैं; क्योंकि ज्ञानी को ऐसा भान है कि—अपना एक निर्मल आत्मस्वभाव ही आदरणीय है, उसके सिवा राग का एक अंश या पुद्गल का एक रजकण भी आदरणीय नहीं है।—ऐसी प्रतीति होने पर अभी सम्पूर्ण वीतराग नहीं हुआ है, इसलिए राग का भाग आता है। उसमें उच्च जाति का प्रशस्त राग आने से तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि उच्च पदवियाँ बँधती हैं।34

❀

शुभभाव अपने में होता है, इसलिए उसे 'अभूतार्थ' नहीं कहा जाता—ऐसा नहीं है। शुभभाव अपनी पर्याय में होने पर भी उसके आश्रय से हित की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए उसे 'अभूतार्थ' कहा जाता है। अपनी पर्याय में उसका अस्तित्व ही नहीं है—ऐसा कहीं 'अभूतार्थ' का तात्पर्य नहीं है; किन्तु उसके आश्रय से कल्याण की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि वह स्वभावभूत नहीं—ऐसा बतलाकर उसका आश्रय छुड़ाने के लिये उसे 'अभूतार्थ' कहा है। त्रिकाल एकरूप रहनेवाला द्रव्यस्वभाव भूतार्थ है, उसके आश्रय से कल्याण होता है। उस भूतार्थस्वभाव की दृष्टि से भेदरूप या रागरूप समस्त व्यवहार अभूतार्थ है। अभूतार्थ कहो या परिहरनेयोग्य कहो। उसका परिहार करके सहजस्वभाव को अंगीकार करने से घोर संसार का मूल—मिथ्यात्व—छिद जाता है, और जीव शाश्वत परम सुख का मार्ग प्राप्त करता है।35

❀

जिस प्रकार घोर निद्रा में सोते हुए को आसपास की दुनिया का भान नहीं

रहता, उसी प्रकार चैतन्य की अत्यन्त शान्ति में स्थिर हुए मुनिवरों को जगत के बाह्य विषयों में किंचित् भी आसक्ति नहीं होती; भीतर स्वरूप की लीनता में से बाहर निकलना जरा भी अच्छा नहीं लगता; आसपास जंगल के बाघ और सिंह दहाड़ रहे हों, तथापि उनसे जरा भी नहीं डरते और स्वरूप की स्थिरता से किंचित् भी चलायमान नहीं होते। अहा! धन्य वह अद्भुत दशा! 36

❀

चन्द्र तो स्वयं सोलह कलाओं से पूर्ण है, उसे नित्य-राहु ढँककर रहता है; राहु ज्यों-ज्यों हटता जाये त्यों-त्यों चन्द्र की एक-एक कला विकसित होती रहती है। चन्द्र में दूज, तीज, चौथ आदि कला के भेद अपने से नहीं किन्तु राहु के निमित्त की अपेक्षा से हैं। इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा चन्द्र के समान अखण्ड परिपूर्ण है, उसमें पाँचवें, छठ्ठे, सातवें गुणस्थान के भेद की जो कलाएँ हैं, वे अखण्ड आत्मा की अपेक्षा से नहीं हैं, किन्तु निमित्त ऐसा जो कर्मरूप राहु, उसकी अपेक्षा से है। पुरुषार्थ द्वारा वह हटता जाता है, इसलिए संयम की कला के भेद पड़ते हैं परन्तु अभेद आत्मा की अपेक्षा से वे भेद नहीं पड़ते। उन कला के भेदों पर दृष्टि न रखकर सम्पूर्ण द्रव्य पर दृष्टि रखना, वही कलाओं के विकास का कारण है। 37

❀

कोई जीव नग्न दिगम्बर मुनि हो गया हो, वस्त्र का एक ताना-बाना भी न हो, परन्तु परवस्तु मुझे लाभदायी है, ऐसा अभिप्राय है, तब तक उसके अभिप्राय में से तीन काल की एक भी वस्तु छूटी नहीं है। पर के साथ एकत्वबुद्धि खड़ी है, परवस्तु मुझे लाभ करती है, ऐसा अभिप्राय बना हुआ है, तब तक तीन काल-तीन लोक के अनन्त पदार्थ उसके भाव में से नहीं छूटे हैं। 38

❀

हे मोक्ष के अभिलाषी! मोक्ष का मार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप है। वह सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावरूप मोक्षमार्ग अन्तर्मुख प्रयत्न द्वारा सधता है, ऐसा भगवान का उपदेश है। भगवान ने स्वयं प्रयत्न द्वारा मोक्षमार्ग साधा है और उपदेश में भी यही कहा है कि 'मोक्ष का मार्ग प्रयत्नसाध्य है।' इसलिए तू सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों को ही मोक्ष का पंथ जानकर सर्व उद्यम द्वारा उसे अंगीकार कर। हे भाई! सम्यग्दर्शनादि शुद्धभावों से रहित ऐसे द्रव्यलिंग से तुझे क्या साध्य है? मोक्ष तो सम्यग्दर्शन आदि शुद्धभावों से ही साध्य है, इसलिए उसका प्रयत्न कर।39

❀

परालम्बी दृष्टि, वह बन्धभाव है और स्वाश्रयदृष्टि ही मुक्ति का भाव है। स्वसन्मुख दृष्टि रहने में ही मुक्ति है और बहिर्मुख दृष्टि होने से जो व्रत-दान-भक्ति के भाव आयें, वे सब पराश्रित होने से बन्धभाव हैं। वे सब शुभपरिणाम आये, वह अलग बात है, किन्तु उन्हें रखनेयोग्य या लाभरूप मानना, वह पराश्रयदृष्टि—मिथ्यादृष्टि है।40

❀

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयप्राभृत में कहते हैं कि—मैं तो यह भाव कहना चाहता हूँ, उसे अन्तर के आत्मसाक्षी के प्रमाण द्वारा प्रमाण करना; क्योंकि वह अनुभवप्रधान शास्त्र है, उसमें मेरे वर्तते हुए स्वात्मवैभव द्वारा कहा जाता है। ऐसा कहकर छठवीं गाथा प्रारम्भ करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि, 'आत्मद्रव्य अप्रमत्त नहीं है और प्रमत्त नहीं है अर्थात् इन दो अवस्थाओं का निषेध करता हुआ मैं एक अखण्ड ज्ञाता हूँ—यह अपनी वर्तमान वर्तती दशा से कहता हूँ।' मुनिपने की दशा अप्रमत्त और प्रमत्त

इन दो भूमिकाओं में हजारों बार आ-जा करती है; उस भूमिका में वर्तते महामुनि का यह कथन है।

समयप्राभृत अर्थात् समयसाररूपी भेंट। जैसे राजा को मिलने के लिये भेंट देनी पड़ती है उसी प्रकार अपनी परम उत्कृष्ट आत्मदशास्वरूप परमात्मदशा प्रगट करने के लिये समयसार जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप आत्मा उसकी परिणतिरूप भेंट देने से परमात्मदशा—सिद्धदशा —प्रगट होती है।

इस शब्दब्रह्मरूप परमागम से दर्शाये हुए एकत्वविभक्त आत्मा को प्रमाण करना, स्वीकार ही करना, कल्पना नहीं करना। इसका बहुमान करनेवाला भी महाभाग्यशाली है।41

❀

ज्ञान एवं आनन्दादि अनन्त पूर्ण शक्ति के भण्डार ऐसे सत्स्वरूप भगवान निज ज्ञायक आत्मा के आश्रय में जाने पर निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है, तब उसके अनन्त गुणों का अंश—आंशिक शुद्ध परिणमन—प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है। उसे श्रीमद् राजचन्द्र 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' और पण्डित टोडरमलजी रहस्यपूर्ण चिट्ठी में 'चतुर्थ गुणस्थान में आत्मा के ज्ञानादिक गुण एकदेश प्रगट हुए—ऐसा कहते हैं। वह बात बहिन के बोल में (बहिनश्री चम्पाबहिन के वचनामृत में) इस प्रकार आयी है;

"निर्विकल्प स्वानुभूति की दशा में आनन्दगुण की आश्चर्यकारी पर्याय प्रगट होने से आत्मा के सर्व गुणों का (यथासम्भव) आंशिक शुद्ध परिणमन प्रगट होता है और सर्व गुणों की पर्यायों का वेदन होता है।"

भीतर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी जिसे दृष्टि हुई है, उसे 'वस्तु अन्तर में परिपूर्ण है' ऐसा अनुभव—वेदन होने से, अनन्त गुणों का अंशतः यथासम्भव व्यक्तपना होने से, वह सम्यक्त्वी है।42

❀

विकार जीव की ही पर्याय में होता है, उस अपेक्षा से तो उसे जीव का जानना; परन्तु जीव का स्वभाव विकारमय नहीं है, जीव का स्वभाव तो विकार रहित है। इस प्रकार स्वभावदृष्टि से विकार जीव का नहीं है, परन्तु पुद्गल के लक्ष्य से होता है, इसलिए वह पुद्गल का है, ऐसा जानना। इस प्रकार दोनों पक्ष जानकर शुद्धस्वभाव में ढलने से पर्याय में से भी विकार हट जाता है, और इस प्रकार जीव विकार का साक्षात् अकर्ता हो जाता है। इसलिए परमार्थतः जीव विकार का कर्ता नहीं है।43

❀

ज्ञान-दर्शनस्वभावमात्र अभेद निज तत्त्व की दृष्टि करने पर उसमें नवतत्त्वरूप परिणमन तो है नहीं। चेतनास्वभावमात्र ज्ञायकवस्तु में गुणभेद भी नहीं हैं। इसलिए गुणभेद या पर्यायभेद को अभूतार्थ—असत्य कह दिया है। पर्याय, पर्याय के रूप में सत्य है, परन्तु लक्ष्य—आश्रय करने के लिये असत्य है। दया-दानादि के भाव तो राग है, वह लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है, परन्तु संवर-निर्जरारूप वीतराग निर्मल पर्याय भी लक्ष्य—आश्रय करनेयोग्य नहीं है; आश्रय करनेयोग्य—आलम्बन लेनेयोग्य तो एकमात्र त्रिकालशुद्ध ज्ञायकभाव है।44

❀

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे वीतरागी सन्त के स्वानुभव के आनन्दमय प्रसादरूप यह 'समयसार' शास्त्र है; इसकी महिमा अद्भुत, अचिन्त्य और

अलौकिक है। अहो! यह समयसार तो अशरीरीभाव बतलानेवाला शास्त्र है; इसके भाव समझने से अशरीरी सिद्धपद की प्राप्ति होती है। कुन्दकुनद प्रभु की तो क्या बात! परन्तु अमृतचन्द्र-आचार्यदेव ने भी टीका में आत्मा की अनुभूति के अगाध गम्भीर भाव खोलकर जगत पर महान उपकार किया है। मोक्ष का मूलमार्ग इन सन्तों ने जगत-समक्ष प्रसिद्ध किया है।... चैतन्य के कपाट खोल दिये हैं।45

❀

वस्तुस्थिति की अचलित मर्यादा को तोड़ना अशक्य होने के कारण वस्तु द्रव्यान्तर या गुणान्तररूप से संक्रमण को प्राप्त नहीं होती; गुणान्तर में पर्याय भी आ गई। वस्तु अपने आप स्वतन्त्र पलटे, अपनी शक्ति से पलटे, तब स्वतन्त्ररूप से उसकी पर्याय खिलती है। कोई जबरन पलट नहीं सकता या कोई जबरन समझाकर उसकी पर्याय को खिला नहीं सकता। यदि किसी को जबरन समझाया जा सकता हो तो त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सबको मोक्ष में न ले जायें! परन्तु तीर्थंकरदेव किसी को मोक्ष में नहीं ले जाते। स्वयं समझे, तब अपनी मोक्षपर्याय खिलती है।46

❀

जगत में जो कुछ सुन्दरता हो, जो कुछ पवित्रता हो, वह सब आत्मा में भरी है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसार में कहा है:—

एकत्व-निश्चयगत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में।
उससे बने बन्धनकथा, जु विरोधिनी एकत्व में॥

—ऐसे सुन्दर आत्मा को अनुभव में लेने से उसके सर्व गुणों की सुन्दरता और पवित्रता एकसाथ प्रगट होती है। प्रत्येक समय की पर्याय में अनन्त गुणों का स्वाद एकसाथ है; वह अनुभव में एकसाथ समाता है; परन्तु

विकल्प करके एक-एक गुण के हिसाब से आत्मा के अनन्त गुणों को पकड़ना चाहे तो अनन्त काल में भी पकड़ में नहीं आयेंगे। एक आत्मा में उपयोग लगाने से उसमें उसके अनन्त गुणों की पर्यायें निर्मलरूप से अवश्य अनुभव में आती हैं। हे भाई! ऐसे अनुभव की अभिलाषा और उत्साह कर। बाहर की तथा विकल्प की अभिलाषा छोड़ दे, क्योंकि उससे चैतन्य के गुण पकड़ में नहीं आते। उपयोग को—रुचि को बाहर से समेटकर निश्चलरूप से अन्तर में लगा, जिससे तुझे तत्क्षण विकल्प टूटकर अतीन्द्रिय आनन्दसहित अनन्त गुणस्वरूप निज आत्मा का अनुभव होगा।47

❀

समयसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मात्र अध्यात्मरस भरा है। उन्हीं की परम्परा से इन योगसार तथा परमात्मप्रकाश आदि अध्यात्मशास्त्रों की रचना हुई है। समयसार की टीका द्वारा अध्यात्म के रहस्य खोलकर अमृत के स्रोत प्रवाहित करनेवाले श्री अमृतचन्द्रसूरि पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहते हैं कि आत्मा का निश्चय, सो सम्यग्दर्शन; आत्मा का ज्ञान, सो सम्यग्ज्ञान और आत्मा में निश्चलस्थिति, सो सम्यक्चारित्र;—ऐसे रत्नत्रय वह मोक्षमार्ग है और वह आत्मा का स्वभाव ही है, उससे बन्धन नहीं होता। बन्धन तो राग से होता है; रत्नत्रय तो राग रहित है, उनसे कर्मबन्ध नहीं होता, वे तो मोक्ष के ही कारण हैं। इसलिए मुमुक्षुजन अन्तर्मुख होकर ऐसे मोक्षमार्ग का सेवन करो और परमानन्दरूप परिणमो। आज ही आत्मा अनन्त गुणधाम ऐसे स्वयं का अनुभव करो।48

❀

प्रवचनसार और समयसार में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव तथा श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव का अन्तर्नाद है कि हम जैसा कहते हैं, वैसा ही वस्तु का

स्वरूप है और वह सर्वज्ञ के घर की बात हम स्वानुभव से कहते हैं। इस स्वरूप को समझने से, श्रद्धा करने से एक-दो भव में अवश्य मोक्ष होता है—इस प्रकार अप्रतिहतभाव की बात की है; पीछे गिर जाने की बात नहीं है। जो स्वरूप असीम है, अनन्त है, स्वाधीन है, उसका भीतर से यथार्थ निर्णय होने के बाद फिर क्यों पीछे गिरेगा? जिस भाव से पूर्ण की श्रद्धा की है, वही भाव (स्वानुभव) सम्पूर्ण निर्मल आत्मपद प्रदान करता है।49

❀

अपने पीछे कोई विकराल शेर झपट्टे मारता हुआ दौड़ता आ रहा हो तो वहाँ कैसी दौड़ लगाता है? क्या वहाँ थकान उतारने के लिये खड़ा रहेगा? उसी प्रकार अरे! यह काल झपट्टे मारता हुआ चला आ रहा है और भीतर काम बहुत से करना हैं, ऐसा अपने को अन्तर में लगना चाहिए।50

❀

ज्ञायकस्वभाव लक्ष्य में आये, तब क्रमबद्धपर्याय यथार्थरूप से समझ में आ सकती है। जो जीव पात्र होकर अपने आत्महित के लिये समझना चाहता है, उसे यह बात यथार्थ समझ में आ जाती है। जिसे ज्ञायक की श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञ की श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं है, अन्तर में वैराग्य नहीं है और कषाय की मन्दता भी नहीं है, ऐसा जीव तो ज्ञायकस्वभाव के निर्णय का पुरुषार्थ छोड़कर क्रमबद्ध के नाम से स्वच्छन्दता का पोषण करता है। जो जीव क्रमबद्धपर्याय को यथार्थरूप से समझता है, उसे स्वच्छन्दता हो ही नहीं सकती। क्रमबद्ध को यथार्थ समझे, वह जीव तो ज्ञायक हो जाता है, उसको कर्तृत्व के उछाले शान्त हो जाते हैं और वह परद्रव्य का तथा राग का अकर्ता होकर ज्ञायक में एकाग्र होता जाता है।51

❀

मृत्यु का समय आयेगा, वह कहीं पूछकर नहीं आयेगा कि लो अब तुम्हारा मरने का समय आ गया है। अरे! यह संसार तो स्वप्न जैसा है; किसका कुटुम्ब और किसके धन-दौलत! यह शरीर भी एकदम क्षण भर में छूट जायेगा। कुटुम्ब, कीर्ति और मकान सब यहीं पड़े रहेंगे। ज्ञायक भगवान को अन्तर से पृथक् किया होगा तो मरणकाल में वह पृथक् रहेगा। यदि शरीर से भिन्नता नहीं की होगी तो मरण के समय वह उसकी चपेट में दब जायेगा। इसलिए अवसर है तो शरीर से भिन्नता कर लेना योग्य है। 52

❀

भाई! एक बार हर्ष तो ला कि अहो! मेरा आत्मा ऐसा परमात्मस्वरूप, ज्ञानानन्द की शक्ति से भरपूर है; मेरे आत्मा की शक्ति का घात नहीं हो गया है। 'अरेरे! मैं हीन हो गया, विकारी हो गया, अब मेरा क्या होगा?' ऐसे डर मत, उलझन में न पड़, हताश न हो। एक बार स्वभाव का उत्साह ला। स्वभाव की महिमा लाकर अपनी शक्ति को उछाल। 53

❀

प्रश्नः—द्रव्य में पर्याय नहीं है तो फिर पर्याय को क्यों गौण कराया जाता है?

उत्तरः—द्रव्य में अर्थात् उसके ध्रौव्यांश में पर्याय नहीं है, परन्तु उसका जो वर्तमान प्रगट परिणमित अंश उस अपेक्षा से तो उसमें पर्याय है। पर्याय सर्वथा है ही नहीं—ऐसा नहीं है। पर्याय है, परन्तु उसकी उपेक्षा करके, गौण करके 'नहीं है' ऐसा कहकर, उसका लक्ष्य छुड़ाकर, द्रव्य का—ध्रुव स्वभाव का—लक्ष्य तथा दृष्टि कराने का प्रयोजन है। इसलिए द्रव्य को—ध्रुव स्वभाव को मुख्य करके, भूतार्थ कहकर, उसकी दृष्टि कराई है; और पर्याय

की उपेक्षा करके, गौण करके, 'पर्याय नहीं है, असत्यार्थ है' ऐसा कहकर, उसका लक्ष्य छुड़ाया है। यदि पर्याय सर्वथा ही न हो तो गौण करना भी कहाँ रहता है? द्रव्य (ध्रौव्य) और पर्याय दो मिलकर सम्पूर्ण द्रव्य (वस्तु) वह प्रमाणज्ञान का विषय है।54

❀

शरीर के एक-एक तसू में 96-96 रोग हैं; वह शरीर क्षण में दगा दे जायेगा, क्षण में छूट जायेगा। कुछ सुविधा हो, वहाँ घुस जाता है, किन्तु भाई! तुझे एक बार कहीं जाना है, वहाँ किसका मेहमान होगा? कौन तेरा परिचित होगा? उसका विचार करके अपना तो कुछ कर ले! शरीर स्वस्थ हो, तब तक आँख नहीं खुलती, और क्षण में देह छूटने पर अनजान स्थल में चला जायेगा! छोटी-छोटी सी उम्र के लोग भी चले जाते हैं, इसलिए अपना कुछ कर ले! शास्त्र में कहा है कि जब तक वृद्धावस्था न आये, शरीर में व्याधि का जब तक प्रवेश न हो और इन्द्रियाँ जब तक शिथिल न हो जायें, तब तक आत्महित कर लेना।55

❀

'आत्मा ही आनन्द का धाम है, उसमें अन्तर्मुख होने से ही सुख है'—ऐसी वाणी की झंकार जहाँ कानों में पड़े, वहाँ आत्मार्थी जीव का आत्मा भीतर से झनझना उठता है कि वाह! यह भवरहित वीतरागी पुरुष की वाणी! आत्मा के परम शान्तरस को बतलानेवाली यह वाणी वास्तव में अद्भुत है, अश्रुतपूर्व है। वीतरागी सन्तों की वाणी परम अमृत है, भवरोग की नाशक अमोघ औषधि है।56

❀

शिष्य गुरु से कहता है कि अहो प्रभु! आपने मुझ पर परम उपकार

किया है, मुझ पामर को आपने निहाल कर दिया है, आपने मुझे तार दिया है आदि। अपने गुण की पर्याय विकसित करने के लिये व्यवहार में गुरु के प्रति विनय एवं नम्रता करता है, गुरु के गुणों का बहुमान करता है; और निश्चय से अपने पूर्ण स्वभाव के प्रति विनय, नम्रता तथा बहुमान करता है। निश्चय में अपने को पूर्ण स्वभाव का बहुमान है, इसलिए व्यवहार में देव-शास्त्र-गुरु का बहुमान आये बिना नहीं रहता। देव-गुरु गुणों में विशेष हैं, इसलिए भीतर समझकर निमित्त पर आरोप देकर बोलता है कि 'आपने मुझे पार उतार दिया' वह अलग बात है, परन्तु यदि वैसा मान बैठे तो वह मिथ्या है।57

❀

शुद्ध चैतन्य ज्ञायकप्रभु की दृष्टि, ज्ञान तथा अनुभव, वह साधकदशा है। उससे पूर्ण साध्यदशा प्रगट होगी। साधकदशा है तो निर्मल ज्ञानधारा, परन्तु वह भी आत्मा का मूल स्वभाव नहीं है; क्योंकि वह साधनामय अपूर्ण पर्याय है। प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ—सच्चिदानन्द प्रभु—आत्मा है न! पर्याय में रागादि भले हों, परन्तु वस्तु मूलस्वरूप से ऐसी नहीं है। उस निज पूर्णानन्द प्रभु की साधना—परमानन्दस्वरूप में एकाग्रतारूप साधकदशा की साधना—ऐसी कर कि जिससे तेरा साध्य—मोक्ष—पूर्ण हो जाये।58

❀

अनन्त गुणस्वरूप आत्मा, उसके एकरूप स्वरूप को दृष्टि में लेकर, उसे (आत्मा को) एक को ध्येय बनाकर, उसमें एकाग्रता का प्रयत्न करना ही सर्वप्रथम शान्ति-सुख का उपाय है।59

❀

भक्ति अर्थात् भजना। किसे भजना? अपने स्वरूप को भजना। मेरा स्वरूप निर्मल एवं निर्विकारी—सिद्ध जैसा—है, उसकी यथार्थ प्रतीति करके

उसे भजना, वही निश्चय भक्ति है, और वही परमार्थ स्तुति है। निचली भूमिका में देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति का भाव आये, वह व्यवहार है, शुभराग है। कोई कहेगा कि यह बात कठिन लगती है। किन्तु भाई! अनन्त धर्मात्मा क्षण में भिन्न तत्त्वों की प्रतीति करके, स्वरूप में स्थिर होकर—स्वरूप की निश्चय भक्ति करके—मोक्ष गये हैं, वर्तमान में कतिपय जा रहे हैं और भविष्य में अनन्त जीव उसी प्रकार जायेंगे।60

❀

सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व वस्तु है। शरीर की खाल उतारकर नमक छिड़कनेवाले पर भी क्रोध नहीं किया—ऐसे व्यवहारचारित्र इस जीव ने अनन्त बार पाले हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवों की हिंसा के पाप की अपेक्षा मिथ्यादर्शन का पाप अनन्तगुना है। सम्यक्त्व सरल नहीं है, लाखों-करोड़ों में किसी विरल जीव को ही वह होता है। सम्यक्त्वी जीव अपना निर्णय आप ही कर सकता है। सम्यक्त्वी समस्त ब्रह्माण्ड के भावों को पी गया होता है। ...सम्यक्त्व वह कोई अलग ही वस्तु है। सम्यक्तव रहित क्रियाएँ इकाई बिना शून्य के समान हैं। सम्यक्त्व का स्वरूप अत्यन्त ही सूक्ष्म है। ...हीरे का मूल्य हजारों रुपया होता है, उसके पहल पड़ने से खिरी हुई रज का मूल्य सैकड़ों रुपया होता है; उसी प्रकार सम्यक्त्व-हीरे का मूल्य तो अमूल्य है, वह यदि मिल गया, तब तो कल्याण हो जायेगा, परन्तु वह नहीं मिला, तब भी 'सम्यक्त्व कोई अलग ही वस्तु है'—इस प्रकार उसका माहात्म्य समझकर उसे प्राप्त करने की उत्कण्ठारूप रज भी महान लाभ देती है।

जानपना, वह ज्ञान नहीं है। सम्यक्त्वसहित जानपना ही ज्ञान है।

ग्यारह अंग कण्ठाग्र हों परन्तु सम्यक्त्व न हो तो वह अज्ञान है। आजकल तो सब अपने-अपने थर का सम्यक्त्व मान बैठे हैं। सम्यक्त्वी को तो मोक्ष के अनन्त अतीन्द्रिय सुख का नमूना प्राप्त हो गया है। वह नमूना मोक्षसुख के अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त है।61

❀

साधक जीव की दृष्टि

अध्यात्म में सदा निश्चयनय ही मुख्य है; उसी के आश्रय से धर्म होता है। शास्त्रों में जहाँ विकारी पर्यायों का व्यवहारनय से कथन किया जाये, वहाँ भी निश्चयनय को ही मुख्य और व्यवहारनय को गौण करने का आशय है—ऐसा समझना; क्योंकि पुरुषार्थ द्वारा अपने में शुद्धपर्याय प्रगट करने अर्थात् विकारी पर्याय टालने के लिये सदा निश्चयनय ही आदरणीय है; उस समय दोनों नयों का ज्ञान होता है परन्तु धर्म प्रगट करने के लिये दोनों नय कभी आदरणीय नहीं हैं। व्यवहारनय के आश्रय से कभी धर्म अंशतः भी नहीं होता, परन्तु उसके आश्रय से तो राग-द्वेष के विकल्प ही उठते हैं।

छहों द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायों के स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये कभी निश्चयनय की मुख्यता और व्यवहारनय की गौणता रखकर कथन किया जाता है और कभी व्यवहारनय को मुख्य करके तथा निश्चयनय को गौण रखकर कथन किया जाता है; स्वयं विचार करे, उसमें भी कभी निश्चयनय की मुख्यता और कभी व्यवहारनय की मुख्यता की जाती है; अध्यात्मशास्त्र में भी जीव की विकारी पर्याय जीव स्वयं करता है, इसलिए होती है और वह जीव का अनन्य परिणाम है—ऐसा व्यवहारनय से कहने में-समझाने में आता है; परन्तु उस हर समय निश्चयनय एक ही मुख्य तथा आदरणीय है, ऐसा ज्ञानियों का कथन है। शुद्धता प्रगट करने के लिये कभी

निश्चयनय आदरणीय है और कभी व्यवहारनय आदरणीय है—ऐसा मानना वह भूल है। तीनों काल अकेले निश्चयनय के आश्रय से ही धर्म प्रगट होता है, ऐसा समझना।

साधक जीव प्रारम्भ से अन्त तक निश्चय की ही मुख्यता रखकर व्यवहार को गौण ही करते जाते हैं, इसलिए साधकदशा में निश्चय की मुख्यता के बल से साधक को शुद्धता की वृद्धि ही होती जाती है और अशुद्धता टलती ही जाती है। इस प्रकार निश्चय की मुख्यता के बल से पूर्ण केवलज्ञान होने पर वहाँ मुख्य-गौणपना नहीं होता और नय भी नहीं होते।62

❀

पहले निर्णय करो कि इस जगत में सर्वज्ञता को प्राप्त कोई आत्मा हैं या नहीं? यदि सर्वज्ञ हैं, तो उनके वह सर्वज्ञतारूपी कार्य किस खान में से निकला है? चैतन्यशक्ति की खान में सर्वज्ञतारूपी कार्य का कारण होने की शक्ति भरी पड़ी है। ऐसी चैतन्यशक्ति के सन्मुख होकर सर्वज्ञता का स्वीकार करने पर उसमें अपूर्व पुरुषार्थ आता है। 'सर्वज्ञता का स्वीकार करने से पुरुषार्थ उड़ जाता है' वह मान्यता तो एक महान भूल है। केवलज्ञान और उसके कारण की प्रतीति करने से जिसको स्वसन्मुखता का अपूर्व पुरुषार्थ प्रगट होता है, वह जीव नि:शंक हो जाता है कि अपने आत्मा के आधार से सर्वज्ञ की प्रतीति करके मैंने मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ प्रारम्भ किया है, और सर्वज्ञ के ज्ञान में भी इसी प्रकार आया है;—मैं अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करनेवाला हूँ और भगवान के ज्ञान में भी ऐसा ही आया है।63

❀

अहा! सन्त आत्मा का सुन्दर एकत्व-विभक्त स्वरूप बतलाते हैं। अपूर्व प्रीति लाकर वह श्रवण करनेयोग्य है। जगत का परिचय छोड़कर, प्रेम

से आत्मा का परिचय करके भीतर उसका अनुभव करनेयोग्य है। ऐसे अनुभव में परम शान्ति प्रगट होती है, और अनादि की अशान्ति मिट जाती है। आत्मा के ऐसे स्वभाव का श्रवण-परिचय-अनुभव दुर्लभ है, परन्तु वर्तमान में उसकी प्राप्ति का सुलभ अवसर आया है। इसलिए हे जीव! दूसरा सब भूलकर तू अपने शुद्ध स्वरूप को लक्ष्य में ले, और उसमें निवास कर। यही करनेयोग्य है।64

❀

सत्समागम से आत्मा की पहिचान करके आत्मानुभव करो। आत्मानुभव का ऐसा माहात्म्य है कि परीषह आने पर भी जीव की ज्ञानधारा विचलित नहीं होती। तीन काल और तीन लोक की प्रतिकूलता के ढ़ेर एकसाथ सामने आकर खड़े हो जायें, तथापि मात्र ज्ञातारूप रहकर वह सब सहन करने की शक्ति आत्मा के ज्ञायकस्वभाव की एक समय की पर्याय में विद्यमान है। शरीरादि एवं रागादि से भिन्नरूप जिसने आत्मा को जाना, उसे वे परीषहों के ढ़ेर किंचित् भी असर नहीं कर सकेंगे—चैतन्य अपनी ज्ञातृधारा से जरा भी विचलित नहीं होगा और स्वरूप स्थिरतापूर्वक दो घड़ी स्वरूप में लीनता होगी तो पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करेगा, जीवन्मुक्तदशा होगी और मोक्षदशा होगी।65

❀

राग के विकल्प से खण्डित होता था, वह जीव स्वरूप का निर्णय करके भीतर स्वरूप में स्थिर हुआ, वहाँ जो खण्ड होता था, वह रुक गया और अकेला आत्मा अनन्त गुणों से भरपूर आनन्दस्वरूप रह गया। मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं बद्ध हूँ, मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्प थे, वे छूट गये और जो अकेला आत्मतत्त्व रह गया, उसका नाम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा वही

समयसार है। समयसार वह पन्ने नहीं, अक्षर नहीं; वे तो जड़ हैं। आत्मा के आनन्द में लीनता ही समयसार है। आत्मस्वरूप का बराबर निर्णय करके विकल्प छूट जायें, पश्चात् अनन्त गुणसामर्थ्य से भरपूर अकेला रहा जो निज शुद्धात्मतत्त्व, वही समयसार है।66

❀

अहो धन्य यह मुनिदशा! मुनिराज कहते हैं कि हम तो चिदानन्दस्वभाव में झूलनेवाले हैं; हम इस संसार के भोग हेतु अवतरित नहीं हुए हैं। हम तो अब अपने आत्मस्वभाव की ओर झुकते हैं। अब हमारा स्वरूप-स्थित होने का समय आ गया है। अन्तर के आनन्दकन्द स्वभाव की श्रद्धासहित उसमें रमणता करने हेतु जागृत हुए उस भाव में अब भंग नहीं पड़ेगा। अनन्त तीर्थंकर जिस पथ पर विचरे, उसी पथ के इस पथिक हैं।67

❀

हे भव्य! तू भावश्रुतज्ञानरूपी अमृत का पान कर। सम्यक् श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करके निर्विकल्प आनन्दरस का पान कर, जिससे तेरी अनादि मोहतृषा का दाह मिट जाये। तूने चैतन्यरस के प्याले कभी नहीं पिये हैं, अज्ञान से तूने मोह-राग-द्वेषरूपी विष के प्याले पिये हैं। भाई! अब तो वीतराग के वचनामृत प्राप्त करके अपने आत्मा के चैतन्यरस का पान कर; जिससे तेरी आकुलता मिटकर सिद्धपद की प्राप्ति हो। आत्मा को भूलकर बाह्य भावों का अनुभव, वह तो विष का पान करने जैसा है; भले ही शुभराग हो, परन्तु उसके स्वाद में भी कहीं अमृत नहीं है, विष ही है। इसलिए उससे भी भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को श्रद्धा में लेकर उसी के स्वानुभवरूपी अमृत का पान कर। अहा! श्रीगुरु वत्सलता से चैतन्य के प्रेमरस का प्याला

पिलाते हैं। वीतराग की वाणी आत्मा का परम-शान्तरस दिखानेवाली है। ऐसे वीतरागी शान्त चैतन्यरस का अनुभव, वह भावशुद्धि है। उसी के द्वारा तीन लोक में सर्वोत्तम परम-आनन्दस्वरूप सिद्धपद की प्राप्ति होती है।68

❀

मैं ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ—इस प्रकार अन्तर में घोटते रहना, ज्ञायक की ओर झुकना, ज्ञायक के सन्मुख एकाग्रता करना। आहाहा! पर्याय को ज्ञायकोन्मुख करना बहुत कठिन है, उसमें अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। ज्ञायकतल में पर्याय पहुँची, आहाहा! उसकी क्या बात! ऐसा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु उसकी प्रतीति में, उसके विश्वास में—भरोसे में आना चाहिए कि अहो! एक समय की पर्याय के पीछे इतना महान भगवान, वह मैं ही हूँ।69

❀

संयोग का लक्ष्य छोड़ दे और निर्विकल्प एकरूप वस्तु है, उसका आश्रय ले। 'वर्तमान में त्रिकाली ज्ञायक वह मैं हूँ' ऐसा आश्रय कर। गुण-गुणी के भेद का भी लक्ष्य छोड़कर एकरूपी गुणी की दृष्टि कर। तुझे समता होगी, आनन्द होगा, दुःख का नाश होगा। एक चैतन्यवस्तु ध्रुव है, उसमें दृष्टि लगाने से तुझे मुक्ति का मार्ग प्रगट होगा। अभेद वस्तु कि जिसमें गुण-गुणी के भेद का भी अभाव है वहाँ जा, तुझे धर्म होगा, राग से तथा दुःख से छूटने का मार्ग तुझे हाथ लगेगा।70

❀

अहा! मुनिदशा कैसी होती है, उसका विचार तो करो! छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते, वे मुनि स्वरूप में गुप्त हो गये होते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनि का भावलिंग है, और शरीर की नग्नता—वस्त्र-पात्ररहित निर्ग्रन्थ दशा—वह उनका द्रव्यलिंग है। उनको अपवाद—व्रतादि का शुभराग आता

है, किन्तु वस्त्रग्रहण का अथवा अधःकर्म तथा उद्देशिक आहार लेने का भाव नहीं होता। अहा! श्री ऋषभदेव भगवान को मुनिदशा में प्रथम छह महीने के उपवास थे, फिर आहार का विकल्प उठता था, परन्तु मुनि की विधिपूर्वक आहार नहीं मिलने से विकल्प तोड़कर भीतर आनन्द में रहते थे। आनन्द में रहना ही आत्मा का कर्तव्य है।71

❀

हम दूसरों का कुछ भी कर सकते हैं, ऐसा माननेवाले चौरासी के अवतार में रुलेंगे। आत्मा तो मात्र ज्ञातादृष्टा है; उसी का कार्य में कर सकता हूँ, ऐसा नहीं माना और मैं परवस्तु का कर सकता हूँ—ऐसा जिसने माना, उसके अपने चैतन्य की जागृति दब गई, इसलिए उस अपेक्षा से वह जड़ है। इससे कहीं ऐसा नहीं समझना कि चैतन्य मिटकर जड़द्रव्य हो जाता है। यदि आत्मा जड़ हो जाता हो तो 'तू समझ, आत्मा को पहिचान' ऐसा सम्बोधन भी नहीं किया जा सकता। यह तो कई बार कहते हैं कि अबालवृद्ध, राजा से रंक—सब आत्मा प्रभु हैं, सर्व आत्मा परिपूर्ण भगवान हैं, सर्व आत्मा वर्तमान में अनन्त गुणों से भरे हैं; परन्तु उसकी प्रतीति न करे, पहिचाने नहीं और जड़ के कर्त्तव्य को अपना कर्त्तव्य माने, जड़ के स्वरूप को अपना स्वरूप माने, उसकी दृष्टि में उसे जड़ ही भासित होता है, इसलिए उसे जड़ कहा है।72

❀

अनादि-अनन्त ऐसा जो एक निज शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसका स्वसन्मुख होकर आराधन करना ही परमात्मा होने का सच्चा उपाय है।73

❀

नरकादि के दुःखों का वर्णन वह कोई जीवों को भयभीत करने के लिये झूठा कल्पित वर्णन नहीं है। परन्तु तीव्र पाप के फल को भोगने के स्थान

जगत में विद्यमान हैं। जिस प्रकार धर्म का फल मोक्ष है, पुण्य का फल स्वर्ग है, उसी प्रकार पाप का फल जो नरक, वह स्थान भी है। अज्ञानपूर्वक तीव्र हिंसादि पाप करनेवाले जीव ही वहाँ जाते हैं, और वहाँ उत्पन्न होते ही महादु:ख पाते हैं। उनकी वेदना का चित्कार वहाँ कौन सुने? पहले पाप करते हुए पीछे मुड़कर देखा हो, या धर्म की परवाह की हो, तो शरण मिले न? इसलिए हे जीव! तू ऐसे पाप करने से चेत जाना! इस भव के बाद जीव को अन्यत्र कहीं जाना है—यह लक्ष्य में रखना। आत्मा का वीतरागविज्ञान ही एक ऐसी वस्तु है कि जो तुझे यहाँ तथा परभव में भी सुख प्रदान करे।74

❀

धर्मात्माओं के प्रति दान तथा बहुमान का भाव आये, उसमें अपनी धर्मभावना का घोटन होता है। जिसे स्वयं धर्म का प्रेम है, उसे अन्य धर्मात्मा के प्रति प्रमोद, प्रेम एवं बहुमान आता है। धर्म धर्मीजीव के आधार से है, इसलिए जिसे धर्मी जीवों के प्रति प्रेम नहीं है, उसे धर्म का ही प्रेम नहीं है। भव्य जीवों को साधर्मी सज्जनों के साथ अवश्य प्रीति करना चाहिए।75

❀

धर्मात्मा को अपना रत्नत्रयस्वरूप आत्मा ही परमप्रिय है, संसार सम्बन्धी दूसरा कुछ भी प्रिय नहीं है। जिस प्रकार गाय को अपने बछड़े के प्रति तथा बालक को अपनी माता के प्रति कैसा प्रेम होता है, उसी प्रकार धर्मात्मा को अपने रत्नत्रयस्वभावरूप मोक्षमार्ग के प्रति अभेदबुद्धि से परम वात्सल्य होता है। अपने को रत्नत्रयधर्म में परमवात्सल्य होने से अन्य रत्नत्रयधर्मधारी जीवों के प्रति भी उनको वात्सल्य उमड़े बिना नहीं रहता।76

❀

बाह्य क्रियाकाण्ड में लोगों को रुचि हो गयी है, और अन्तर की यह ज्ञायकवस्तु छूट गयी है। वस्तु क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? इत्यादि प्रकार से उसका मंथन होना चाहिए। वस्तुस्वरूप को समझे बिना जीवों का सीधा धर्म करना है! प्रतिमा धारण कर लेते हैं, हो सका तो साधु बन जाते हैं; बस, हो गया धर्म! किन्तु भाई! सम्यग्दर्शन के बिना प्रतिमा या साधुपना कैसा? आत्मार्थी का श्रवण-पठन-मनन सब मुख्यतः आत्मा के लिये है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये है।77

❀

प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से है। जीव, जीव के द्रव्य-गुण-पर्याय से है और अजीव, अजीव के द्रव्य-गुण-पर्याय से है। इस प्रकार सभी द्रव्य परस्पर असहाय हैं; प्रत्येक द्रव्य स्वसहायी है तथा पर से असहायी है। प्रत्येक द्रव्य किसी भी परद्रव्य की सहायता लेता भी नहीं है और कोई भी परद्रव्य को सहायता देता भी नहीं है। शास्त्र में 'परस्परोग्रहो जीवानाम्' कथन आता है, परन्तु वह कथन उपचार से है। वह तो उस-उस प्रकार के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान कराने के लिये है। उस उपचार का सच्चा ज्ञान वस्तुस्वरूप की मर्यादा समझ में आये तभी होता है, अन्यथा नहीं होता।78

❀

तालाब की ऊपर सतह बाहर से एक सी लगती है, परन्तु भीतर उतरकर उसकी गहराई का माप करने पर किनारे और मध्य की गहराई में कितना अन्तर है, वह ज्ञात होता है; उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी के वचन ऊपर-ऊपर से देखने में समान लगते हैं, किन्तु अन्तर का गम्भीर रहस्य देखने पर उनके आशय में कितना अन्तर है, वह समझ में आता है।79

❀

चाहे जैसे संयोग में, क्षेत्र में या काल में जो जीव स्वयं निश्चयस्वभाव का आश्रय करके परिणमता है, वही जीव मोक्षमार्ग तथा मोक्ष को प्राप्त होता है; और जो जीव शुद्धस्वभाव का आश्रय नहीं करता तथा पराश्रित ऐसे व्यवहार का आश्रय करता है, वह जीव किसी संयोग में, क्षेत्र में या काल में सम्यग्दर्शनादि प्राप्त नहीं करता। तात्पर्य यह है कि शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं है, क्योंकि उसके अत्याग से बन्ध नहीं होता और उसके त्याग से बन्ध ही होता है।80

❀

पर के लिये तो एक बार मृतकवत् हो जाना चाहिए। पर में तेरा कोई अधिकार ही नहीं है। अरे भाई! तू राग को तथा रजकण को नहीं कर सकता, ऐसा ज्ञाता-दृष्टा पदार्थ है। ऐसे ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव की दृष्टि कर। चारों ओर से उपयोग को समेटकर एक आत्मा में ही जा।81

❀

ध्रुव का मूल्य अधिक है। आनन्द की पर्याय तो एक समय की है और ध्रुव में तो आनन्द के ढ़ेर भरे हैं।82

❀

पण्डित भागचन्दजी कृत 'सत्तास्वरूप' में, अरहंत का स्वरूप जानकर गृहीत मिथ्यात्व टालने का स्वरूप बड़ी अच्छी तरह समझाया है। परमार्थ-तत्त्व के विरोधी ऐसे कुदेव, कुगुरु तथा कुशास्त्र को अच्छा मानना, वह गृहीतमिथ्यात्व है। मैं पर का कर्ता हूँ, (कर्म से) बाधित हूँ, पर से भिन्न-स्वतन्त्र नहीं हूँ, शुभराग से मुझे लाभ होता है—ऐसी जो विपरीत मान्यता अनादि से है, वह अगृहीतमिथ्यात्व अथवा निश्चयमिथ्यात्व है। उस निश्चयमिथ्यात्व को हटाने से पूर्व, जो गृहीतमिथ्यात्व अथवा व्यवहार-

मिथ्यात्व है, उसे हटाना चाहिए।83

❀

परिणाम परिणामी से (द्रव्य से) भिन्न नहीं है, क्योंकि परिणाम और परिणामी अभिन्न वस्तु है—भिन्न-भिन्न दो नहीं हैं। पर्याय जिसमें से हो, उससे वह भिन्न वस्तु नहीं हो सकती। सोना और सोने का गहना दोनों अलग हो सकते हैं? कदापि नहीं होते। सोने में से अँगूठी की अवस्था हुई, वहाँ अँगूठीरूप अवस्था कहीं रह गई और सोना अन्यत्र कहीं रह गया, ऐसा हो सकता है? कभी नहीं होता। कोई कहे कि—अँगूठी तो सोनार ने बनाई है, परन्तु सोनार ने अँगूठी नहीं बनाई, किन्तु अँगूठी बनाने की इच्छा सोनार ने की है। इच्छा का कर्त्ता सोनार है, परन्तु अँगूठी का कर्त्ता सोनार नहीं है, सोनार तो मात्र निमित्त है, उसने अँगूठी नहीं बनाई है। अँगूठी का कर्त्ता सोना है, सोने में से ही अँगूठी हुई है; उसी प्रकार चैतन्य की जो भी अवस्था होती है, वह चैतन्यद्रव्य से अभिन्न होने से उसका कर्त्ता चैतन्य है और जड़ की जो भी अवस्था हो, वह जड़ द्रव्य से अभिन्न होने के कारण उसका कर्त्ता जड़ है। इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी क्रियावान अर्थात् द्रव्य से भिन्न नहीं हैं। वस्तु के बिना अवस्था नहीं होती और अवस्था के बिना वस्तु नहीं हो सकती।84

❀

अध्यात्मशास्त्र के भाव कोई चाहे जिसके पास से सुन ले अथवा अपने आप पढ़ ले तो स्वच्छन्द से अपूर्व आत्मबोध प्रगट नहीं होता। गुरुगमरूप से एक बार ज्ञानी के निकट साक्षात्-सीधा श्रवण करना चाहिए। 'दीप से दीप जलता है।' सत् झेलने के लिये अपना उपादान तैयार हो वहाँ ज्ञानी के निमित्तपने का योग सहज होता ही है। श्रीमद् ने कहा है कि—

बूझी चहत जो प्यास को, है बूझन की रीत;
पावे नहि गुरुगम बिना, यही अनादि स्थित ॥85

❀

परमपारिणामिक भाव हूँ, कारणपरमात्मा हूँ, कारणजीव हूँ, शुद्धोपयोगोऽहं, निर्विकल्पोऽहं।86

❀

जिनवाणी में मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार से है; अखण्ड आत्मस्वभाव के अवलम्बन से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह सच्चा मोक्षमार्ग है, और उस भूमिका में जो महाव्रतादि का राग-विकल्प है, वह मोक्षमार्ग नहीं है किन्तु उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा है। आत्मा में वीतराग शुद्धिरूप जो निश्चयमोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह सच्चा, अनुपचार, शुद्ध, उपादान एवं यथार्थ मोक्षमार्ग है, और उस काल वर्तते हुए अट्ठाईस मूलगुण आदि के शुभराग को—वह सहचर तथा निमित्त होने से—मोक्षमार्ग कहना, वह उपचार है, व्यवहार है। पण्डित श्री टोडरमलजी ने कहा है न!—

मोक्षमार्ग तो कहीं दो नहीं हैं, मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को 'मोक्षमार्ग' निरूपित किया है, वह 'निश्चय-मोक्षमार्ग' है, और जहाँ मोक्षमार्ग तो है नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है अथवा सहचारी है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा, वह 'व्यवहारमोक्षमार्ग' है; क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। सच्चा निरूपण, सो निश्चय; उपचार निरूपण, सो व्यवहार। इसलिए निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना। परन्तु एक निश्चयमोक्षमार्ग है तथा एक

व्यवहारमोक्षमार्ग है—इस प्रकार दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है।87

❀

जैनधर्म की महत्ता यह है कि मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि शुद्ध भावों की प्राप्ति उसी में होती है। उसी से जैनधर्म की श्रेष्ठता है। इसलिए हे जीव! ऐसे शुद्धभाव द्वारा ही जैनधर्म की महिमा जानकर तू उसे अंगीकार कर, और राग को-पुण्य को धर्म न मान। जैनधर्म में तो सर्वज्ञ भगवान ने ऐसा कहा है कि जो पुण्य को धर्म मानता है, वह मात्र भोग की ही इच्छा रखता है, क्योंकि पुण्य के फल में तो स्वर्गादि के भोगों की ही प्राप्ति होती है; इसलिए जिसे पुण्य की भावना है, उसे भोग की ही अर्थात् संसार की ही भावना है, किन्तु मोक्ष की भावना नहीं है।88

❀

भरत चक्रवर्ती और बाहुबली दोनों भाईयों में युद्ध हुआ। साधारण लोगों को तो ऐसा लगेगा कि दोनों सम्यग्ज्ञानी, दोनों सगे भाई, तथा उसी भव में दोनों मोक्ष आनेवाले हैं, तो फिर यह क्या? परन्तु युद्ध करते समय भी भान है कि मैं इस सबसे भिन्न हूँ; वे युद्ध के ज्ञाता हैं। जो क्रोध होता है, उस क्रोध के भी ज्ञाता है। अपने शुद्ध, पवित्र आनन्दघनस्वभाव की प्रतीति वर्तती है, परन्तु अस्थिरता होने से युद्धभूमि में खड़े हैं। भरत चक्रवर्ती जब जीत नहीं सके तब, बाहुबली पर चक्र छोड़ते हैं। उसी समय बाहुबली को वैराग्य जागृत होता है कि अरे! धिक्कार है इस राज्य को! इस जीवन में राज्य के लिये यह क्या? ज्ञानी पुण्य से भी सन्तुष्ट नहीं हैं और पुण्य के फल से भी सन्तुष्ट नहीं हैं। बाहुबलीजी कहते हैं कि मैं चिदानन्द आत्मा पर से भिन्न हूँ, उसे यह नहीं होना चाहिए, यह शोभा नहीं देता! धिक्कार है ऐसे राज्य को! इस प्रकार वैराग्य आने से मुनिपना अंगीकार किया। बिल्ली जिस मुँह से अपने बच्चे को

पकड़ती है, उसी मुँह से चूहे को पकड़ती है, किन्तु 'पकड़ पकड़ में फेर है', उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी की क्रिया एक जैसी दिखायी देने पर भी भावों में बड़ा अन्तर होता है।89

❀

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता। स्वतन्त्रता की यह बात समझने में महँगी लगती है, परन्तु जितना काल संसार में गया, उतना काल मुक्ति प्रगट करने में नहीं चाहिए, इसलिए सत्य वह सुलभ है। यदि सत्य महँगा हो तो मुक्ति किसकी होगी? इसलिए जिसे आत्महित करना हो, उसे सत्य निकट ही है।90

❀

यह समयसार शास्त्र आगमों का भी आगम है; लाखों शास्त्रों का सार इसमें भरा है; जैनशासन का यह स्तम्भ है; साधक की यह कामधेनु है; कल्पवृक्ष है; चौदह पूर्व का रहस्य इसमें समाया हुआ है। इसकी प्रत्येक गाथा छट्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए महामुनि के आत्म-अनुभव में से निकली है।91

❀

स्वरूप में लीनता के समय पर्याय में भी शान्ति और वस्तु में भी शान्ति, आत्मा के आनन्दरस में शान्ति, शान्ति और शान्ति; वस्तु और पर्याय में ओतप्रोत शान्ति। रागमिश्रित विचार था, वह खेद छूटकर पर्याय में और वस्तु में समता, समता और समता; वर्तमान पर्याय में भी समता और त्रैकालिक वस्तु में भी समता। आत्मा का आनन्दरस बाहर और भीतर सर्व प्रकार प्रस्फुटित हो जाता है; आत्मा विकल्प के जाल को लाँघकर आनन्दरसरूप ऐसे अपने स्वरूप को प्राप्त होता है।92

❀

स्याद्वाद तो सनातन जैनदर्शन है; उसे जैसा है, वैसा समझना चाहिए। वस्तु त्रैकालिक ध्रुव है; उसकी अपेक्षा से एक समय की शुद्ध पर्याय को भी भले ही हेय कहते हैं; परन्तु दूसरी ओर, शुभराग आता है—होता है; उसके निमित्त देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का शुभराग होता है। भगवान की प्रतिमा होती है; उसे जो न माने, वह भी मिथ्यादृष्टि है। भले ही उससे धर्म नहीं होता, परन्तु उसका उत्थापन करे तो मिथ्यादृष्टि है। शुभराग हेय है, दुःखरूप है, परन्तु वह भाव होता है; उसके निमित्त भगवान की प्रतिमा आदि होते हैं। उनका निषेध करे तो वह जैनदर्शन को नहीं समझा है, इसलिए वह मिथ्यादृष्टि है।93

❀

ज्ञानी का आन्तरिक जीवन समझने के लिये अन्तर की पात्रता चाहिए। पूर्वप्रारब्ध के योग से बाह्य संयोगों में खड़े होने पर भी धर्मात्मा की परिणति अन्तर में कुछ और ही कार्य करती है। जो संयोगदृष्टि से देखे, उसे स्वभाव समझ में नहीं आयेगा। धर्मात्मा की दृष्टि संयोग पर नहीं, किन्तु आत्मा का स्वपर-प्रकाशक स्वभाव क्या है, उस पर होती है। ऐसी दृष्टिवाले धर्मात्मा का आन्तरिक जीवन अन्तर की दृष्टि से समझ में आता है, बाह्य संयोगों पर से उसका माप नहीं होता।94

❀

भवभ्रमण का अन्त लाने का सच्चा उपाय क्या? 'द्रव्यसंयम से ग्रीवक पायो, फिर पीछो पटक्यो', वहाँ क्या करना शेष रहा?—मार्ग कोई अलग ही है; आजकल तो उलटे से ही शुरुआत की जाती है। यह क्रियाकाण्ड मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु पारमार्थिक आत्मा तथा सम्यग्दर्शनादि के स्वरूप का निर्णय

करके स्वानुभव करना, वह मार्ग है; अनुभव में विशेष लीनता, वह श्रावकमार्ग है और उससे भी विशेष स्वरूपरमणता, वह मुनिमार्ग है। साथ में वर्तते बाह्य व्रत-नियम तो अपूर्णता की—कचास की प्रगटता है। अरेरे! मोक्षमार्ग की मूल बात में इतना बड़ा अन्तर पड़ गया है।95

❀

अखण्ड द्रव्य और पर्याय दोनों का ज्ञान होने पर भी अखण्ड स्वभाव की ओर लक्ष्य रखना, उपयोग की एकाग्रता अखण्ड द्रव्य की ओर ले जाना, वह अन्तर में समभाव को प्रगट करता है। स्वाश्रय द्वारा बन्ध का नाश करती जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसे भगवान मोक्षमार्ग अर्थात् धर्म कहते हैं।96

❀

अहो! अडोल दिगम्बरवृत्ति को धारण करनेवाले, वन में बसनेवाले और चिदानन्दस्वरूप आत्मा में डोलनेवाले मुनिवर, जो कि छठवें-सातवें गुणस्थान में आत्मा के अमृतकुण्ड में निमग्न हुए झूलते हैं, उनका अवतार सफल है। ऐसे सन्त-मुनिवर भी वैराग्य की बारह भावनाएँ भाते हुए वस्तुस्वरूप का चिन्तवन करते हैं। अहा! तीर्थंकर भी दीक्षा से पूर्व जिनका चिन्तवन करते हैं, ऐसी वैराग्यरसपूरित यह बारह भावनाएँ भाते हुए किस भव्य को आनन्द नहीं होगा? और किस भव्य को मोक्षमार्ग का उत्साह नहीं जायेगा?97

❀

दृष्टि का विषय द्रव्यस्वभाव है, उसमें तो अशुद्धता की उत्पत्ति है ही नहीं। सम्यक्त्वी को एक भी अपेक्षा से अनन्त संसार का कारण ऐसे मिथ्यात्व एवं अनन्तानुबन्धी कषाय का बन्ध नहीं है; परन्तु उस पर से कोई ऐसा ही मान ले कि उसको किंचित् भी विभाव तथा बन्ध नहीं है, तो वह एकान्त है। अन्तर में शुद्धस्वरूप की दृष्टि तथा अनुभव होने पर भी अभी आसक्ति है, वह

दु:खरूप लगती है। रुचि एवं दृष्टि-अपेक्षा से भगवान आत्मा तो अमृतस्वरूप आनन्द का सागर है, उसके आंशिक वेदन के समक्ष शुभ और अशुभ दोनों राग दु:खरूप लगते हैं, अभिप्राय में विष और काले नाग जैसे लगते हैं। 98

❀

आत्मा अचिन्त्य सामर्थ्यवान है। उसमें अनन्त गुणस्वभाव है। उसकी रुचि हुए बिना उपयोग पर में से हटकर स्व में नहीं आ सकता। जो पापभावों की रुचि में पड़े हैं, उनकी तो बात ही क्या? परन्तु पुण्य की रुचिवाले बाह्य त्याग करें, तप करें, द्रव्यलिंग धारण करें, तथापि जब तक शुभ की रुचि है, तब तक उपयोग पर की ओर से पलटकर स्वोन्मुख नहीं हो सकता। इसलिए प्रथम पर की रुचि बदलने से उपयोग पर की ओर से हटकर स्व में आ सकता है। मार्ग की यथार्थ विधि का यह क्रम है। 99

❀

आज श्री महावीर भगवान के निर्वाणकल्याणक का मंगल दिन है। महावीर परमात्मा भी, इन सब आत्माओं जैसे ही आत्मा थे; उन्हें सत्समागम से आत्मा का भान हुआ और क्रमशः साधना के उन्नतिक्रम में चढ़ते-चढ़ते तीर्थंकर हुए। जिस प्रकार चौंसठ पहरी पीपल को पीसते-पीसते वह चरपरी-चरपरी होती जाती है, उसी प्रकार आत्मा में जो परमानन्द शक्तिरूप से भरा है, वह (स्वसन्मुखता के अन्तर्मुख) प्रयास द्वारा बाहर आता है। महावीर भगवान ने, अपने आत्मा में जो पूर्ण परमानन्द भरा था, उसे स्वयं अनुक्रम से प्रयास करके प्रगट कर लिया; मन, वाणी और शरीर से भिन्न पूर्ण ज्ञानानन्दमय जो निज तत्त्व, उसे पूर्णरूप से साध लिया।

जिनको पूर्ण परमानन्द प्रगट हो गया है, ऐसे परमात्मा पुनः अवतार नहीं लेते, परन्तु जगत के जीवों में से कोई जीव उन्नतिक्रम में चढ़ते-चढ़ते

जगद्गुरु 'तीर्थंकर' होता है। जगत के जीवों में धर्म प्राप्त करने की योग्यता विकसित होती है, तब ऐसा उत्कृष्ट निमित्त भी तैयार होता है।

जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, वह शुभभाव भी आत्मा को (वीतरागता का) लाभ नहीं करता। वह शुभराग टूटेगा, तब भविष्य में वीतरागता तथा केवलज्ञान होगा। महावीर भगवान का जीव पूर्व तीसरे भव में नग्न दिगम्बर भावलिंगी मुनि था। वहाँ मुनिरूप से स्वरूपरमणता में रमते थे तब, उसमें से बाहर आने पर ऐसा विकल्प उठा कि—अहा! ऐसा चैतन्यस्वभाव! उसे सब जीव कैसे प्राप्त करें! सर्व जीव ऐसा स्वभाव प्राप्त करो! वास्तव में इसका अर्थ यह है कि—अहा! ऐसा मेरा चैतन्यस्वभाव कब पूर्ण प्रगट हो? मैं पूर्ण कब होऊँ? अन्तर में ऐसी भावना का जोर है, और बाह्य से ऐसा विकल्प आता है कि 'अहा! ऐसा स्वभाव सर्व जीव कैसे प्राप्त करें?' ऐसे उत्कृष्ट शुभभाव से उनके तीर्थंकर नामकर्म बँध गया।

महावीर भगवान को केवलज्ञान हुआ किन्तु वाणी छयासठ दिन के बाद खिरी। केवलज्ञान तीन काल, तीन लोक, स्व-पर समस्त द्रव्य तथा उनके अनन्त भावों को युगपद् एक समय में हस्तामलकवत् अत्यन्त स्पष्टरूप से जानता है। भगवान ने दिव्यध्वनि में कहा है कि—आत्मा में अखण्ड आनन्दस्वभाव भरा है; जिसमें ज्ञानादि अनन्त स्वभाव भरे हैं, ऐसे चैतन्यमूर्ति निज आत्मा की श्रद्धा करे, उसमें लीनता करे, तो उसमें से केवलज्ञान का पूर्ण प्रकाश अवश्य प्रगट होता है।

महावीर भगवान के जो यह गीत गाये जा रहे हैं, वे उन जैसे अपने स्वरूप को प्रगट करने के लिये हैं। वैसे स्वरूप को समझे तो वर्तमान में भी एकावतारीपना प्रगट किया जा सकता है। उस स्वरूप को जो प्रगट करेगा उसकी अवश्य मुक्ति होगी। 100

समयसारमर्मज्ञ स्वानुभवविभूषित अध्यात्मयुगप्रवर्तक

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का किया हुआ

✿ विशाल शास्त्रस्वाध्याय ✿

1. समयसार *
2. प्रवचनसार ❐
3. पंचास्तिकायसंग्रह ❐
4. नियमसार ❐
5. अष्टपाहुड़ ❐
6. द्रव्यसंग्रह ❐
7. कार्तिकेयानुप्रेक्षा ❐
8. मोक्षमार्गप्रकाशक ❐
9. अनुभवप्रकाश ❐
10. समाधिशतक ❐
11. इष्टोपदेश ❐
12. भक्तामर-स्तोत्र ❐
13. सत्तास्वरूप ❐
14. परमात्मप्रकाश ❐
15. नाटक समयसार ❐
16. योगसार (अमितगति) ❐
17. सम्यग्ज्ञानदीपिका ❐
18. पद्मनन्दिपंचविंशतिका ❐
19. तत्त्वज्ञानतरंगिणी ❐
20. तत्त्वार्थसार ❐
21. धवला (प्रथम भाग) ❐
22. आत्मानुशासन ❐
23. कलश टीका (पण्डित राजमलजीकृत) ❐
24. छहढाला ❐
25. योगसार (योगीन्दुदेव) ❐
26. अमृतकलश
27. गोम्मटसार
28. ज्ञानार्णव ❐
29. स्वात्मानुभवमनन
30. चिद्विलास ❐
31. आत्मावलोकन
32. भगवती आराधना
33. तत्त्वभावना
34. रयणसार
35. द्वादशानुप्रेक्षा (कुन्दकुन्दाचार्य) ❐
36. पंचाध्यायी
37. तत्त्वार्थसूत्र
38. सर्वार्थसिद्धि
39. तत्त्वार्थराजवार्तिक

40. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक
41. आप्तमीमांसा
42. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ❐
43. त्रिलोकसार
44. तिलोयपण्णत्ति
45. धवला के सब ग्रन्थ
46. महाबन्ध
47. जयधवला (प्रथम भाग) ❐
48. जयधवला

(प्रकाशित सब ग्रन्थ)

49. अर्थप्रकाशिका
50. परमाध्यात्मतरंगिणी
51. आलापपद्धति
52. सर्वार्थसिद्धिवचनिका
53. तत्त्वानुशासन
54. वैराग्यमणिमाला
55. परमानन्दस्तोत्र
56. स्वरूपसंबोधन
57. आदिपुराण
58. उत्तरपुराण
59. हरिवंशपुराण
60. पद्मपुराण
61. शान्तिनाथपुराण
62. ऐकीभावस्तोत्र ❐
63. कल्याणमन्दिरस्तोत्र ❐
64. विषापहारस्तोत्र ❐
65. रहस्यपूर्णचिट्ठी ❐
66. परमार्थवचनिका ❐
67. भरतेशवैभव
68. उपादान-निमित्त-चिट्ठी ❐
69. ब्रह्मविलास
70. विद्वज्जनबोधक
71. पाहुडदोहा
72. सावयधम्मदोहा
73. चर्चासमाधान
74. जिनसहस्रनाम
75. रत्नकरण्डश्रावकाचार
76. सागारधर्मामृत
77. अणगारधर्मामृत
78. आचारसार
79. चारित्रसार
80. मूलाचार
81. लाटीसंहिता
82. अमितगति-श्रावकाचार
83. लब्धिसार
84. पंचसंग्रह
85. वसुबिन्दुप्रतिष्ठापाठ
86. सुदृष्टितरंगिणी
87. सप्तभंगीतरंगिणी
88. भावदीपिका
89. अध्यात्मपंच संग्रह
90. बनारसीविलास

91. अध्यात्मकमलमार्तण्ड
92. ज्ञानानन्दश्रावकाचार
93. नयचक्रादिसंग्रह
94. जैनसिद्धान्तदर्पण
95. प्रमेयरत्नमाला
96. परीक्षामुख
97. आप्तपरीक्षा
98. न्यायदीपिका
99. युक्त्यानुशासन
100. स्वयंभूस्तोत्र
101. स्तुतिविद्या
102. दर्शनसार
103. आराधनासार
104. रत्नमाला
105. पात्रकेसरीस्तोत्र
106. क्रियाकोष
107. श्रीमद्राजचन्द्र
108. प्रतिष्ठासारसंग्रह
109. लघुतत्त्वस्फोट
110. पंचस्तोत्र
111. प्रथमगुच्छक
112. क्षपणासार
113. मुक्तिदूत
114. वरांगचरित
115. धर्मोपदेशरत्नमाला
116. नयदर्पण
117. पंचास्तिकायदर्पण
118. क्रियाकोष
119. न्यायप्रदीप
120. धर्मविलास
121. सुभौमचरित्र
122. सुलोचनाचरित्र
123. बहिनश्री के वचनामृत ❐
124. जैनतत्त्वमीमांसा
125. मूलाराधना
126. उपासकाध्ययन
127. वसुनन्दिश्रावकाचार
128. जिनेन्द्रसिद्धान्तकोश
129. तत्त्वार्थवृत्ति
130. जैनधर्म
131. सर्वार्थसिद्धि-प्रश्नोत्तर
132. तत्त्वार्थसूत्र (भास्करनंदी)
133. तत्त्वार्थबोध
134. सिद्धान्तसारसंग्रह
135. पंचसंग्रह
136. सुभाषितरत्नसन्दोह
137. बुद्धिविलास
138. श्रावकधर्मसंग्रह
139. मुनिसुव्रतकाव्य
140. कुन्दकुन्दप्राभृतसंग्रह
141. अध्यात्मपदसंग्रह
142. दौलतविलास

143. अध्यात्मरहस्य
144. भावसंग्रह
145. जिनशतक
146. स्याद्वादसिद्धि
147. लघीयस्त्रयसंग्रह
148. न्यायदीपिका
149. आत्मबोध
150. तत्त्वार्थदीपिका
151. अर्धकथानक
152. अध्यात्मतरंगिणी
153. नीतिवाक्यामृत
154. सारसमुच्चय
155. धर्मध्यानदीपक
156. प्रायश्चित्तसंग्रह
157. प्राश्चित्तसमुच्चय
158. धर्मप्रश्नोत्तर
159. समीचीन धर्मशास्त्र
160. रत्नमाला
161. अध्यात्मवाणी
162. चर्चाशतक
163. यतिक्रियामंजरी
164. सिद्धान्तसारादिसंग्रह
165. भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव
166. प्रतिक्रमणग्रन्थत्रयी
167. सामायिकपाठ
168. सुशीला-उपन्यास
169. अनित्यपंचाशत्
170. खानिया-तत्त्वचर्चा
171. रत्नमंजूषा
172. दशभक्ति
173. बृहत्सामायिकपाठ
174. धर्मशर्माभ्युदय
175. तत्त्वसार
176. कसायपाहुडसुत्तं
177. सहजसुखसाधन
178. जैनदर्शन
179. मदनपराजय
180. धर्मामृत
181. द्रव्यदृष्टिप्रकाश
182. जैनसिद्धान्तप्रवेशिका
183. जैन-लक्षणावली

—तदुपरान्त दूसरे अनेक जैन-जैनेतर साहित्य का स्वाध्याय किया था।

नोंध:—

* समयसार ऊपर शास्त्रसभा में 19 बार प्रवचन दिये थे।

❐ चिह्न द्वारा दर्शित शास्त्र पर भी (किसी पर तो अनेक बार) प्रवचन दिये हैं।

अध्यात्मरसना राजवी कहानगुरु

शासन तणा शिरोमणि स्तवना करुं 'गुरु कहान' नी;
तुज दिव्य मूर्ति झळहळे, अध्यात्मरसना राजवी॥ 1॥

अध्यात्म-कल्पवृक्षनां फळनो रसीलो तुं थयो;
तुं शुद्धरससाधक बन्यो, अन्तर तणी सृष्टि लह्यो॥ 2॥

तुं लोकसंज्ञा जीतीने, अलमस्त थई जगमां फर्यो;
परमात्मनुं ध्यान ज धरी, तुज आत्मने स्वच्छ ज कर्यो॥ 3॥

प्रतिबन्ध टाळी लोकनो, आनन्दनी मोजे रह्यो;
तें शुद्ध चेतनधर्मनो अनुभव हृदयमांही लह्यो॥ 4॥

अन्तर तणा आनन्दमां सुरता लगावी प्रेमथी;
शुभ द्रव्यभावे तप तप्येथी शुद्धि करी शुभ नेमथी॥ 5॥

निन्दा करी ना कोईनी, निन्दा करी सहु तें सही;
शुद्धात्मरस-भोगी भ्रमर, शुभदृष्टि तारामां रही॥ 6॥

औदार्यने तें आदरी जगमां जणाव्युं बोलथी;
आचारमां मूकी घणुं जोयुं अनुभव-तोलथी॥ 7॥

तारा हृदयनी गूढता त्यां मूढ जननी मूढता;
जे आत्मयोगी होय ते जाणे खरे तव शुद्धता॥ 8॥

पहोंच्यो अने पहोंचाडतो तुं लोकने शुद्ध भावमां;
अध्यात्मरसिया जे थया, बेठा खरे शुद्ध नावमां॥ 9॥

दुनिया थकी डरतो नथी, आशा नथी, ममता जरी;
ज्यां हुं वसुं त्यां तुं नहीं—अे भावना विलसे खरी॥ 10॥

स्याद्वाद पारावार छे, आनन्द अपरंपार छे;
साचा हृदयनो सन्त छे, परवा नथी, जयकार छे॥ 11॥

आशा नथी कीर्ति तणी, अपकीर्तिने गणतो नथी;
लोको मने ए शुं कहे त्यां लक्षने देतो नथी॥ 12॥

व्यवहारना भेदो घणा त्यां क्लेशने करतो नथी;
लागी लगनवा आत्मनी, बीजुं कशुं जोतो नथी॥ 13॥

तें भावसंयम-बोटमां बेसी प्रयाण ज आदर्युं;
भवपथ-उदधि तरवा विषे तें लक्ष अन्तरमां धर्युं॥ 14॥

जे जे भर्युं तुज चित्तमां, ते बाह्यमां देखाय छे;
अध्यात्मरसरसिया जनोथी तुज हृदय परखाय छे॥ 15॥

एकान्तथी अध्यात्ममां जे शुष्क थईने चालतो;
चाबुक तेने मारीने व्यवहारमांही बाळतो॥ 16॥

गम्भीर तारी वाणीमां भावार्थ बहु ऊंडा छतां;
जे हृदय तारुं जाणता ते भाव तारो खेंचता॥ 17॥

तुज वदन-कमळेथी वहे उपदेशनां अमृत अहो!
अध्यात्म-अमृत-पानथी वारी जता कोटी जनो॥ 18॥

उपकार तारा शुं कथुं? गुणगान तारां शुं करुं?
वन्दन करुं, स्तवना करुं, तुज चरणसेवाने चहुं॥ 19॥

आदरणीय पण्डित श्री हिम्मतलाल जे. शाह द्वारा वि.सं. 1990 में प्रस्तुत
'आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी' में से

कुछ अवतरण

प्रामाणिक व्यापारी जीवन

छोटी उम्र में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो जाने से वे (पूज्य गुरुदेवश्री) आजीविका हेतु अपने बड़े भाई खुशालभाई के साथ पालेज में चालू दुकान में काम करने लगे। धीरे-धीरे दुकान अच्छी जम गई।

व्यापार में उनका वर्तन प्रामाणिक था। एक बार (करीब 16वर्ष की उम्र में) उन्हें किसी कारणवश बडौदा की अदालत में जाना पड़ा था। वहाँ उन्होंने न्यायाधीश के समक्ष सत्य स्थिति स्पष्टता से कह दी थी; उनके चेहरे पर झलकती हुई स्पष्टवादिता, निर्दोषता एवं निडरता का न्यायाधीश के मन पर प्रभाव पड़ा और उनके द्वारा कही गई सारी स्थिति सत्य है, ऐसा विश्वास आने से वह सारी स्थिति सम्पूर्णरूप से स्वीकार की।

परिवर्तन

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने वि.सं. 1991 की चैत्र शुक्ला त्रयोदशी और मंगलकार के दिन 'परिवर्तन' किया—स्थानकवासी सम्प्रदाय का त्याग किया। सम्प्रदाय का त्याग करनेवालों को कैसी-कैसी अनेक महाविपत्तियाँ पड़ती हैं, बालबुद्धि लोगों की ओर से अज्ञान के कारण उन पर कैसी अघटित निन्दा की झड़ियाँ बरसती हैं, उनका उन्हें पूरी तरह ध्यान था, परन्तु उन निडर एवं निःस्पृह महात्मा ने उसकी कोई परवाह नहीं की। सम्प्रदाय के हजारों श्रावकों के हृदय में महाराजश्री अग्रस्थान पर विराजमान

थे, इसलिए अनेक श्रावकों ने महाराजश्री से 'परिवर्तन' न करने के लिये अनेक प्रकार से प्रेमभाव सहित प्रार्थना की थी। परन्तु जिनके रोम-रोम में वीतराग प्रणीत यथार्थ सन्मार्ग के प्रति भक्ति उछल रही थी, वे महात्मा उस प्रेमभरी प्रार्थना के प्रभाव में आकर, राग में बहकर सत् को कैसे गौण होने देते? सत् के प्रति परम भक्ति में सर्व प्रकार की प्रतिकूलता का भय और अनुकूलता का राग अत्यन्त गौण हो गये। जगत से बिल्कुल निरपेक्षरूप से हजारों की मानवमेदिनी में दहाड़ता हुआ सिंह सत् के हेतु सोनगढ़ के एकान्त स्थान में जाकर बैठ गया।

सम्प्रदाय पर परिवर्तन का प्रभाव

जो स्थानकवासी सम्प्रदाय कानजीस्वामी के नाम से गौरवान्वित होता था, उसमें महाराजश्री के 'परिवर्तन' से खलबली मच जाना स्वाभाविक था। परन्तु महाराजश्री ने 1991 की साल तक सौराष्ट्र में लगभग प्रत्येक स्थानकवासी के हृदय में प्रवेश कर लिया था। महाराजश्री के पीछे सौराष्ट्र पागल हो गया था। इसलिए 'महाराजश्री ने जो किया होगा वह समझकर ही किया होगा।' ऐसा सोचकर धीरे-धीरे अनेक लोग तटस्थ हो गये। कुछ लोग देखने आते थे कि सोनगढ़ में क्या चल रहा है, परन्तु महाराजश्री का परम पवित्र जीवन एवं अपूर्व उपदेश सुनकर वे स्तम्भित हो जाते थे, टूटा हुआ भक्ति का प्रवाह पुनः बहने लगता था। कोई-कोई तो पश्चात्ताप करते कि—'महाराज! आपके सम्बन्ध में बिल्कुल कल्पित बातें सुनकर हमने आपकी बहुत आशातना की है, बहुत कर्म बाँधे हैं, हमें क्षमा करना।' इस प्रकार ज्यों-ज्यों महाराजश्री के पवित्र उज्ज्वल जीवन तथा आध्यात्मिक उपदेश सम्बन्धी बात लोगों में फैलती गई, त्यों-त्यों अधिकाधिक लोगों को

महाराजश्री के प्रति मध्यस्थता होती गई और अनेकों की साम्प्रदायिक मोह के कारण दबी हुई भक्ति पुनः प्रगट होती गई। मुमुक्षु एवं बुद्धिशाली वर्ग की परम भक्ति तो महाराजश्री के प्रति पहले की ही भाँति रही थी। अनेक मुमुक्षुओं के जीवनाधार कानजीस्वामी सोनगढ़ जाकर रहने लगे, तो मुमुक्षुओं का चित्त सोनगढ़ की ओर आकर्षित हुआ। धीरे-धीरे मुमुक्षुओं का प्रवाह सोनगढ़ की ओर बहने लगा। साम्प्रदायिक मोह अत्यन्त दुर्निवार होने पर भी, सत् के अर्थी जीवों की संख्या त्रिकाल अत्यल्प होने पर भी, साम्प्रदायिक मोह तथा लौकिक भय को छोड़कर सोनगढ़ की ओर बहता हुआ सत्संगार्थी जनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक बढ़ता ही जा रहा है।

समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य और सीमन्धर भगवान के प्रति अपार भक्ति

परमपूज्य अध्यात्मयोगी गुरुदेवश्री को समयसारजी के प्रति अतिशय भक्ति है,... महाराजश्री समयसारजी को उत्तमोत्तम शास्त्र मानते हैं। समयसारजी की बात करते हुए भी उन्हें अति उल्लास आ जाता है। समयसारजी की प्रत्येक गाथा मोक्ष प्रदान करे ऐसी है, ऐसा वे कहते हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के सर्व शास्त्रों पर उनको अत्यन्त प्रेम है। 'भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का हम पर महान उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं'—ऐसा वे अनेक बार भक्तिभीने अन्तर से कहते हैं। श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव महाविदेहक्षेत्र में सर्वज्ञ वीतराग श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में गये थे और वहाँ वे आठ दिन रहे थे—इस विषय में महाराजश्री को अणुमात्र शंका नहीं है। वे कोई बार पुकार कर कहते हैं:—कल्पना करना नहीं, इन्कार करना नहीं, यह बात ऐसी ही है; मानो तब भी ऐसी ही है, न मानो तब भी ऐसी ही है। यथातथ्य बात है, अक्षरशः सत्य है,

प्रमाणसिद्ध है।' श्री सीमन्धर प्रभु के प्रति गुरुदेव को अपार भक्ति है। कभी-कभी सीमन्धरनाथ के विरह में परम भक्तिवन्त गुरुदेव के नेत्रों से अश्रु की धारा बहती है।

अन्तर-विकास और मुमुक्षुओं पर परम-उपकार

परमपूज्य गुरुदेवश्री के ज्ञान पर सम्यक्ता की मुहर तो बहुत समय से लग गई थी। वह सम्यग्ज्ञान सोनगढ़ के विशेष निवृत्तिवाले स्थान में अद्भुत सूक्ष्मता को प्राप्त हुआ; नवीन-नवीन ज्ञानशैली सोनगढ़ में खूब विकसित हुई। अमृतकाल में जैसे अमृत घुल रहा हो, वैसे ही गुरुदेव के परमपवित्र अमृतकलशस्वरूप आत्मा में तीर्थंकरदेव के वचनामृतों का खूब घोलन-मंथन हुआ। वह मथा हुआ अमृत कृपालु गुरुदेव अनेक मुमुक्षुओं को परोसते हैं और निहाल करते हैं। समयसार, प्रवचनसार आदि ग्रन्थों पर प्रवचन करते हुए गुरुदेव के प्रत्येक शब्द में इतनी गहनता, सूक्ष्मता और नवीनता निकलती है कि वह श्रोताओं के उपयोग को भी सूक्ष्म बनाती है और विद्वानों की आश्चर्यचकित करती है। जो अनन्त आनन्दमय चैतन्यघन दशा प्राप्त करके तीर्थंकरदेव ने शास्त्रों की प्ररूपणा की, उस परम पवित्र दशा का सुधास्यन्दी स्वानुभूतिस्वरूप पवित्र अंश अपने आत्मा में प्रगट करके सद्गुरुदेव विकसित ज्ञानपर्याय द्वारा शास्त्र में विद्यमान गहन रहस्य खोलकर मुमुक्षुओं को समझाकर अपार उपकार कर रहे हैं। सैकड़ों शास्त्रों के अभ्यासी विद्वान भी गुरुदेव की वाणी सुनकर उल्लास आ जाने से कहते हैं, 'गुरुदेव! आपके वचनामृत अपूर्व हैं, उनका श्रवण करते हुए हमें तृप्ति ही नहीं होती। आप चाहे जो बात समझावो, उसमें से हमें नई-नई जानकारी प्राप्त होती है। नवतत्त्वों का

स्वरूप या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का स्वरूप, स्याद्वाद का स्वरूप या सम्यक्त्व का स्वरूप, निश्चय-व्यवहार का स्वरूप या व्रत-नियम-तप का स्वरूप, उपादान-निमित्त का स्वरूप या साध्य-साधन का स्वरूप, द्रव्यानुयोग का स्वरूप या चरणानुयोग का स्वरूप, गुणस्थान का स्वरूप या बाधक-साधकभाव का स्वरूप, मुनिदशा का स्वरूप या केवलज्ञान का स्वरूप—जिस-जिस विषय का स्वरूप आपके श्रीमुख से हम सुनते हैं, उसमें हमें अपूर्वभाव दृष्टिगोचर होते हैं। हमने शास्त्रों में से जो अर्थ निकाले थे, वे बिल्कुल ढीले, जड़-चेतन की मिलावटवाले, शुभ की शुद्ध में खतौनी करनेवाले, संसारभाव के पोषक, विपरीत एवं न्याय विरुद्ध थे; आपके अनुभवमुद्रित अपूर्व अर्थ टंकणक्षार जैसे, शुद्ध सुवर्ण सदृश, जड़-चेतन को पृथक् करनेवाले, शुभ और शुद्ध का स्पष्ट विभाग करनेवाले, मोक्षभाव के ही पोषक, सम्यक् एवं न्याययुक्त हैं। आपके प्रत्येक शब्द में वीतरागदेव का हृदय प्रगट होता है; हम प्रत्येक वाक्य में वीतरागदेव की विराधना करते थे। हमारा एक भी वाक्य सच्चा नहीं था। शास्त्र में ज्ञान नहीं है, ज्ञानपर्याय में ज्ञान है—इस बात का अब हमें साक्षात्कार होता है। शास्त्रों का गाया हुआ सद्गुरु का माहात्म्य अब हमारी समझ में आता है। शास्त्रों के ताले खोलने की कुंजी वीतरागदेव ने सद्गुरु को सौंपी है। सद्गुरु का उपदेश प्राप्त किये बिना शास्त्रों का रहस्य समझना अत्यन्त-अत्यन्त दुर्लभ है।

अध्यात्ममस्ती से भरपूर चमत्कारी व्याख्यानशैली

परमकृपालु गुरुदेव का ज्ञान जैसा अगाध एवं गम्भीर है, वैसी ही उनकी व्याख्यानशैली चमत्कारपूर्ण है। वे जो बात कहना चाहते हैं, उसे बड़ी

स्पष्टता से, अनेक सादा उदाहरण देकर, शास्त्री शब्दों का कम से कम प्रयोग करके समझाते हैं कि सामान्य मनुष्य भी उसे सरलता से समझ जाता है। अत्यन्त गहन विषय को भी अत्यन्त सुगम रीति से प्रतिपादित करने की गुरुदेव में विशिष्ट शक्ति है। तथा महाराजश्री के व्याख्यानशैली इतनी रसमय है कि जैसे सर्प मुरली के नाद पर मुग्ध हो जाता है, उसी प्रकार श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं, समय कहाँ चला जाता है, उसकी खबर भी नहीं रहती। स्पष्ट एवं रसमय होने के साथ-साथ महाराजश्री का प्रवचन श्रोताओं में अध्यात्म का प्रेम उत्पन्न करता है। महाराजश्री प्रवचन करते हुए अध्यात्म में ऐसे तन्मय हो जाते हैं, परमात्मदशा के प्रति ऐसी भक्ति उनके मुख पर दिखती है कि श्रोता उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। अध्यात्म की जीवन्तमूर्ति गुरुदेव के शरीर के रोम-रोम से मानों अध्यात्मरस झरता है; उस अध्यात्ममूर्ति की मुखमुद्रा, नेत्र, वाणी, हृदय—सब एकतार होकर अध्यात्म की वर्षा करते हैं और मुमुक्षुओं के हृदय उस अध्यात्मरस से भींग जाते हैं।

इस काल में मुमुक्षुओं के महाभाग्य

गुरुदेव का व्याख्यान सुनना वह एक जीवन का लाभ है। उनका व्याख्यान सुनने के बाद अन्य व्याख्याताओं के व्याख्यान में रस नहीं आता। उनका व्याख्यान सुननेवाले को इतना तो स्पष्ट लगता है कि 'ये पुरुष कोई भिन्न प्रकार के हैं, जगत से वे कुछ अलग ही कहते हैं, अपूर्व कहते हैं। इनके कथन में कोई अजीव दृढ़ता और जोर है। ऐसा कहीं सुना नहीं है।' महाराजश्री के व्याख्यान से अनेक जीव अपनी-अपनी पात्रतानुसार लाभ ले जाते हैं, कुछ को सत् के प्रति रुचि जागृत होती है, किन्हीं-किन्हीं को सत्-समझ के अंकुर

फूटते हैं और किन्हीं विरल जीवों की तो दशा ही बदल जाती है।

अहो! ऐसा अलौकिक पवित्र अन्तःपरिणमन—केवलज्ञान का अंश, और ऐसा प्रबल प्रभावना-उदय—तीर्थंकरत्व का अंश, इन दो का सुयोग इस कलिकाल में देखकर रोमांच होता है। मुमुक्षुओं का महापुण्य अभी तप रहा है।

भारतवर्ष के आँगन में कल्पवृक्ष

अहो! इन परम प्रभावक अध्यात्ममूर्ति की वाणी की तो क्या बात, उनके दर्शन भी महापुण्य का पुंज उछले, तब प्राप्त होते हैं। उन अध्यात्मयोगी के समीप में सांसारिक आधि-व्याधि-उपाधि आ नहीं सकते। संसारतप्त प्राणी वहाँ परम विश्रान्ति पाते हैं और सांसारिक दुःख मात्र कल्पना से ही उत्पन्न किये उन्हें भासने लगते हैं। जो वृत्तियाँ महा प्रयत्न से भी नहीं दबतीं उनका गुरुदेव के सान्निध्य में बिना प्रयत्न के शमन हो जाता है, ऐसा अनेकानेक मुमुक्षुओं का अनुभव है। आत्मा का निवृत्तिमय स्वरूप, मोक्ष का सुख आदि भावों की जो श्रद्धा अनेक तर्कों से नहीं होती, वह गुरुदेव के दर्शनमात्र से हो जाती है। गुरुदेव का ज्ञान और चारित्र मुमुक्षु पर महा कल्याणकारी प्रभाव डालता है। सचमुच भारतवर्ष के आँगन में शीतल छायावाला, वांछित फलदायी कल्पवृक्ष फला है। भारत देश के महाभाग्य खुले हैं।

बिहार द्वारा धर्मप्रभावना

...बिहार के समय मार्ग में आनेवाले अनेक गाँवों में धर्मप्रभावक पूज्य गुरुदेव वीतराग प्रणीत सद्धर्म का डंका बजाते गये और सत्पात्रों के कर्णपट

खोलते गये। गाँव-गाँव में लोगों की भक्ति गुरुदेव के प्रति उल्लसित होती थी और विहार में आनेवाले बड़े-बड़े शहरों में अत्यन्त भव्य स्वागत होता था। गुरुदेव का प्रभावना-उदय देखकर, जिस काल तीर्थंकरदेव विचरते होंगे, उस धर्मकाल में धर्म का, भक्ति का, अध्यात्म का कैसा वातावरण फैल जाता होगा, उसका तादृश चित्रण कल्पनाचक्षु के समक्ष खड़ा होता था।

भारतवर्ष का गौरव : कानजीस्वामी

हजारों धर्मपिपासु जीवों की तृषा शान्त कर सके, ऐसी अद्‌भुत शक्ति के धारक पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी भारतवर्ष की महान प्रतिभाशाली विभूति है, उनके परिचय में आनेवालों पर उनके प्रतिभायुक्त व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वे अनेक सद्‌गुणों से अलंकृत हैं। उनकी कुशाग्रबुद्धि प्रत्येक वस्तु के हार्द में उतर जाती है। उनकी स्मरणशक्ति वर्षों पहले की बात को तिथि-वार सहित याद रख सकती है। उनका हृदय वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल है। वे अवगुण के समक्ष अनमित होने पर भी सहज गुण देखते ही नम पड़ते हैं। बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एक अध्यात्ममस्त आत्मानुभवी पुरुष हैं। अध्यात्ममस्ती उनकी रग-रग में व्याप्त है। आत्मानुभव उनके प्रत्येक शब्द में झलकता है। उनके हरएक श्वास में 'वीतराग! वीतराग!' की ध्वनि उठती है। कानजीस्वामी भारतवर्ष के अद्वितीय रत्न हैं। भारतवर्ष कानजीस्वामी से गौरवान्वित है।

(—पूज्य गुरुदेव के अभिनन्दन ग्रन्थ में से)

उस देश को भी धन्य है

तब पादपंकज जहँ पड़े उस देश को भी धन्य है।
उन ग्राम-पुर को धन्य है, तब मात कुल भी वंद्य है॥
तेरे किये दर्शन अरे! वे लोग भी कृतपुण्य हैं।
तब चरण से स्पर्शित हुई जो धूलि वह भी धन्य है॥

तेरी मति, तेरी गति, चारित्र्य लोकातीत है।
आदर्श साधक तू हुआ, वैराग्य वचनातीत है॥
वैराग्यमूर्ति, शान्तमुद्रा, ज्ञान का अवतार तू।
ओ देव के देवेन्द्र प्यारे! गुणकथन तब क्या करूं॥

अध्यात्म की वार्ता करे, अध्यात्म की दृष्टि धरे।
निज देह-अणुअणु में अहो! अध्यात्मरस अमृत भरे॥
अध्यात्म में तद्रूप बन अध्यात्म को फैला रहे।
काया तथा वाणी-हृदय अध्यात्म में रेला रहे॥

जहँ जहँ तुम्हारी दृष्टि वहाँ आनन्द के झरने बहे।
छाया प्रसरती शान्ति की, तू शान्तमूर्ते! जहँ रहे॥
अध्यात्ममूर्ति, शान्तमुद्रा, ज्ञान का अवतार तू।
ओ कहानदेव देवेन्द्र प्यारे! गुणकथन तब क्या करूँ॥

सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति की
विधि और पुरुषार्थ

[निज कल्याण के लिये प्रयत्न करनेवाले जिज्ञासुओं को सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति का स्वरूप उसे प्राप्त करने की सत्य विधि और उसके लिये सम्यक् पुरुषार्थ कैसा होता है—यह समझने की भावना होती है। उन विषयों का तलस्पर्शी सुन्दर निरूपण पूज्य गुरुदेव ने समयसार की 144वीं गाथा पर वि.सं. 2000 में दिये हुए प्रवचनों में किया है। मुमुक्षुओं को उसके अध्ययन से सम्यग्दर्शन और स्वानुभूति की विधि और पुरुषार्थ सम्बन्धी मार्गदर्शन मिले इस हेतु से वे प्रवचन यहाँ देने में आये हैं।]

पक्षातिक्रान्त ही समयसार है—ऐसा नियम से सिद्ध होता है—ऐसा अब कहते हैं:—

सम्मद्दंसणणाणं एसो लहदि त्ति णवरि ववदेसं।
सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो।।१४४।।
सम्यक्त्व और सुज्ञान की, जिस एक को संज्ञा मिले।
नयपक्ष सकल विहीन भाषित, वह 'समय का सार' है।।१४४।।

अर्थ:—जो सर्व नयपक्षों से रहित कहा गया है, वह समयसार है; इसी को (समयसार को ही) केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान—ऐसी संज्ञा (नाम) मिलती है। (नाम पृथक् होने पर भी वस्तु एक ही है।)

यह गाथा बहुत उच्च है। यह गाथा तो कर्ताकर्म की बहुत-बहुत बात करते-करते और पर के और रागादिक के साथ कर्ताकर्म भाव को छोड़ना कहते-कहते आयी है परन्तु लोग कहते हैं कि हमें यह समझ में नहीं आता इसलिए दूसरा कुछ करने के लिए कहो। परन्तु भाई! पाप करना तो कोई कहता ही नहीं, अशुभ भाव की अपेक्षा शुभभावों में रुके वह ठीक है, परन्तु

प्रथम स्वभाव को समझना चाहिए; क्योंकि स्वभाव के भान द्वारा विकार का अन्त आता है। शुभभाव विकार है, विकार से स्वभाव समझ में नहीं आता किन्तु ज्ञान द्वारा समझ में आता है। शुभभाव से पुण्यबन्ध होता है परन्तु भव का अन्त नहीं आता। शरीर की क्रिया मैं कर सकता हूँ, विकार की क्रिया मैं कर सकता हूँ—वह बात तो दूर रही, परन्तु यह तो आँगन में आकर मैं शुद्ध हूँ और मैं शुद्ध नहीं हूँ—ऐसे दो पक्षों के राग में रुकेगा वहाँ तक विकार दूर नहीं होगा और जिसमें राग बिल्कुल नहीं है, उसको ग्रहण किये बिना निर्विकल्प स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी; सहज स्वभाव की प्राप्ति के बिना वीतराग नहीं होगा और वीतरागता के बिना मुक्ति नहीं होगी। प्रथम सहज ज्ञान स्वरूप का निर्णय करने के लिये मैं बद्ध हूँ और मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विचार आते अवश्य हैं, निर्णय करने के लिए विचारों का मंथन आता अवश्य है, और वैसा करने से वह प्रतीति हो वह तो ज्ञान की पर्याय है परन्तु साथ में जो राग है, वह विकार है। अपूर्ण ज्ञान में विचार होता है और विचार के साथ राग होता है; इसलिए उस अपूर्ण ज्ञान की पर्याय जितना आत्मा का अखण्ड स्वरूप नहीं है; आत्मा तो परिपूर्ण ज्ञानसामर्थ्य से भरपूर है; वर्तमान समय में ही अपार सामर्थ्य से परिपूर्ण—ऐसे आत्मा पर लक्ष्य करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। आत्मा की परिपूर्ण दृष्टि में अपूर्ण पर्याय आदरणीय नहीं है। स्वरूप में स्थिर होने से रागमिश्रित विचार छूट जाते हैं; जब तक राग मिश्रित विचारों में रुकता है, तब तक स्वरूप का स्वाद नहीं ले सकता। साधक-दशा में रागमिश्रित विचार आते अवश्य हैं, परन्तु स्वरूप का अनुभव करते समय वे विचार छूट जाते हैं। अशुभ परिणामों से बचने के लिये रागमिश्रित शुभ विचारों में रुकता अवश्य है, परन्तु स्वरूप के अनुभव के समय वे विचार भी छूट जाते हैं।

कोई कहेगा कि हमें सच्चा वस्तु स्वरूप समझने का क्या काम है ? हम तो व्यवहार-शुभभाव करते रहेंगे। परन्तु भाई! शुभभावों से पुण्य होगा-संयोग मिलेंगे परन्तु वे संयोग और शुभभाव तो अजागृत भाव हैं, वे मरण के समय जागृति किस प्रकार रखायेंगे ?

मरते समय कुछ भी भान नहीं रहेगा, असाध्य हो जायेगा। नित्य जागृत स्वभाव का भान नहीं है, शुद्ध धर्म की खबर नहीं है—उसका फल तो मूढ़ता ही आयेगा न ? शुभाशुभ भाव करे उसके फल में संयोग मिलते हैं अर्थात् बाह्य संयोग मिलते हैं, परन्तु उसके फल में आत्मा की जागृति नहीं मिलती; क्योंकि शुभभाव तो विकार है, और विकार का फल संयोग मिलता है, परन्तु यदि आत्मा के शुद्ध स्वभाव का भान किया हो तो आत्मा में से आत्मा की जागृति रहे। सारे जीवनभर शुभभाव किये हों परन्तु मरण समय असाध्य हो जाता है क्योंकि देह से आत्मा को पृथक् स्वीकार नहीं किया है, देहाध्यास नहीं तोड़ा है, शुभराग करने योग्य मानता है शुभाशुभ परिणामों से भिन्न आत्मा को स्वीकार नहीं किया है, पर के साथ एकत्वबुद्धि है इससे मूढ़ हो जाता है। पर से भिन्न आत्मा का यदि भान हो तो पर से पृथक् रहकर आत्मा की जागृति रख सकता है। जिसे भिन्न चिदानन्द आत्मा का भान नहीं है, वह जीवित होते हुए भी असाध्य है और मरते समय भी असाध्य हो जाता है। मैं चिदानन्द आत्मा ज्ञानस्वभावी हूँ, मैं शरीररूप नहीं हूँ, वचनरूप, मनरूप, शुभाशुभ विकाररूप मैं नहीं हूँ—ऐसा पृथक् आत्मा का जिन्हें भान नहीं है, वे सब असाध्य हैं। इसलिए आचार्यदेव कहते हैं कि—यह जो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहलाता है—उसका भान कर, उसे प्रगट कर! और वे कहते हैं कि जो सर्व नयपक्षों से रहित कहा गया है, वही समयसार है, और इसी समयसार को

केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। नाम भिन्न हैं तथापि वस्तु एक है।

आत्मा पर से भिन्न, शुद्ध-पवित्र, ज्ञानमूर्ति है—ऐसा निर्णय करके उसमें स्थिर हुआ उसी को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। नाम भिन्न हैं तथापि वस्तु एक ही है। मैं शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ—वैसे पक्षों में लगा रहे, तथापि उन पक्षों के छूट जाने से, अनन्त गुण-पर्याय की मूर्ति चैतन्य स्वरूप में स्थिर होने से मात्र अकेला आत्मा रह जाये वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

जो वास्तव में समस्त नयपक्षों द्वारा खण्डित न होने से जिसका समस्त विकल्पों का व्यापार रुक गया है-ऐसा है—वह समयसार है। वास्तव में इस एक को ही केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का नाम मिलता है। (सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान समयसार से भिन्न नहीं—एक ही हैं।)

जो समस्त नयपक्षों द्वारा खण्डित होता था—मैं शुद्ध हूँ, मैं एक हूँ; और गुण से तथा पर्याय से अनेक भी हूँ—ऐसे विकल्पों से खण्डित होता था, राग मिश्रित पक्ष से स्वरूप का भंग हो जाता था—वह जब समस्त नयपक्षों के विकल्पों को पुरुषार्थ से रोक देने से खण्डित नहीं हुआ—तब अखण्डित हुआ। समस्त विकल्पों का व्यापार रुक गया है और अपने अखण्डित स्वरूप का अनुभव करता है वही समयसार है, वही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है; सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, समयसार से पृथक् नहीं हैं।

यह केवलज्ञानी की बात नहीं परन्तु चौथे गुणस्थान की बात है, सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी की बात है।

राग के विकल्प से खण्डित होता था वह स्वरूप का निर्णय करके

स्वरूप में स्थित हुआ–वहाँ जो खण्ड होता था वह रुक गया और मात्र आत्मा अनन्त गुणों से भरपूर आनन्द स्वरूप रह गया। मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ; मैं बद्ध हूँ और मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्पों से छूट गया और अकेला आत्मतत्त्व रह गया—उसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है, और वही समयसार है। समयसार यह पृष्ठ नहीं है, अक्षर नहीं हैं; यह पन्ने तो जड़ हैं। आत्मा के आनन्द में लीनता वह ही समयसार है। स्वरूप का बराबर निर्णय करके विकल्प दूट जायें, पश्चात् अनन्त गुण सामर्थ्य से भरपूर मात्र आत्मतत्त्व रहा वही समयसार है।

कोई कहेगा कि यह तो आप परमात्मा की बात करते हो; केवलज्ञानी की बात करते हो। परन्तु भाई! यह तो एक अंश की बात है, मात्र बानगी की बात है, अभी पूरा करना तो शेष रहा है, इससे अनन्त गुना पुरुषार्थ शेष रहा है। अभी पूर्ण स्थिरता प्रगट नहीं हुई है, पूर्ण वीतरागरूप स्थिरता तो आंशिक स्थिरता में वृद्धि करते-करते होती है। यह तो मात्र अंश प्रगट हुआ है, अभी श्रावकत्व की स्थिरता, मुनित्व की स्थिरता, केवलज्ञान की स्थिरता–वह सब शेष हैं। यह तो मात्र चौथी भूमिका की बात है। ऐसा निर्विकल्प अनुभव होने के पश्चात् राजपाट करे, गृहस्थाश्रम में हो तथापि पर से निराले आत्मा का भान उसके वर्तता रहता है, इससे वह ज्ञाता रहता है; इसलिए वह आत्मा में रहा है परन्तु गृहस्थाश्रम में नहीं रहा है। निर्विकल्प अनुभव सदैव नहीं रहता, अन्तर्मुहूर्त रहता है; पश्चात् राज्य, व्यापारादि विकल्प उठते हैं परन्तु उनका वह कर्ता नहीं होता, स्वरूप का पृथक् भान रहता है। व्यापार, धन्धा, राजपाट करते समय भी किसी-किसी समय स्वरूप में उपयोग स्थिर भी होता है परन्तु चौथा गुणस्थान है इसलिए विशेष स्थिरता नहीं होती।

स्वयं जाति से वणिक हो, परन्तु जब बालक हो तब किसान के भी यहाँ जाये और वह खाने-पीने को दे तो खाता-पीता है, क्योंकि उसे खबर नहीं होती कि मैं वणिक हूँ। और जब बड़ा हुआ तब खबर हुई कि मैं वणिक हूँ, मुझे किसान के यहाँ नहीं खाना-पीना चाहिए; वह पानी पीने से अपवित्र हो जाऊँगा—ऐसा बड़े होने पर ध्यान आता है और वृद्ध होने पर तो सभी प्रकार का बाह्य का बहुत ध्यान आ जाता है। उसी प्रकार अनादि अज्ञान से मैं कौन हूँ और पर कौन है—इसकी खबर न होने से पर का अभिमान करता है; पर मेरा है और मैं पर का हूँ, पर मेरा कर सकता है और मैं पर का कर सकता हूँ—इस प्रकार बाल भाव से अज्ञान का भोजन-पान करता है, परन्तु जहाँ भान हुआ कि मैं पर से निराला, निर्विकल्प चैतन्यज्योति आत्मा हूँ, मैं पर का कुछ नहीं कर सकता और न पर मेरा ही कुछ कर सकता है—ऐसा भान हुआ कि वहाँ जवान हुआ—वह जवानी की चाल है। यह चौथी भूमिका की बात है, सम्यग्दर्शन की बात है, यह आत्म जागृति की बात है; अभी स्थिरता शेष है, अंशतः स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु अभी पाँचवीं और छठवीं-सातवीं भूमिका की स्थिरता प्रगट नहीं हुई है अर्थात् अभी चारित्र प्रगट नहीं हुआ है, क्रमानुसार पाँचवीं-छठवीं-सातवीं भूमिका की स्थिरता प्रगट करके आगे बढ़कर वीतराग हो—केवलज्ञान प्रगट करे वह वृद्धपना है। इस १४४वीं गाथा में तो सम्यग्दर्शन की बात है, आत्मा के अनुभव की बात है, पूर्ण स्थिरता की बात नहीं है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिये—आत्मा का अनुभव करने के लिये प्रथम क्या करना चाहिये वह आचार्यदेव कहते हैं। प्रथम श्रुतज्ञान के अवलम्बन से ज्ञानस्वभाव आत्मा का निर्णय करना चाहिए।

प्रथम क्या करना चाहिए वह आचार्यदेव ने कहा है। प्रत्येक जीव सुख की इच्छा करता है, किन्तु पूर्ण सुख किसने प्रगट किया है? वैसा पूर्ण पुरुष कौन है? उसकी पहिचान करना चाहिए, और उस पूर्ण पुरुष ने सुख का स्वरूप क्या कहा है—उसे जानना चाहिए। उस सर्वज्ञ पुरुष के कहे हुए वाक्य—वह आगम है। इसलिए प्रथम आगम में सुख का स्वरूप क्या कहा है उसे जानकर उसका अवलम्बन करके, ज्ञानस्वभाव आत्मा का निर्णय करना चाहिए; निर्णय है वह पात्रता है और आत्मा का अनुभव उसका फल है। इस गाथा में पात्रता और उसका फल—दोनों बताये हैं। ऐसा निर्णय करने की जहाँ रुचि हुई वहाँ अन्तर में कषाय का रस मन्द पड़ ही जाता है। तत्त्व विचार द्वारा कषाय का रस मन्द पड़े बिना इस निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता। प्रथम श्रुतज्ञान का अवलम्बन करना—ऐसा कहकर आचार्यदेव ने सच्चा आगम क्या है? उसका कहनेवाला पुरुष कौन है? इत्यादि सभी निर्णय करने को कह दिया है; सच्चे देव-गुरु-शास्त्र कौन हैं? उन सबका निर्णय आ जाता है। ज्ञानस्वरूप आत्मा का निर्णय करने में सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करना आदि सब एक साथ आ जाता है।

प्रथम श्रुतज्ञान का अवलम्बन करना कहकर आचार्यदेव ने उसमें बहुत-बहुत समाविष्ट किया है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और मिथ्या देव-गुरु-शास्त्र को पहिचानकर उनका निर्णय करना कि यह सच्चे हैं और यह मिथ्या हैं। जिस आगम में एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी कर सकता है—ऐसा कहा हो वह आगम सच्चा नहीं कहलाता, उसे कहनेवाला गुरु भी सच्चा नहीं है, ऐसा बतानेवाला देव भी सच्चा नहीं है; लेकिन दोनों तत्त्व भिन्न हैं, प्रत्येक तत्त्व स्वाधीन है, कोई तत्त्व किसी तत्त्व के आधार से नहीं है, कोई तत्त्व किसी

तत्त्व का कुछ भी करे तो तत्त्व पराधीन हो जाये परन्तु ऐसा तो बनता नहीं है। प्रत्येक तत्त्व स्वाधीन है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व का कुछ नहीं कर सकता—ऐसा वस्तु का स्वरूप बतानेवाला देव भी सच्चा है, गुरु भी सच्चा है और शास्त्र भी सच्चा है—ऐसी पहचान करके देव-गुरु-शास्त्र कथित जो आत्मा का स्वरूप है उसका विचार करके अपने द्वारा, श्रुतज्ञान के अवलम्बन द्वारा ज्ञानस्वभाव आत्मा का निश्चय करना चाहिए। वह निश्चय ऐसा अपूर्व करना कि जिस निश्चय के फल में आत्मा का अनुभव हो, केवलज्ञान हो केवलदर्शन हो और अनन्त गुण प्रगट हों। आगम द्वारा, सद्गुरु द्वारा निर्णय करना उस निर्णय करने में राग का अंशतः अभाव होकर निर्णय होता है, परन्तु निर्णय के समय बुद्धिपूर्वक के सर्व विकल्प नहीं छूट जाते, स्वभाव में स्थिर नहीं हो जाता, परन्तु जब निर्णय करता है, उस समय भी आत्मा से आत्मा का निर्णय करता है। मन और राग की गौणता करता है; आत्मा को अधिक करता है और राग को गौण करता है—अर्थात् अंशतः राग से मुक्त होकर स्वतः अधिक होकर आत्मा से आत्मा का निर्णय करता है। परन्तु जब स्वरूप में स्थिर हो जाता है, तब बुद्धिपूर्वक के विकल्प छूट जाते हैं—बुद्धिपूर्वक का मन का निमित्त छूट जाता है, और चिद्रूप-चिदानन्द में उपयोग लीन होता है।

जो आगम आत्मा का ज्ञानलक्षण न बताये किन्तु विकारलक्षण बताये, पराधीनलक्षण बताये-वह आगम मिथ्या है; निमित्त ही उपादान है—ऐसा बताये वह आगम मिथ्या है। यदि निमित्त कार्य कर देता हो तो निमित्त निमित्तरूप नहीं रहा परन्तु उपादान हो गया; निमित्त मात्र उपस्थितिरूप हो तो निमित्त निमित्त कहलाये। यदि निमित्त, उपादान का कार्य कर देता हो तो वह (निमित्त) उपादान हो गया, परन्तु निमित्तरूप नहीं रहा। सूर्य कमल को नहीं

खिला देता, परन्तु जब कमल खिले तब सूर्य की उपस्थिति होती ही है—ऐसा सम्बन्ध है। जो शास्त्र आत्मा का स्वाधीन लक्षण बताये वह शास्त्र सच्चा है, वह स्वाधीन स्वरूप बतानेवाला देव भी सच्चा है और वैसा स्वाधीन स्वरूप बतानेवाला गुरु भी सच्चा है।

आचार्यदेव कहते हैं कि प्रथम श्रुतज्ञान का अवलम्बन लेना, श्रवण करना–मनन करना और सत्समागम करना। आगम के आधार से ज्ञानस्वभाव आत्मा का निश्चय करना। जीवों को रुचि नहीं है, यदि रुचि हो तो पुरुषार्थ किये बिना नहीं रहें। अरे भाई! आत्मा की रुचि कर! मरण समय कौन शरण होगा? भेड़–बकरी की तरह मरण हो वह कहीं मरण कहलाता है? लखपति या करोड़पति हो, सैंकड़ों आदमी पास खड़े हों फिर भी मर जाता है, वहाँ कौन शरण है? घोर वेदना में असाध्य होकर मर जाता है उसमय कौन शरण है? यदि आत्मा की जागृति की होगी तो वह साथ आयेगा। प्रथम आत्मा की सच्ची जिज्ञासा करे, सत्य कहाँ है उसे खोजे, सच्चा देव कौन है? सच्चा गुरु कौन है? सच्चा शास्त्र कौन है? उन्हें शोधे, और वे जो बता रहे हैं उसका निर्णय करने के लिये समय निकाले, फिर निर्णय करे कि मैं पर से निराला, स्व–पर का ज्ञाता, अनन्त गुण मूर्ति आत्मा हूँ। यह राग–द्वेष मेरा स्वभाव नहीं है, पर का अच्छा–बुरा करना मेरा स्वभाव नहीं है, पर का कर्ता होना मेरा स्वभाव नहीं है, पर का स्वामित्व रखना मेरा स्वभाव नहीं है; मैं तो 'ज्ञान स्वभावी आत्मा हूँ'; स्व–पर का ज्ञायक हूँ, किन्तु किसी भी प्रकार पर का कर्ता नहीं हूँ—ऐसा निर्णय प्रथम श्रुतज्ञान से करना चाहिए।

प्रथम सच्चा निर्णय किये बिना निर्विकल्प अनुभव नहीं होता। सत् स्वरूप प्रगट करने में सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का निमित्त आया। सच्चे

पुरुषार्थ से सच्चे निर्णय का निमित्त भी आया, वह अन्तर का निमित्त हुआ; सच्चा निर्णय कारण हुआ और पश्चात् अनुभव आया। सच्चा निश्चय करने के पश्चात् भी आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि के लिये, आत्मा की शान्ति और आनन्द के वेदन के लिए अन्तरोन्मुख किस प्रकार होता है—वह आचार्यदेव कहते हैं। इस टीका का भाव बहुत ऊँचा है। जब आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि करना हो तब पर की प्रसिद्धि छोड़ना चाहिए। आत्मा के अनुभव के उपभोग के लिए सच्चा निर्णय करने के पश्चात् स्वोन्मुख किस प्रकार होता है—वह आचार्यदेव कहते हैं।

सच्चा निश्चय करने के पश्चात्, आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि के लिए, पर प्रसिद्धि के कारण जो इन्द्रिय द्वारा और मन द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियाँ हैं, उन्हें मर्यादा में लाकर जिसने मतिज्ञान-तत्त्व को (मतिज्ञान के स्वरूप को) आत्मसम्मुख किया है—ऐसा, तथा नाना प्रकार के नयपक्षों के आलम्बन से होनेवाले अनेक विकल्पों द्वारा आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुतज्ञान की बुद्धियों को भी मर्यादा में लाकर श्रुतज्ञान तत्त्व को भी आत्मसम्मुख करता हुआ, अत्यन्त विकल्प रहित होकर, तत्काल निजरस से ही प्रगट होनेवाला, आदि-मध्य-अन्त रहित, अनाकुल, केवल, एक सम्पूर्ण विश्व के ऊपर मानों तैरता हो—उस प्रकार के अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसार का जब आत्मा अनुभवन करता है, उसी समय वह सम्यक्रूप दिखायी देता है (श्रद्धा में आता है) और ज्ञात होता है; इससे समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

आत्मा आनन्दमूर्ति-आनन्द का रसकन्द है, इन्द्रियाँ और मन द्वारा प्रवर्तमान बुद्धि-वह पर की प्रसिद्धि का कारण है-पर की प्रसिद्धि करनेवाले

हैं; इन्द्रिय और मन द्वारा प्रवर्तित जो बुद्धि है, वह पर के ऊपर लक्ष्य करनेवाली है; पर लक्ष्य में स्त्री, कुटुम्ब, देव, गुरु, शास्त्र—सब आ जाते हैं, वह सब पर की प्रसिद्धि है। पाँचों इन्द्रियों और मन की ओर प्रवर्तित जो बुद्धि है, उसे पर लक्ष्य में जाने से रोके और आनन्द सागर आत्मा की ओर उन्मुख करे वह आत्मारूपी आनन्द के हिमालय में प्रविष्ट होने की सीढ़ियों पर चढ़ रहा है।

परपदार्थों की प्रसिद्धि के कारण इन्द्रियाँ और मन हैं, उनसे प्रवर्तित जो बुद्धि है, उसे स्वोन्मुख करके मतिज्ञान को अर्थात् मतिज्ञान के व्यापार को आत्मसन्मुख किया है। कैसी अद्भुत सरस बात ली है! किसी बलवान योग में अद्भुत शैली से अद्भुत गाथा की रचना हुई है कितना उत्तम सिद्धान्त दिया है! कि मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ—ऐसा निश्चय करके प्रगट पर्याय में आनन्द लाने के लिये, पर की ओर—पाँच इन्द्रियों और मन की ओर झुकते हुए भाव को स्वभावोन्मुख किया है। उपयोग परोन्मुख होता है, उसे स्वोन्मुख कर लेना;—इस प्रकार मतिज्ञान के व्यापार को आत्मसन्मुख किया।

उपयोग मन और इन्द्रिय की ओर युक्त हो तब मन दिखायी नहीं देता, परन्तु उस समय बाह्य पदार्थ लक्ष्य में आते हैं, इससे समझ लेना चाहिए कि अभी उपयोग की लीनता पर की ओर है; मतिज्ञान के व्यापार का योग पर की ओर से छूटकर आत्मस्वभाव में हो तब आत्मस्वभाव लक्ष्य में आता है। मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ—ऐसा निर्णय करके उपयोग पर की ओर से छूटकर स्वभावोन्मुख होता है और आत्मा में लीन होता है, तब आत्मा का अनुभव होता है।

अब, श्रुतज्ञान को आत्मसन्मुख करते हैं। अनेक प्रकार के नयपक्ष के

अवलम्बन से होनेवाले अनेक प्रकार के विकल्प, जो कि—बद्ध, अबद्ध, शुद्ध, अशुद्ध, एक, अनेक इत्यादि नयपक्ष हैं, जो आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हैं, उनमें प्रवर्तित जो ज्ञान का व्यापार है, उसे रोककर श्रुतज्ञान के व्यापार को स्वोन्मुख करता है। यहाँ आत्मा के आनन्द की बात लेना है, इससे आकुलता को उत्पन्न करनेवाले नयपक्ष—ऐसा कहा है। मतिज्ञान का व्यापार पर की ओर भी सामान्य है और स्व की ओर भी श्रुतज्ञान की अपेक्षा से सामान्य है; श्रुतज्ञान के व्यापार में अनेक तर्कणायें होती हैं—इससे यदि श्रुतज्ञान का व्यापार पर की ओर जाये तो विकल्प के भंग-भेद आते हैं, शुद्ध, अशुद्ध, बद्ध, अबद्ध, इत्यादि नयपक्ष के विकल्प होते हैं और वे आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हैं; और उस श्रुतज्ञान का व्यापार यदि अन्तरस्वभावोन्मुख हो तो विकल्पतरंग टूटकर आनन्दतरंग उठती है, शान्ति के झरने झरते हैं, समाधि का स्वाद आता है।

मैं आत्मा शुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ, बद्ध हूँ, मुक्त हूँ, नित्य हूँ, अनित्य हूँ, एक हूँ, अनेक हूँ—वैसी राग की वृत्ति भी दुःखदायक है, आकुलतारूप है—वैसे अनेक प्रकार के श्रुतज्ञान के भावों को मर्यादा में लाकर, मैं ऐसा हूँ और वैसा हूँ—वैसे विचारों को पुरुषार्थ द्वारा रोककर, परोन्मुख होते उपयोग को स्वोन्मुख करके, नयपक्ष के राग के भंग को आत्मा के स्वभाव रस के भान द्वारा दूर करके, श्रुतज्ञान को भी आत्मसन्मुख करता है उस समय अत्यन्त विकल्प रहित होकर तत्काल निजरस से प्रगट होनेवाले आदि-मध्य-अन्त रहित आत्मा के परम आनन्द अमृतरस का वेदन करता है। आदि-मध्य-अन्त रहित अर्थात् आत्मा का प्रारम्भ नहीं है इससे अन्त भी नहीं है; तब फिर जिसे

प्रारम्भ और अन्त न हो उसका मध्य क्या होगा? आत्मा अनादि से वही का वही है, अखण्डानन्द, अनन्त गुणों का पिण्ड, आदि-मध्य-अन्त रहित आत्मवस्तु है।

प्रथम, आत्मा का यथार्थ निर्णय करके पश्चात् पर प्रसिद्धि का जो कारण है—ऐसी इन्द्रिय और मन द्वारा प्रवर्तती बुद्धि; उसे मर्यादा में लाता है। पश्चात् उस मतिज्ञान के व्यापाररूप बुद्धि को अर्थात् मतिज्ञान के व्यापार को आत्मसन्मुख करता है और अनेक प्रकार के नयपक्ष के अवलम्बन से—अनेक प्रकार के विकल्पों से आकुलता उत्पन्न होती है—ऐसी श्रुतज्ञान की बुद्धि को भी मर्यादा में लाकर श्रुतज्ञान को भी आत्म-सन्मुख करता है। इस प्रकार दोनों ज्ञान के व्यापार को आत्मसन्मुख करके अत्यन्त विकल्परहित होता है। उसी क्षण आत्मस्वभाव निजरस से प्रगट होता है, आदि-मध्य और अन्त रहित आत्मा का अनुभव करता है, अनाकुल-निराकुल आनन्दरूप आत्मा का अनुभव करता है, विकल्पों की अनेकता छूट जाने से केवल एकरूप, सम्पूर्ण विश्व के ऊपर मानों तैरता हो—ऐसा आत्मा का अनुभव करता है। तैरता अर्थात् विश्व के ऊपर मानो अलग-असंग होकर तैरता हो ऐसा अखण्ड प्रतिभासमय आत्मा का अनुभव करता है। विकल्प में रुकता था वहाँ खण्ड पड़ता था, वह छूट जाने से अखण्ड प्रतिभासमय आत्मा का अनुभव करता है। अनन्त गुणों की पर्यायें जिसमें एक साथ उछल रही हैं—ऐसे अनन्त गुणस्वरूप आत्मा का अनुभव करता है, विज्ञानघन-स्वभाव आत्मा का अनुभव करता है। विकल्प की ओर ज्ञान जुड़ता था तब अस्थिर होता था, अब ज्ञान जम गया। जिसमें विकल्प प्रविष्ट नहीं हो सकता—ऐसे निबिड ज्ञानरूप अर्थात् विज्ञानघनरूप आत्मा का अनुभव करता है। ऐसे

परमात्मारूप समयसार का आत्मा जब अनुभव करता है, उसी समय आत्मा सम्यक्त्वरूप दिखायी देता है (श्रद्धा में आता है)। वह समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। वही भगवान के दर्शन हैं वही ईश्वर के दर्शन हैं—वही परमात्मा के दर्शन हैं। उसी समय आत्मा के यथार्थ दर्शन होते हैं और यथार्थ श्रद्धा में आता है।

अनन्त गुण-पर्याय से परिपूर्ण जो तत्त्व है उसे अपूर्ण विकारी और पूर्ण पर्याय की अपेक्षा के बिना लक्ष्य में लेना वह द्रव्यदृष्टि है, वही यथार्थदृष्टि है। उस दृष्टिपूर्वक मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के व्यापार को आत्मसन्मुख किया वह व्यवहार है, प्रयत्न करना वह व्यवहार है, स्वोन्मुख होना वह व्यवहार है। इन्द्रियाँ और मन की ओर रुकनेवाला ज्ञान, अल्प विकसित ज्ञान; उस ज्ञान के व्यापार को स्वोन्मुख करना वह व्यवहार है। सहज शुद्धपारिणामिकस्वभाव एकरूप है। परिपूर्ण तत्त्व में साध्य साधक के भंग नहीं पड़ते। तत्त्व यदि अपूर्ण हो तो साध्य साधक के भंग पड़ते हैं, परन्तु तत्त्व तो परिपूर्ण है, तथापि पर्याय में अपूर्णता है। विकार है इसलिए प्रयास करना रहता है, साधक अवस्था रहती है। पर्यायदृष्टि से साध्य-साधक के भी भंग पड़ते हैं। परिपूर्ण तत्त्वदृष्टि होने पर भी पर्याय में अपूर्णता होने से बीच में साधक अवस्था आये बिना नहीं रहती। पर्यायदृष्टि से अपूर्णता है, विकार है; उसे तत्त्व दृष्टि के बलपूर्वक दूर करके निर्मल करता है और अनुक्रम से पूर्ण निर्मलता प्रगट करता है। यथार्थदृष्टि होने के पश्चात् साधक अवस्था बीच में आये बिना नहीं रहती। आत्मा का भान करके स्वभाव में एकाग्र होता है, तभी परमात्मारूप समयसार का अनुभव करता है, आत्मा के अपूर्व आनन्द का अनुभव करता है, आनन्द के झरने झरते हैं।

कोई कहे कि—ऐसा आनन्द हो तो बाहर से उछल पड़े न? अरे भाई! यह कहीं संसार के हर्ष की बात नहीं है। यह तो अकषाय, निराकुल आनन्द की बात है। हर्ष करना तो आकुलता है। यह तो सहज आनन्द की बात है, आत्मा के सहज आत्मस्वभाव की बात है। आनन्द की बात आये वहाँ लोगों को ऐसा लगता है कि कुछ बाहर से उछलना तो चाहिए न? परन्तु अरे भाई! आनन्द का वेदन करता हूँ—ऐसा विकल्प भी राग है, आकुलता है। आनन्द का तो सहज वेदन होता है और जागृत स्वरूप ज्ञान में ज्ञात होता है। जागृत आत्मा उसे जानता है—उसका वेदन करता है। आत्मा का सुख अन्तर में है; वह बाह्य में रूपी पदार्थ में, इन्द्रियों में, या शरीर में नहीं उछल पड़ता। आत्मा के आनन्द का वेदन आत्मा में होता है, बाहर उछलकर नहीं आता।

आत्मा ज्ञानघन है; जब तक उसका निश्चय न हो तब तक श्रुतज्ञान का अभ्यास करना, और निश्चय होने के पश्चात् एकाग्रता का अभ्यास करना—इस प्रकार प्रबल प्रयत्न करने से परमात्मारूप समयसार के दर्शन होते हैं।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करके, आत्मा क्या है उसका निर्णय करना चाहिए। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के पर्याय के भेद जितना आत्मा नहीं है, परन्तु सामान्य ज्ञानमात्र—अखण्ड ज्ञानमात्र आत्मा है। ज्ञातारूप से जानना ही आत्मा का स्वरूप है, पर का कुछ भी करना आत्मा का स्वरूप ही नहीं है। जिसने पर का कर्तृत्व स्वीकार किया है उसने आत्मस्वभाव का सच्चा निर्णय नहीं किया है। पर का अकर्ता, स्वभाव का कर्ता, स्व-पर ज्ञायक—ऐसे आत्मा का यथार्थ निर्णय करने के पश्चात् आगे बढ़ा जा सकता है। देव को जाने, गुरु को जाने, धर्म को जाने, पुण्य-पाप के भावों को जाने, नव तत्त्वों में

से अकेले पृथक् आत्मा को जो जाने उसने आत्मा का सच्चा निश्चय किया है। ऐसा निश्चय करने के पश्चात् प्रगट अनुभव करने के लिये इन्द्रियों और मन में प्रवर्तमान बुद्धि को मर्यादा में लाकर फिर आत्मसन्मुख करना चाहिए। खेद इत्यादि के दो भाव होते हों, उन्हें प्रथम मर्यादा में लाये और पश्चात् ज्ञान को आत्मसन्मुख करे। मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं बद्ध हूँ, मैं अबद्ध हूँ—ऐसे विकल्पों को छोड़कर मात्र एक आनन्दमूर्ति आत्मा रह गया, उसका अनुभव करे वह परमात्मा के दर्शन हैं, वही सम्यग्दर्शन है। यह बारहवें गुणस्थान की बात नहीं है। आचार्यदेव ने टीका में 'सम्यग्दृश्यते'—ऐसा शब्द रखा है, इसलिए श्रद्धा की बात है, चौथे गुणस्थान की बात है। जब परमात्मारूप समयसार का आत्मा अनुभव करता है, उसी समय श्रद्धा में आता है। पश्चात् बाह्य में लक्ष्य आये तब विकल्प आते हैं, पर से भिन्न ज्ञायक का भान रहता है, श्रद्धा रहती है परन्तु उपयोग बिल्कुल आत्मा में जमा हुआ नहीं होता। जब आत्मा के स्वभाव में स्थिर होता है, तब परमात्मारूप आत्मा का साक्षात् अनुभव करता है। यह सम्यग्दर्शन आत्मा का है, शुभराग का नहीं-घर, वस्त्रादि का नहीं है। जिसे सच्ची जिज्ञासा जागृत हुई हो और जो पुरुषार्थ करे—वह प्रगट कर सकता है।

जिसे आत्मा का हित करना हो उसे प्रथम आगम का अभ्यास करके आत्मस्वभाव का सच्चा निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञ परमात्मा कौन हैं? उनकी वाणी कैसी है?—उसका निर्णय करना चाहिए। सच्चे गुरु कैसे होते हैं? सच्चे शास्त्र कैसे होते हैं?—उसका निर्णय करना चाहिए और देव-गुरु-शास्त्र द्वारा कहे गये आत्मस्वभाव का निर्णय करना चाहिए। संसार में भी पहले तो परीक्षा ही करते हैं न? चाहे जिस वस्तु को लेने जाये वहाँ परीक्षा

करके माल लेते हैं। उसी प्रकार आत्मस्वभाव का भी यथार्थ निर्णय करना पड़ेगा। आत्मा ज्ञानस्वरूप है—ऐसा कहने में आनन्द, बल, स्थिरता आदि सभी गुण आ जाते हैं। ज्ञानगुण और आत्मा की अर्थात् गुण-गुणी की अभेददृष्टि से देखो तो ज्ञानमात्र आत्मा कहने में समस्त गुण आ जाते हैं।

मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूँ—ऐसा निश्चय करके पश्चात् स्वोन्मुख होता है। पाँच इन्द्रियाँ और मन की ओर जो मतिज्ञान का व्यापार प्रवर्तित होता था, उसे ज्ञानमात्र में मिला देता है। पाँच इन्द्रियाँ और मन जब तक बाह्य में काम करते हैं, तब तक राग है। कान द्वारा शास्त्र के शब्द सुने, आँख द्वारा प्रतिमाजी के दर्शन करे—वह सब इन्द्रियों का विषय है, वह सब राग है। निर्विकल्प अनुभव के समय वह राग छूट जाता है। बाह्य पदार्थों में जो लक्ष्य है उसे छोड़कर आत्मोन्मुख होना, ज्ञान, शब्द, रस, रूप इत्यादि को ज्ञेय करते हुए उसे स्व-ज्ञेयोन्मुख करना, इन्द्रियों से जो बोध होता है—उसे स्वभावोन्मुख करना, इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है, उसे ज्ञानमात्र में मिलाना, अकेले ज्ञान स्वभाव में लीन करना चाहिए। उसी प्रकार श्रुतज्ञान को भी स्वभावसन्मुख करना चाहिए। मैं बद्ध हूँ या अबद्ध हूँ; शुद्ध हूँ या अशुद्ध हूँ—ऐसे विकल्पों में रुकना वह राग है; यह विकल्प मिटाकर श्रुतज्ञान को स्वोन्मुख करना, स्व में लीन होना। स्व में लीन होने से समस्त विकल्प छूट जाते हैं और अखण्ड प्रतिभासमय आत्मा का अनुभव होता है, निर्विकल्प आनन्द का अनुभव होता है। यह धर्म है, धर्म का उपाय है। इसके अतिरिक्त जो व्रत और चारित्र हैं, वे सभी बालव्रत, बालतप और बालचारित्र हैं।

संसार में जीव दुःख का वेदन कर रहे हैं। यदि सुख हो तो परपदार्थ की इच्छा मात्र न हो। यदि आनन्द प्रगट हो तो पर की इच्छा ही न हो; सुख की

इच्छा होती है इसलिए वह दु:खी है। वास्तविक सुख आत्मा में है, उसके प्रगट होने पर दु:ख दूर होते हैं। प्रथम आत्मस्वभाव का निर्णय करके पश्चात् उसमें लीन हो तो आत्मा के अपूर्व आनन्द का अनुभव हो। इसलिए यदि सुख की आवश्यकता हो तो पुरुषार्थ करके, विकल्प तोड़कर आत्मा में लीन होना—उससे अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा। वही सम्यग्दर्शन है, वही सम्यग्ज्ञान है और वही समयसार है। सम्यग्दर्शन गुण (-सम्यक्त्व) आत्मा का ही है इसलिए आत्मा में होता है, बाहर नहीं। सम्यग्दर्शन घर तथा वस्त्रादि में नहीं किन्तु आत्मा में है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। यहाँ सम्यग्दर्शन प्रगट करने का कितना अच्छा उपाय बतलाया है! यही प्रथम उपाय है।

आबाल, युवक या वृद्ध—सभी को करने योग्य तो यही है। सत्य शरण यही है, अन्य कोई शरण नहीं है। मैं ज्ञानस्वभाव हूँ—ऐसा निर्णय करके, उसमें स्थिर होना, स्थिर होकर आत्मा का अनुभव करना ही मोक्ष का उपाय है, दूसरा कोई मोक्ष का उपाय नहीं है। इतनी भक्ति करना या इतनी दया करना-वह मोक्ष का उपाय है—ऐसा आचार्यदेव ने नहीं कहा है; परन्तु सच्ची प्रतीति करके उसमें स्थिर होना, उसे आचार्यदेव ने मोक्ष का उपाय कहा है। सच्चा समझने के पश्चात्, सम्यग्भान होने के पश्चात्, जब तक अपूर्ण है तब तक शुभपरिणाम आयेंगे, वह भक्ति भी करेगा दया, दान, पूजा, भक्ति के परिणाम आयेंगे, परन्तु वह मोक्ष का उपाय नहीं है। बीच में आता अवश्य है, परन्तु वह आगे जाने का मार्ग नहीं है। सच्चे ज्ञान के बिना आत्मा उत्तर नहीं देता। सच्चा स्वरूप समझे बिना भव बन्धन की बेड़ी नहीं टूटती। कदाचित पुण्य परिणाम करेगा तो करोड़ाधिपति के घर में जन्म लेगा; परन्तु उससे क्या

हुआ ? वह सब तो धूल के समान है। उससे कहीं भवबन्धन का अभाव नहीं हुआ। भव बन्धन का अभाव तो सच्चे स्वरूप की प्रतीति करके उसमें स्थिरता करने से ही होता है, और वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है। उसके अतिरिक्त अन्य कोई सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान नहीं है।

अब, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:—

(शार्दूलविक्रीडित)

आक्रामन्नविकल्पभावमचलं पक्षैर्नयानां विना,
सारो यः समयस्य भाति निभृतैरास्वाद्यमानः स्वयम्।
विज्ञानैकरसः स एष भगवान्पुण्यः पुराणः पुमान्,
ज्ञानं दर्शनमप्ययं किमथवा यत्किञ्चनैकोऽप्ययम्।।९३।।

अर्थ:—नयों के पक्षों से रहित, अचल निर्विकल्प भाव को प्राप्त करता जो समय का (आत्मा का) सार प्रकाशित करता है—वह यह समयसार (शुद्ध आत्मा)-जो कि निभृत (निश्चल, आत्मलीन) पुरुषों द्वारा स्वयं आस्वाद्यमान है (स्वाद लिया जाता है, अनुभवन किया जाता है) वह-विज्ञान ही जिसका एक रस है—ऐसा भगवान है, पवित्र पुराण पुरुष है। ज्ञान कहो या दर्शन—वह यही (समयसार) है; अधिक क्या कहा जाये ? जो कुछ है वह यह एक ही है—(मात्र पृथक्-पृथक् नामों से कहा जाता है)।

देखो तो! यह कलश कितना ऊँचा है! कितना सरस है! यह तो अभी निम्नदशा की बात है, धर्म के प्रारम्भवाले की यह बात है, चतुर्थ भूमिकावाले की यह बात है। जिन लोगों ने यथार्थ तत्त्व न सुना हो उन्हें ऐसा लगता है कि यह तो बहुत उच्च कक्षा की बात है; परन्तु भाई! तुझे अपनी महिमा नहीं जमी है, अपना माहात्म्य तुझे नहीं आया है, इससे ऐसा लगता है।

प्रश्नः—अपना माहात्म्य स्वयं करता है या भगवान का ?

उत्तरः—वास्तव में स्वयं अपने स्वभाव का माहात्म्य करता है। भगवान का माहात्म्य करता है—वैसा कहना वह व्यवहार है। शुभराग आता है, इससे सामनेवाले निमित्त पर आरोप करके माहात्म्य करता है, इसलिए ऐसा कहा जाता है कि भगवान का माहात्म्य करता है; परन्तु जिसे आत्मा का माहात्म्य हो उसी को सच्चा भगवान का माहात्म्य आता है। अपने आत्मा का माहात्म्य—महिमा की जिसे प्रतीति हुई है और आत्मा की पूर्णता की तीव्र आकांक्षा जिसे जागृत हुई है—उसी को पूर्ण सर्वज्ञ वीतराग के प्रति सच्ची भक्ति आती है, बहुमान और अन्तर से उत्साह उसी को आता है।

जीवों को अपना माहात्म्य ही नहीं आता; अपना मकान यदि अच्छा बना हो तो उसका माहात्म्य आता है, दूसरों को भी वह मकान माहात्म्य से दिखाता है, घर में कोई अच्छी वस्तु हो तो दूसरों को बतलाता है। अरे भाई! उस धूल के चित्र का तो तुझे माहात्म्य है, परन्तु तेरा चित्र अन्दर कैसा है उसका कुछ माहात्म्य है या नहीं ? अपने चैतन्य भगवान का अपने को जब तक माहात्म्य न आये तब तक किसी प्रकार कल्याण नहीं हो सकता।

यहाँ इस कलश में कहते हैं कि शुद्ध, अशुद्ध, बद्ध, अबद्ध, निर्मल, समल इत्यादि नयों के विकल्प आते हैं, उनसे रहित, अचल, असंख्य प्रदेशी, चैतन्यमूर्ति आनन्दघन आत्मा, निर्विकल्प भाव को प्राप्त होता हुआ जो समय का सार है, उसे प्रकाशित करता है। राग-द्वेष के जो विकल्प हैं, वह आत्मा का सार नहीं है। शुभाशुभ विकल्पों से रहित, आकुलता रहित, निर्विकल्प स्वरूप, अमृत आनन्दमय आत्मा का अनुभवन करना वह समय का सार प्रकाशित होता है। वह समय का सार कैसे पुरुषों द्वारा आस्वाद्यमान है ?

निश्चल, आत्मलीन पुरुषों द्वारा आस्वाद्यमान है, अचंचल पुरुषों द्वारा स्वयं आस्वाद्यमान है, धीर पुरुषों द्वारा वह आस्वाद्यमान है। वह अनुभव किसके वश से होता है? जो स्वरूप में स्थिर हैं और धीर हैं—वैसे पुरुषों के वश से आत्मस्वरूप आस्वाद्यमान है।

जैसे किसी लम्बे सूत में गाँठ लग गयी हो, तो उस गाँठ को निकालने के लिए कितना धीर होना चाहिए; उसी प्रकार अनन्त काल की भ्रान्ति की गाँठ निकालने के लिए तो भारी धैर्य होना चाहिए। अनन्त गुण-पर्याय का पिण्ड आत्मा धीर पुरुषों द्वारा अनुभव में आता है। जिस प्रकार मणिदीप चाहे जैसे पवन के झोकों से भी नहीं हिलता, उसी प्रकार चाहे जैसे बाह्य संयोगों में भी न डिगें—ऐसे अचल, आत्मलीन पुरुषों द्वारा आत्मरस आस्वाद्यमान है। यह विज्ञान ही एक जिसका रस है, अचिन्त्य और अपूर्व जिसका आत्मरस है—ऐसा भगवान आत्मा है, वह पुराण पुरुष है, प्राचीन से प्राचीन है—नवीन प्रगट नहीं होता; उसे ज्ञान कहो, दर्शन कहो, चारित्र कहो, सत् कहो, शान्ति कहो, आनन्द कहो, वह यह समयसार ही है। जैसे सोने को पीला-कहो, चिकना कहो, भारी कहो—जो कुछ कहो वह सोना ही है, उसी प्रकार आत्मा के संवेदन में आचार्यपद कहो, उपाध्यायपद कहो, मुनिपद या सम्यक्पद—जो कुछ वह यह एक ही है; चारित्र, आराधना, समाधिमरण, वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, सिद्ध और अरिहन्तपद भी यही है।

विकल्प को पद नहीं कहा जाता। विकल्प को अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय नहीं कहा जाता। विकल्प को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान नहीं कहा जाता। स्वरूपानुभव में ही यह समस्त पद आते हैं। अनुभव के अतिरिक्त यह पद क्या कहीं बाहर होगा? बाहर से पद लिया जाता है, वह

व्यवहार है, परमार्थ से इसी में समस्त पद आ जाते हैं। अनुभव अंशतः पूर्णता तक बढ़ता अवश्य है, लेकिन सभी पदों में अनुभव तो यही है। अधिक क्या कहें ? जो कुछ है, वह यही है; उसे स्वभाव कहो, अनुभव कहो, साक्षात्कार कहो या साक्षात् प्रभु के दर्शन कहो—जो कुछ कहो वह सब यही है। अधिक क्या कहें ? जो कुछ कहो वह यह एक ही है, मात्र पृथक्-पृथक् नाम से कहा जाता है।

अब विशेष कहते हैं कि प्राप्त की प्राप्ति है, कहीं अप्राप्त की प्राप्ति नहीं है। सत् तो है ही परन्तु उसका लक्ष्य हट गया था, स्वभाव में से च्युत हो गया था, मान्यता में फेर आ गया था—वह ज्ञान में आ मिलता है; भूल हुई थी उसे टालकर उपयोग आत्मा के साथ मिल जाता है। वस्तु तो जैसी ही है वैसी है, परन्तु पर्याय स्वभाव में आ मिलती है।

यह आत्मा ज्ञान से च्युत हुआ था, वह ज्ञान में ही आ मिलता है—ऐसा अब कहते हैं:—

(शार्दूलविक्रीडित)

दूरं भूरिविकल्पजालगहने भ्राम्यन्निजौघाच्च्युतो,
दूरादेव विवेक-निम्न-गमनान्नीतो निजौघं बलात्।
विज्ञानैक-रसस्तदेक-रसिना-मात्मान-मात्मा हरन्,
आत्मन्येव सदा गतानुगतता-मायात्ययं तोय-वत् ।।९४।।

अर्थः—जिस प्रकारी पानी अपने समूह से च्युत हुआ दूर गहन वन में बह रहा हो उसे दूर से ही ढालवाले मार्ग द्वारा अपने समूह की ओर बलपूर्वक ढाला जाता है। पश्चात् वह पानी, पानी को पानी के समूह की ओर खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर अपने समूह में आ मिलता है; उसी प्रकार यह आत्मा

अपने विज्ञानघन स्वभाव से च्युत होकर प्रचुर विकल्प जाल के गहन वन में दूर भ्रमण करता था, उसे दूर से ही विवेकरूपी ढालवाले मार्ग द्वारा अपने विज्ञानघन स्वभाव की ओर बलपूर्वक मोड़ा गया। केवल विज्ञानघन के ही रसिक पुरुषों को जो एक विज्ञानरसवाला ही अनुभव में आता है—ऐसा वह आत्मा, आत्मा को आत्मा में खींचता हुआ (ज्ञान, ज्ञान को खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर) सदैव विज्ञानघन स्वभाव में आ मिलता है।

आचार्यदेव अब दृष्टान्त देते हैं—जैसे पानी अपने समूह से च्युत हुआ अर्थात् पानी के प्रवाह की धारा कहीं उल्टी-सीधी निकल गयी, फिर वह गहन वन में फिरता रहता है और यदि ढालू मार्ग मिल जाये तो ढालवाले मार्ग में चला जाता है और पानी में मिल जाता है। दूर से ही ढालू मार्ग में बलपूर्वक ही मोड़ा जाये अर्थात् ढालू मार्ग हो उसमें थोड़ी लकीर बनाये, तो पानी, पानी में जाये, पानी पानी के बल से, पानी को, पानी के समूह की ओर खींचता हुआ पानी में जाकर मिलता है। ढालू मार्ग में पानी ढले और फिर पीछे का पानी वेग देता है अर्थात् ढकेलता है इससे पानी प्रवाहरूप होकर पानी में जाकर मिल जाता है। इसी प्रकार आत्मा विज्ञानघन से च्युत हुआ है और विकल्प जाल के गहन वन में भ्रमण करता है;—ऐसा कहकर आचार्यदेव यह कहते हैं कि—आत्मा बिल्कुल शुद्ध नहीं है, अवस्था में भूल है। यदि अवस्था में भूल न हो तो यह संसार किसका? यदि अवस्था में भूल न हो तो अवस्था में मलिनता होगी ही कैसे? इसलिए आत्मा ने भूल की थी, उससे विमुख होता है। आत्मा का स्वभाव तो ज्ञान-आनन्द का कन्द है, विकल्प जाल आत्मा का स्वभाव नहीं है, आत्मा विज्ञानघन, अरूपी ज्ञान-आनन्द की मूर्ति है। ऐसे स्वभाव से च्युत होकर भ्रान्ति में और राग-द्वेष की वृत्तियों में भ्रमण करता है;

शरीर, इन्द्रियाँ, शुभाशुभ-विकल्प—यह सब मैं ही हूँ—इस प्रकार भ्रान्ति द्वारा विकल्प जाल के गहन वन में फिरता रहता है, प्रचुर विकल्प जाल में फँसा रहता है।

स्त्री-पुत्र, कुटुम्बादि के लिए कुछ कर दूँ—ऐसा अज्ञानी मानता है, परन्तु पर का कुछ नहीं कर सकता और व्यर्थ का अभिमान करता रहता है; चाहे जितने धक्के खाये लेकिन विकल्प जाल में से नहीं हटता। मकड़ी जिस प्रकार जाल में फँसती है, उसी प्रकार यह तृष्णा के जाल में उलझता है। अपने विज्ञानघनस्वभाव से च्युत हुआ प्रचुर विकल्प-जाल के गहन वन में दूर भ्रमण करता था। जिस प्रकार पानी अपने क्षेत्र को छोड़कर दूर गया था उसी प्रकार आत्मा अपना क्षेत्र छोड़कर दूर नहीं गया है परन्तु स्वभाव से दूर गया है, नय के विकल्प में, पुण्य-पाप के विकल्प जाल में दूर भ्रमण करता है। अनन्त भव कीड़े-मकोड़े-नारकी-देव इत्यादि के किये तथापि विकल्प जाल का अन्त नहीं आया। मनुष्य भव में आया परन्तु यदि आत्मा का भान नहीं किया तो पूरी आयु बीत जाने पर भी विकल्पों का अन्त नहीं आता, विकल्प जाल नहीं टूटता; परन्तु जहाँ स्व-पर का विवेक किया, वहाँ स्वरूप में जा मिलता है और विकल्प जाल टूट जाता है।

दूर से ही विवेक किया अर्थात् विकल्पों में नहीं मिला; विकल्प हैं अवश्य परन्तु स्व से पर ऐसे विकल्पों का भेदज्ञान करके विकल्पों को गौण किया। मैं शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, आनन्दघन हूँ—इस प्रकार स्व-पर का विवेक करके स्वोन्मुख हुआ, विकल्पों से दूर से ही विमुख हुआ।

विवेक किया अर्थात् अपने को पकड़ा; परन्तु अभी स्थिरता नहीं हुई; सम्यग्ज्ञान हुआ है। प्रारम्भ में आगम का ज्ञान करता था तभी से विवेक प्रगट

करने का प्रयत्न करने लगा है। प्रथम से ही विवेक प्रगट करने का प्रयत्न करना वह मार्ग है। प्रयत्न द्वारा यथार्थ विवेक प्रगट करके विकल्पों के गहन वन में रुका था उसे, मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, पर से पृथक् हूँ—इस प्रकार पर पृथक् करने के, ढालू मार्ग की ओर मोड़ते हैं, बल से अपने में विवेक करके मोड़ते हैं। 'बल से'—ऐसा कहने से आचार्यदेव का तात्पर्य यह है कि तेरे पुरुषार्थ से कार्य होता है।

यहाँ पानी का दृष्टान्त लागू होता है। पानी पत्थरों को तोड़ डालता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान भावकर्म और द्रव्यकर्मरूपी पत्थरों को तोड़ डालता है। जैसा पानी का प्रवाह है वैसा ही ज्ञान का प्रवाह है, जो ज्ञान परसन्मुख दूर होता था वह स्वसन्मुखता से स्वरूप में नजदीक प्रवाहित किया जा सकता है।

विज्ञानघन स्वभाव की ओर बलपूर्वक मोड़ने में आया अर्थात् अपने पुरुषार्थ से तू ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख हुआ, ज्ञानस्वभावरूप हुआ। तेरे पुरुषार्थ के बिना कोई भी ऐसा नहीं है जो तुझे विज्ञानघन स्वभाव का स्वाद दे; यदि ज्ञान की दिशा अपने स्वभाव सन्मुख कर तो तेरा स्वाद तुझे अनुभव में आयेगा।

विज्ञानघन के रसिक को विज्ञानघन में ही शान्ति है, उसी में रस है, उसी में लीन होता है; वह उसी का अनुभव करता है और प्रयत्न भी उसी का करता है। ऐसा आत्मा आत्मा को आत्मा में खींचता हुआ (ज्ञान ज्ञान को खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर) सदैव विज्ञानघन स्वभाव में आ मिलता है।

जिसके पास पूँजी नहीं होती वह प्रथम तो मिट्टी की कुण्डियों में चने मूँगफली आदि थोड़ी सी चीज़ें रखकर उनका व्यापार करता है; ऐसा व्यापार करते-करते एक वर्ष में दो सौ रुपये बढ़ते हैं, थोड़ी पूँजी हो जाती है, और

फिर वह पूँजी बढ़ाता रहता है; इसी प्रकार प्रथम आगम द्वारा और श्री गुरु के उपदेश द्वारा विवेक प्रगट करने का प्रयत्न करे, प्रयत्न करते-करते विवेक प्रगट होता है। विवेक प्रगट होने पर ज्ञान, विकल्प और मैं दोनों पृथक् हैं—ऐसा भेदज्ञान करके, विकल्पों को गौण करके, यह मेरा नहीं है, मेरा नहीं है—इस प्रकार परभावों का अस्वीकार करते हुए बल से ज्ञान उपयोग को स्वोन्मुख करता है। प्रथम तो पुरुषार्थ करके बल से स्वोन्मुख करता है, और फिर तो वेग आत्मा की ओर जमा कि आत्मा आत्मा को आत्मा में खींचता हुआ आत्मा में आकर मिल जाता है; फिर तो पूँजी पूँजी को बढ़ाती है; उसी प्रकार आत्मा में जमा कि वहाँ निजस्वरूप का उपभोग करता है और बुद्धिपूर्वक के विकल्प छूट जाते हैं। इस प्रकार साधकदशा में वृद्धि होते-होते वीतराग होने तक स्थिरता बढ़ती जाती है, और फिर पूँजी पूँजी को बढ़ाती है।

प्रारम्भ में छोटा व्यापार करे अर्थात् आगम द्वारा और श्री गुरु के उपदेश द्वारा विवेक प्रगट करने का प्रयत्न करे और विवेक प्रगट होने के पश्चात् तो पूँजी से पूँजी बढ़ती जाती है।

पुरुषार्थ द्वारा यथार्थ विवेक, यथार्थ प्रतीति प्रगट करके जो यह सत्, यह अस्ति, यह ज्ञान है सो मैं हूँ; यह विकल्प-राग मैं नहीं हूँ, यह आकुलता मैं नहीं हूँ—इस प्रकार अस्वीकार करता, ध्रुवस्वभाव में पर की नास्ति स्वीकार करता और अपने सत् स्वरूप में अपनी अस्ति स्वीकार करता हुआ ढालवाले मार्ग में ज्ञान को खींचता हुआ ज्ञान में आ मिलता है।

जिस प्रकार पानी को ढाल मिला कि वह दौड़ता है; आगे का पानी खींचता है और पीछे का पानी उसे ढकेलता है इस प्रकार जाकर पानी, पानी में मिल जाता है; इसी प्रकार आत्मा में ढालवाला मार्ग (नीचा नहीं किन्तु ढाल

अर्थात् सीधा रास्ता, विवेकरूपी ढाल) अर्थात् विवेक का सीधा मार्ग हो गया, विवेकी ज्ञान स्थिर होता हुआ अर्थात् ज्ञान ज्ञान को खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर सदैव विज्ञानघन स्वभाव में आ मिलता है।

स्वभाव की ओर झुकता हुआ, स्वभाव का बहुमान करता हुआ, स्वभावोन्मुख होता हुआ, पर से भेदज्ञान करता हुआ, स्व-पर का विवेक करता हुआ—स्व-पर को पृथक् करता हुआ ज्ञान उपयोग भगवान आत्मा में मिल जाता है, बढ़ते-बढ़ते सदैव विज्ञानघनस्वभाव में पूर्ण होता है।

आचार्यदेव ने यहाँ किसी ऐसी शैली से रचना की है कि—प्रथम आगम ज्ञान कर, पश्चात् मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ—ऐसा निश्चय कर, पश्चात् अनुभव कर—ऐसा क्रम इसमें दिया है। देखो, इसमें 'काल या कर्म बाधा देते हैं'—आदि कुछ नहीं आया, मात्र पुरुषार्थ ही आया है।

आत्मा पर का माहात्म्य होने से मिथ्यात्व के मार्ग द्वारा स्वभाव से बाहर निकल कर, विकल्पों के मार्ग में भ्रमण करता था, उसे वहाँ से पृथक् करने के विवेकवाले मार्ग द्वारा स्वयं अपने को खींचता हुआ, राग का संगठन तोड़ता, स्वयं ही अपने स्वभाव द्वारा स्वभाव में स्थिरता करता हुआ विज्ञानघन स्वभाव में आ मिलता है, स्वयं विज्ञानघन होता है, वहाँ विकल्प छूट जाते हैं।

—०—०—

जन्मशताब्दी-विशेषांक

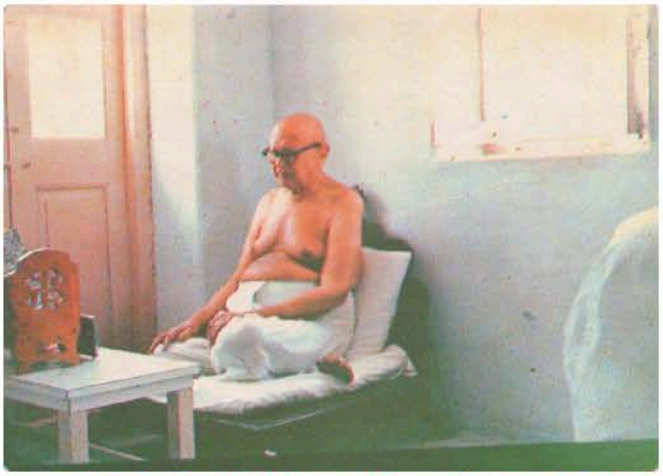

सदा द्रष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्ति मांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जइ भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदधन विषे कांइ न मळे।

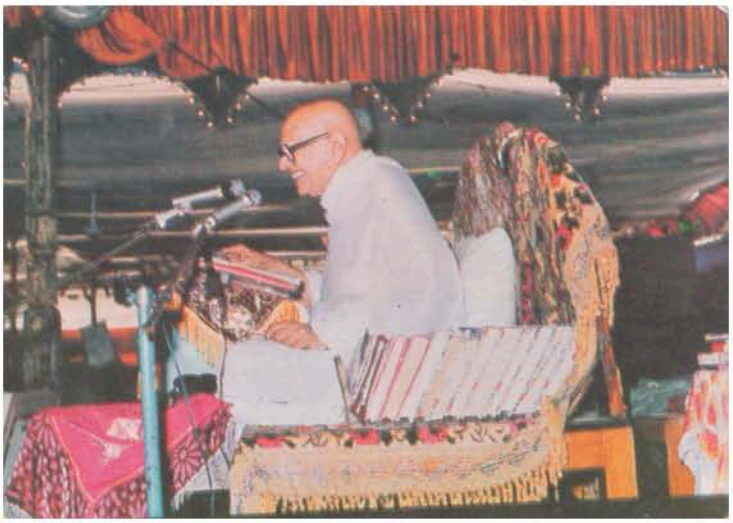

परमागममन्दिरनी प्रतिष्ठा प्रसंगे प्रवचनामृत पीरसता कहानगुरु

जन्मशताब्दी-विशेषांक

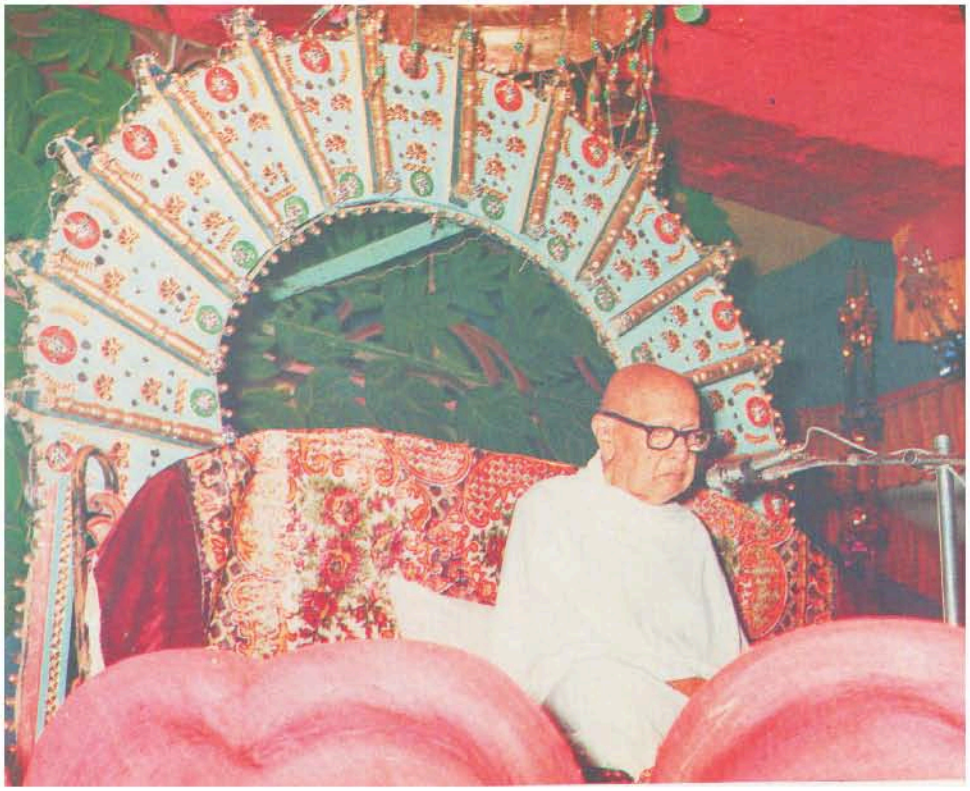

कमलाकार भव्य प्रवचनपीठ पर मंगलाचरण उच्चारता कहानगुरुदेव

द्रव्य सकळनी स्वतंत्रता जग मांही गजावनहारा,
वीरकथित स्वात्मानुभूतिनो पंथ प्रकाशनहारा;

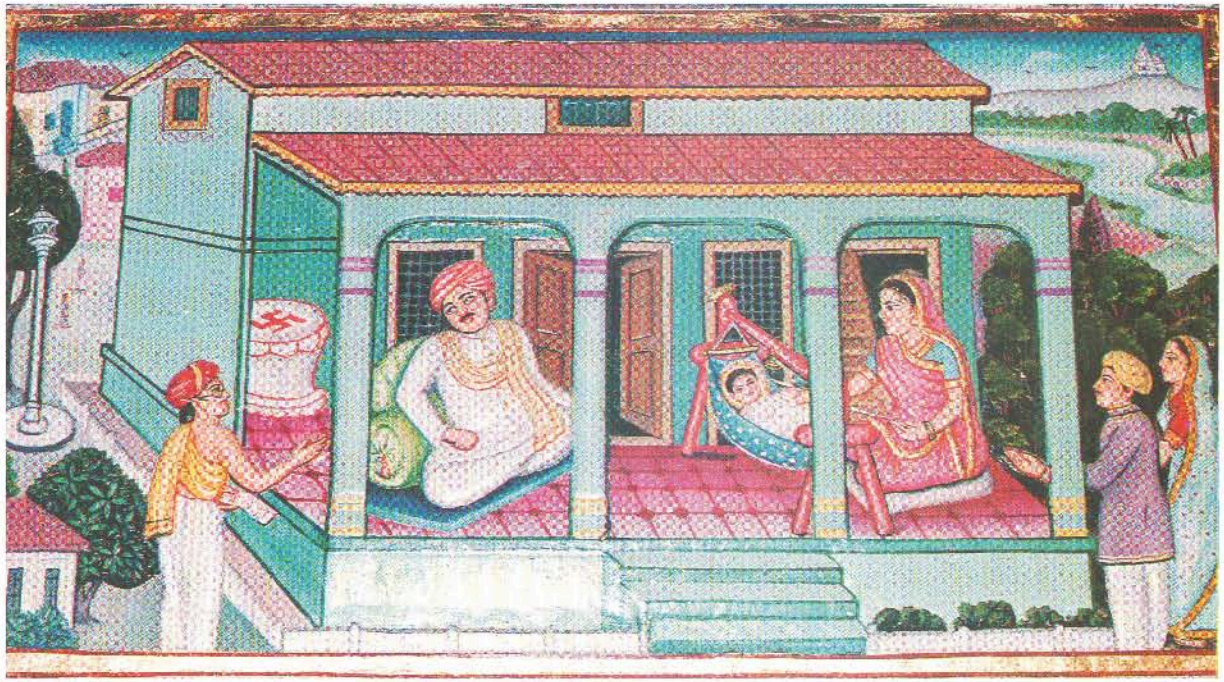

(1) भावनगर जिल्लाना उमराळा गाममां कहानकुंवरनुं जन्मधाम : उजमबा माता हालरडुं गातां गातां कहानकुंवरने हींचोळे छे; कहानकुंवरना जोष जोवा आवेला ज्योतिषीने पिताश्री मोतीचंदभाई प्रसन्नचित्ते आवकारे छे; सगांसम्बन्धी तेजस्वी बाळकने निहाळीने प्रमुदित थाय छे।

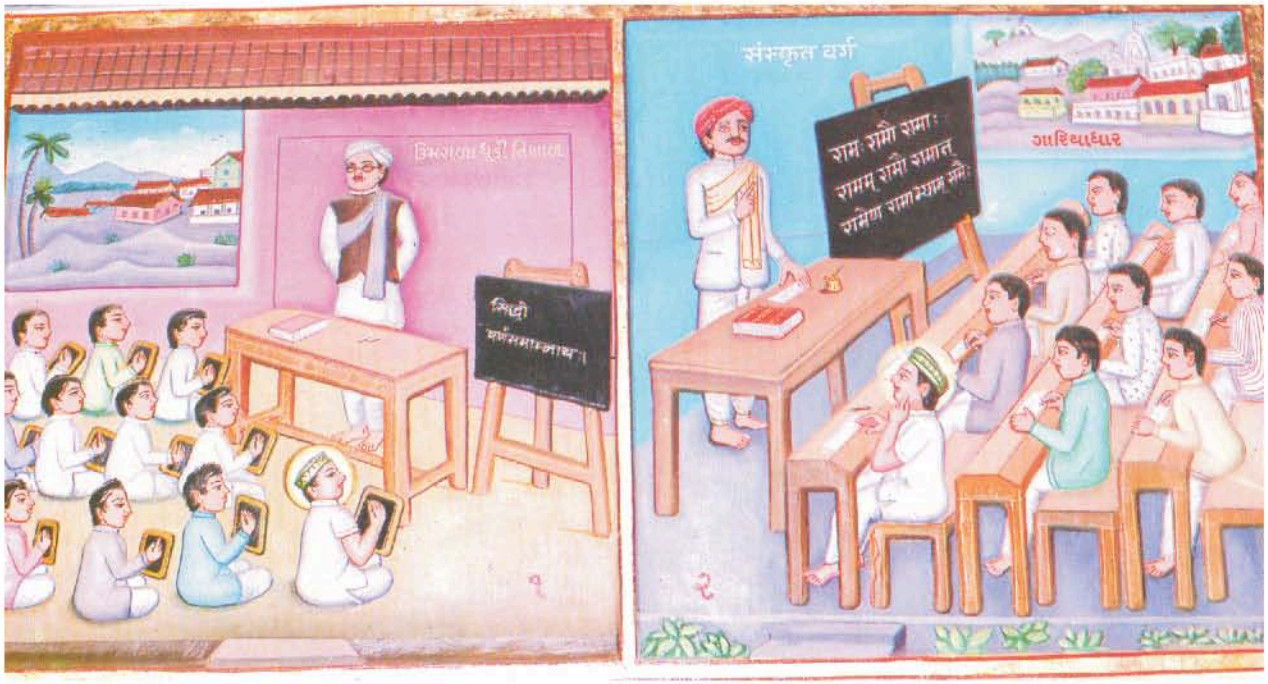

[2] (1) जन्मधाम उमराळानी धूडी निशाळ, ज्यां कहानकुंवर प्रथम ज 'सिद्धो वर्णसमाम्नायः' अे पाठ शीख्या हता। (2) पूर्वना धर्मसंस्कारी कहानकुंवरने गारियाधार गामना संस्कृतवर्गमां 'आमां आत्मानुं कांइ आवतुं नथी' अेम लागवाथी, आत्मज्ञानहेतुशून्य संस्कृत भाषाना भणतरमां रस पडतो नथी।

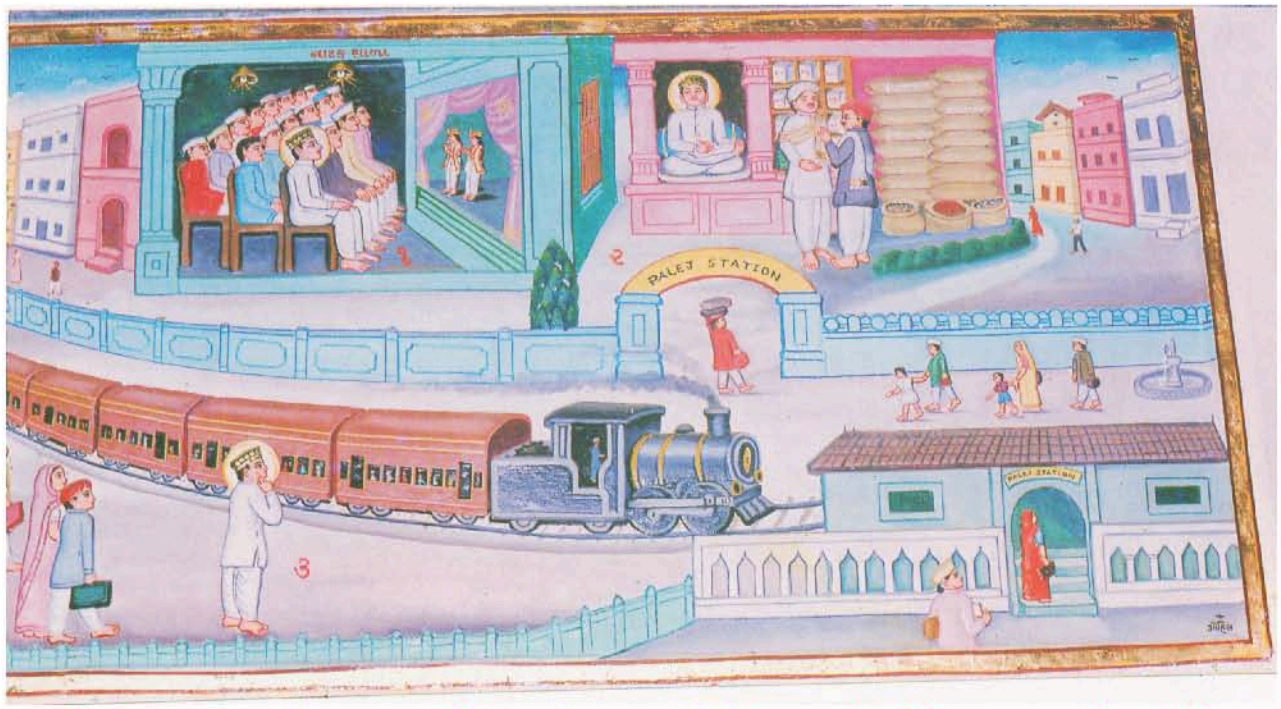

[4] (1) कहानकुंवर नाटक जोतां पण वैराग्यभावथी भिंजाता। (2) अेक बार रामलीला जोइने वैराग्यनी धूनथी 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव'—अे पंक्तिथी शरू अेक वैराग्यरसझरतुं काव्य सहज रचाइ जाय छे। (3) दीक्षा लेवाना भाव होवाथी योग्य गुरुनी शोध माटे प्रवासे निकळे छे।

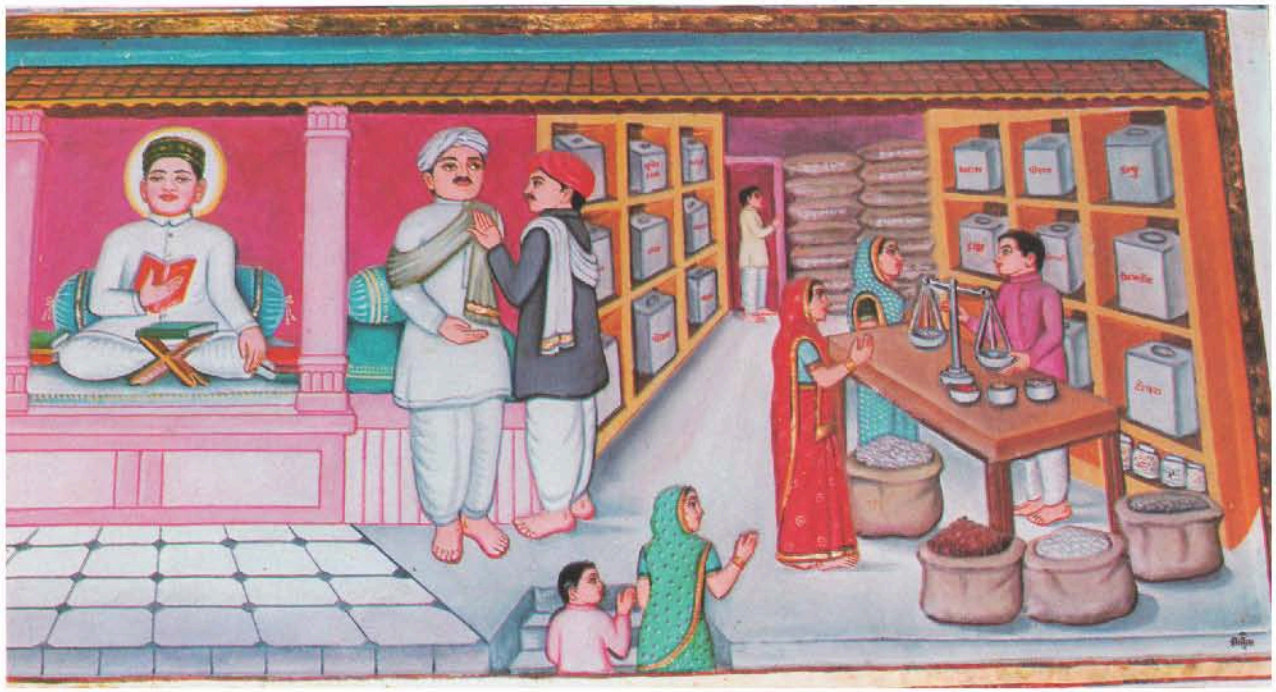

[3] भरूच जिल्लाना पालेज गाममां दुकान पर पण धर्मरसिक कहानकुंवर वेपारनी उपेक्षापूर्वक धार्मिक ग्रंथोनुं वांचन करे छे।

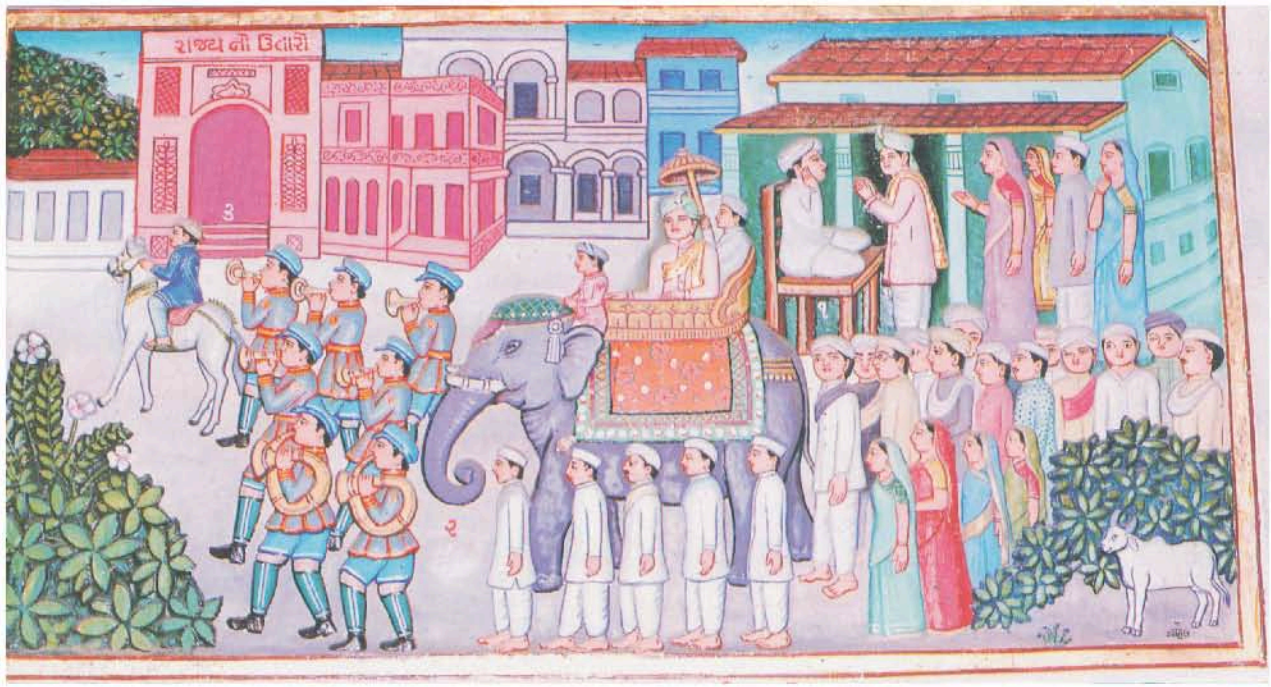

[5] वैरागी कहानकुंवर वडील बंधु खुशालभाई पासे दीक्षानी अनुज्ञा मागे छे। (2) जन्मभूमि उमराळामां हाथीने होद्दे दीक्षानो भव्य वरघोडो। (3) दीक्षाविधिस्थळ—राज्यनो उतारो।

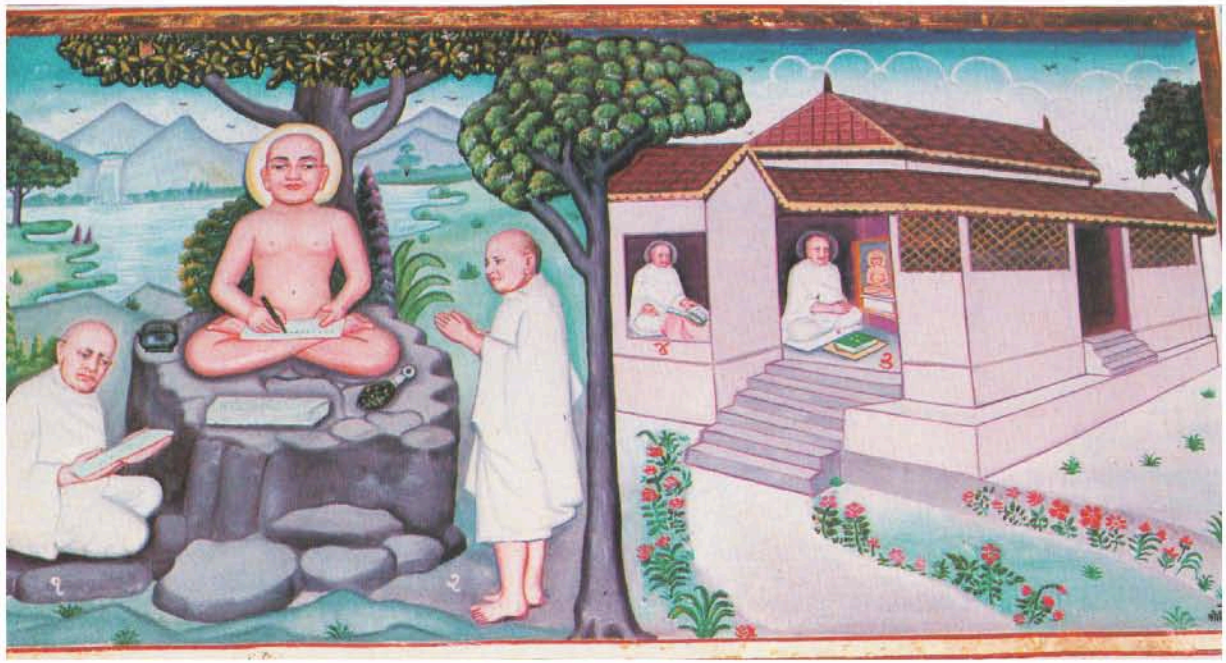

[6] पूर्वना धर्मसंस्कारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीना अंतर्जीवनमां, श्रीमद्भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत परमागम समयसारना गहन अवगाहन वडे थयेलुं परम पावन परिवर्तन। (2) श्री समयसारना प्रणेता भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव प्रत्ये गुरुदेवनी अगाध भक्तिनुं चित्र द्वारा दिग्दर्शन। (3) सोनगढना अेकांत स्थळमां—'स्टार ऑफ इण्डिया' नामना जूना मकानमां—श्री पार्श्वनाथप्रभुना चित्रपट समक्ष गुरुदेवे करेलुं संप्रदाय 'परिवर्तन'। (4) ज्ञानध्यारनरत कहानगुरुदेव।

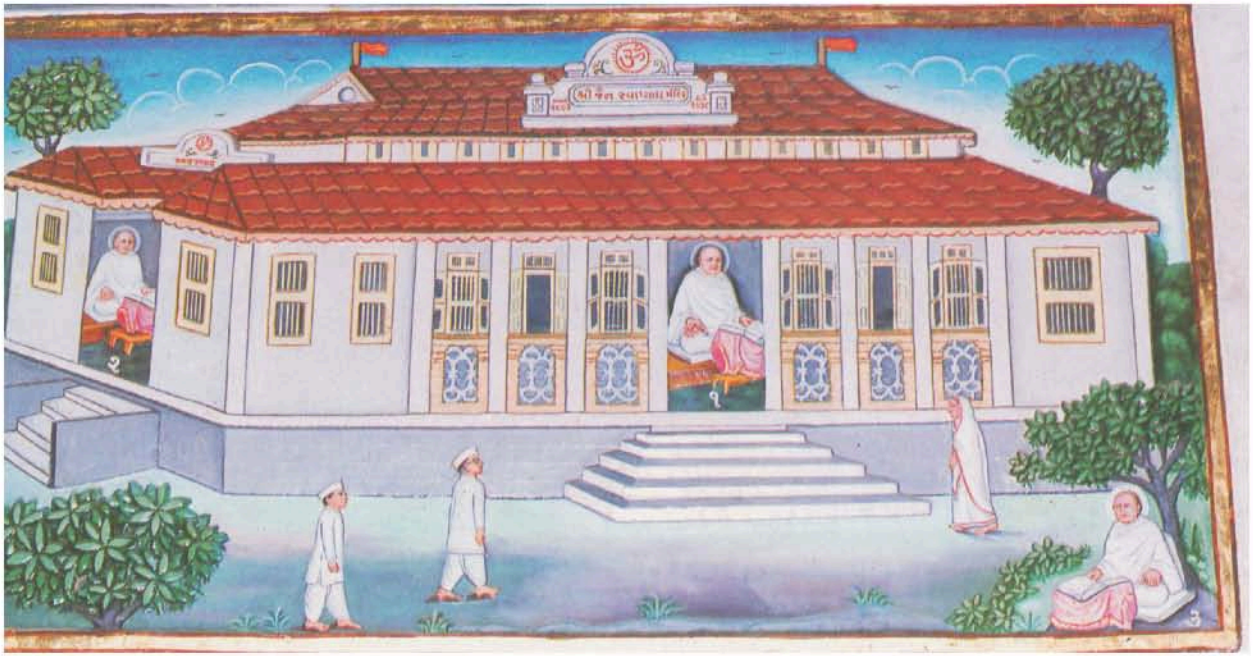

[7] पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीना निवासनुं ने प्रवचननुं स्थान : स्वाध्यायमन्दिर। पूज्य गुरुदेव—(1) स्वाध्यायमन्दिरना प्रवचनखण्डमां प्रवचन आपतां; (2) स्वाध्याय-ध्यानखण्डमां स्वाध्याय-ध्यानरत; (3) वृक्षतळे स्वाध्यायरत।

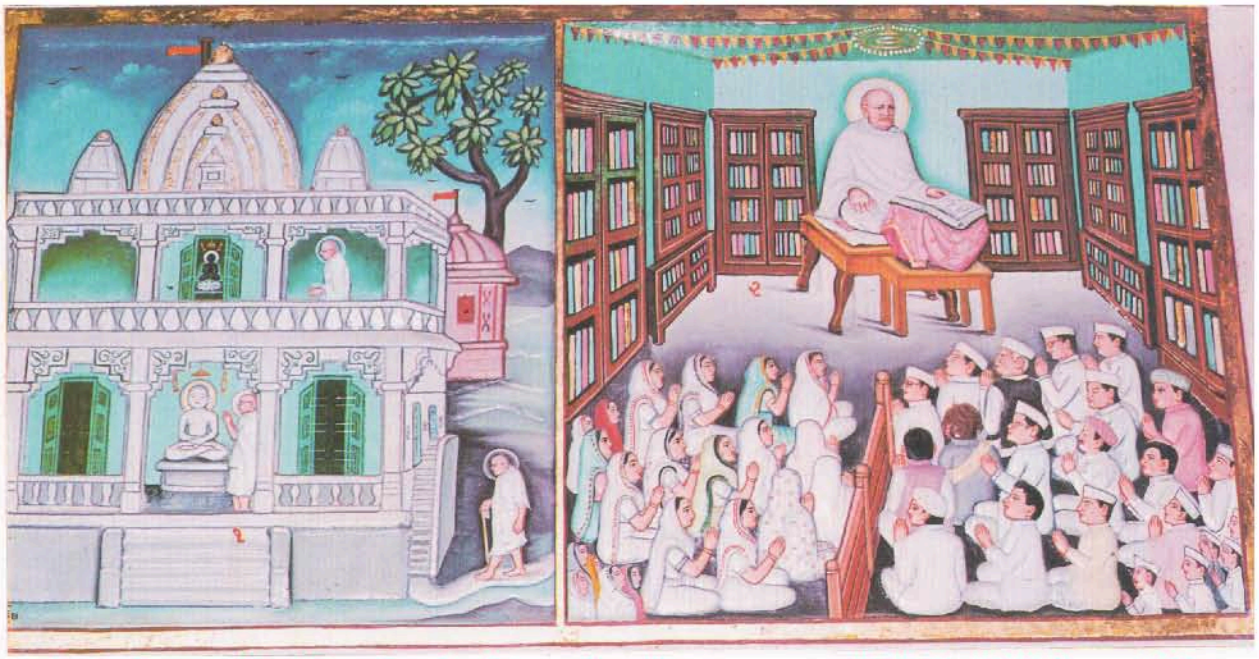

[8] सोनगढना जिनमन्दिरमां गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा परमपूज्य श्री सीमंधरादि जिनेन्द्रभगवंतोने अतिशय भक्तिभाव सहित वन्दना; (2) पूज्य गुरुदेवश्रीनुं शास्त्रप्रवचन; तथा गुरुदेवना पुनित प्रतापे विशाळ शास्त्रभण्डार।

[9] पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीना पावन प्रतापे सौराष्ट्र तेम ज अन्य प्रान्तोमां नवनिर्मित दिगम्बर जिनमन्दिरो; (2) जिनेन्द्र-पंचकल्याणक; (3) पूज्य गुरुदेवना पवित्र करकमळे जिनबिम्ब-अंकन्यासविधि; (4) भव्य जिनेन्द्ररथयात्रा; (5) देश-विदेशव्यापी ज्ञानकिरणो प्रसारनार, जिनशासनप्रभावक, स्वात्मानुभवी पूज्य गुरुदेव द्वारा पंचकल्याणक-प्रतिष्ठामहोत्सव प्रसंगे अध्यात्मरसझरतुं जिनेन्द्रभक्तिभीनुं भाववाही प्रवचन।

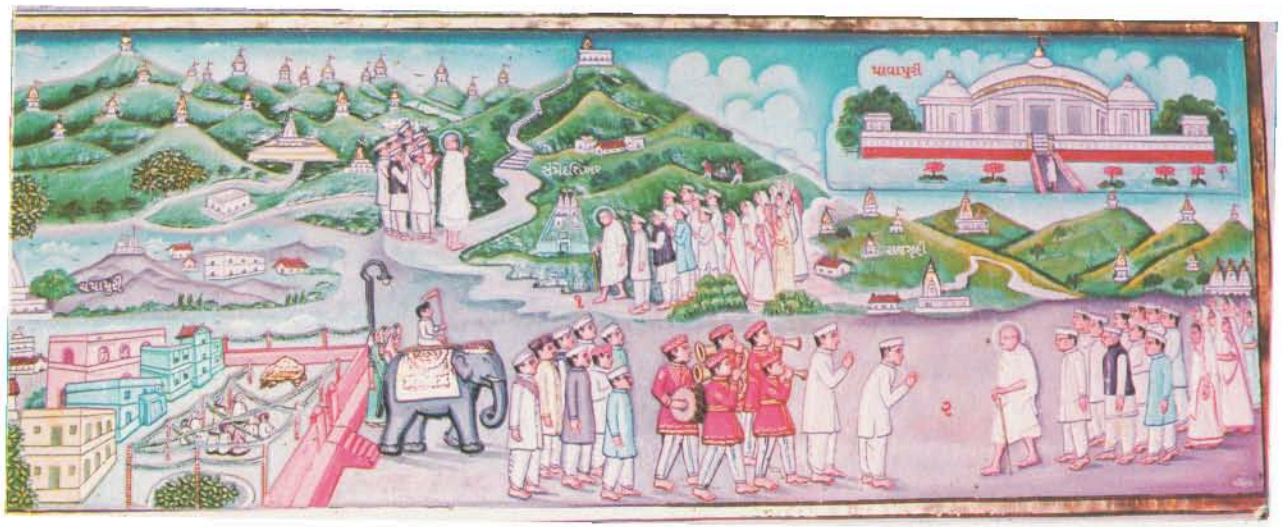

[10] (1) सहस्राधिक भक्तोना विशाळ संघसहित पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा श्री सम्मेदशिखर, राजगृही, पावापुरी, चम्पापुरी, मन्दारगिरि आदि पूर्व-उत्तर भारतनां जैन तीर्थोनी भक्तिभावभीनी अनुपम यात्रा। (2) नगरे नगरे पूज्य गुरुदेवश्रीनां भावभीनां अद्भुत स्वागत तथा अध्यात्मतत्त्वरसभरपूर प्रभावक प्रवचनो। (वि.स. 2013)

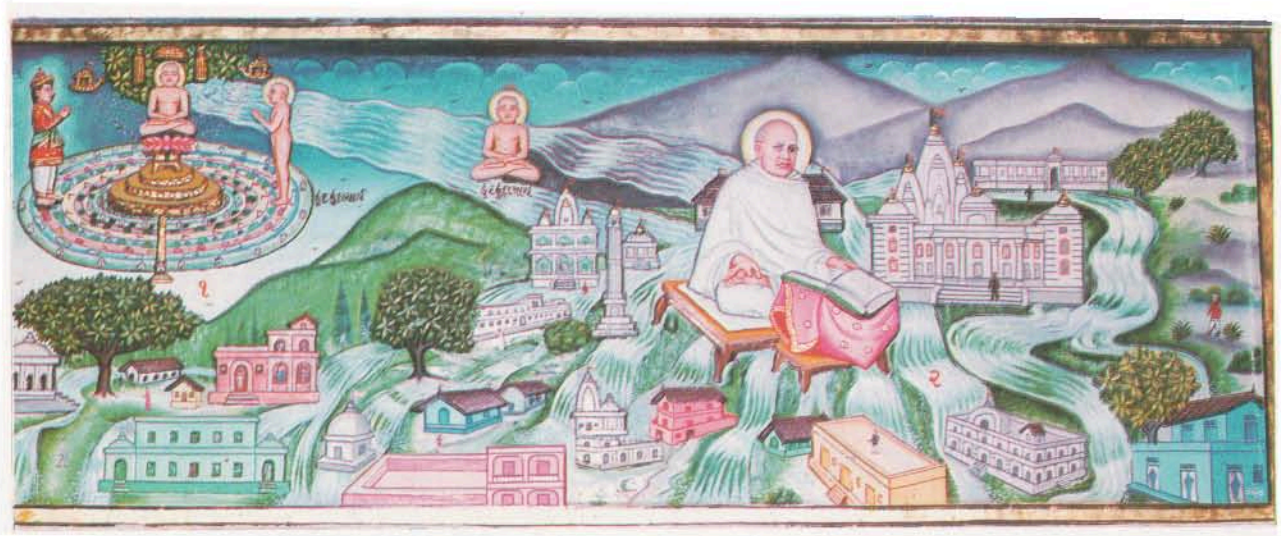

[11] (1) जंबूद्वीपना पूर्वविदेहक्षेत्रमां बिराजमान वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा श्री सीमन्धर भगवाननी समवसरणसभामां भरतक्षेत्रना दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुंदकुंदमुनिराज अने विदेहक्षेत्रना गुणियल राजकुमार। (2) श्री सीमन्धरप्रभु अने कुंदकुंदयोगीराज पासेथी उपलब्ध ज्ञानधोधनो पुनित प्रवाह गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा भारतवर्षमां—देशोदेशमां फैलाय छे अने अध्यात्मज्ञाननी हरियाळी छवाइ जाय छे।

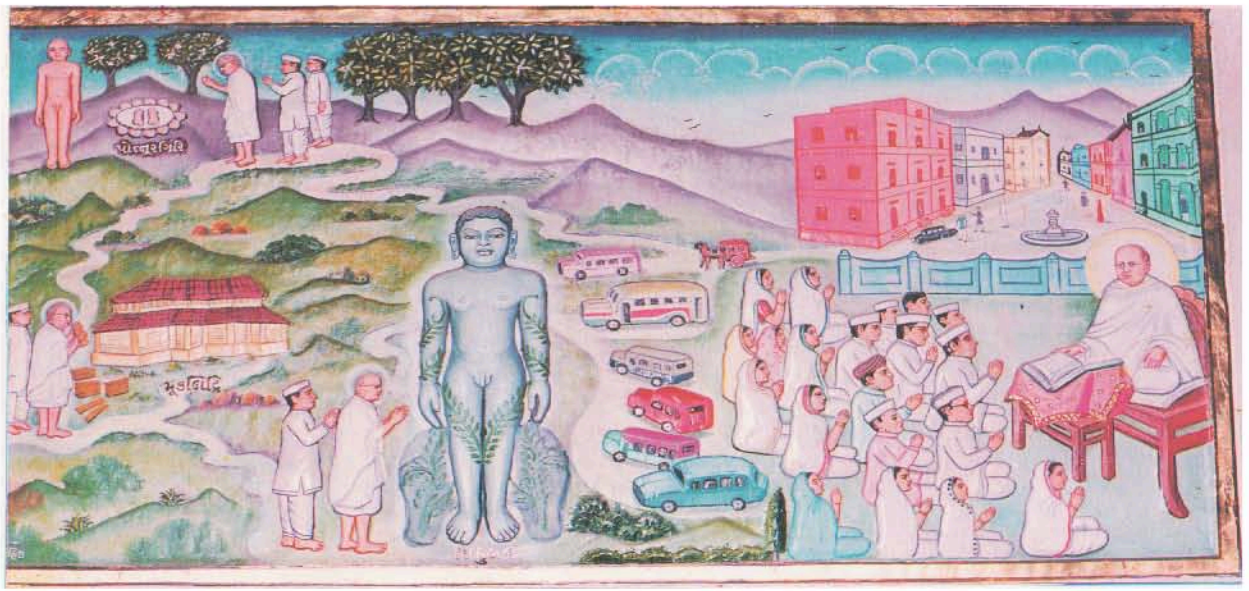

[12] (1) पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा सहस्राधिक भक्तोना विशाळ संघ सहित विश्वप्रसिद्ध श्री बाहुबली (श्रवणबेलगोला), रत्ननिर्मित जिनप्रतिमाओ तथा ताडपत्रलिखित प्राचीन जैनशास्त्रोना भंडारो वगेरे वैभवयुक्त मूडबिद्रि, समयसार आदि अध्यात्म श्रुतना प्रणेता श्रीमद्भगवत्—कुंदकुंदाचार्यदेवनी (तेमनां चरणचिह्नथी विभूषित) तपोभूमि पोन्नूरगिरि आदि दक्षिण भारतवर्षनां जैनतीर्थोनी मंगलयात्रा; तथा यात्राप्रवासमां नगरे नगरे पूज्य गुरुदेवश्रीनां अध्यात्मरसझरतां अद्भुत प्रवचनो। (वि.सं. 2015)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

सातिशय प्रभावनायोग

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप रत्नत्रय के तेज द्वारा आत्मा ही, तथा दान, तप, जिनपूजा, विद्या और अतिशय के द्वारा जिनधर्म ही सतत् प्रभावना करनेयोग्य है। अन्तर में आत्मा की और बाह्य में यथाशक्ति वीतराग जिनधर्म की प्रभावना करनेयोग्य है। अज्ञानरूप अन्धकार के फैलाव को जिस प्रकार हो सके, उस प्रकार दूर करके अन्तर में आत्मा का और बाह्य में जिनशासन के माहात्म्य का प्रकाश करना, वह प्रभावना है।

शुद्धात्मानुभूति प्रधान अध्यात्मसाधना ही वास्तव में जैनधर्म है; क्योंकि अनादि से प्रवर्तते मोह-राग-द्वेषरूप अन्तरंग शत्रुओं को जीतने के लिये वह पवित्र साधना ही समर्थ है। अनादि प्रवाह से प्रवर्तमान उस अध्यात्म साधन का पावन तीर्थ चौबीसवें शासननायक सर्वज्ञ-वीतराग अरिहन्त परमात्मा परम पूज्यश्री महावीर भगवान ने पुनः प्रवृत्त किया। परमगुरु श्री सर्वज्ञदेव और अपरगुरु—गणधरादिक से लेकर साक्षात् गुरु—द्वारा प्रसादरूप से प्राप्त हुई उस पवित्र अध्यात्मविद्या का भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने महान उद्योत किया। परन्तु कालक्रम में अध्यात्मरसप्रमुख वीतराग जैनधर्म की ज्योति मन्द पड़ने लगी, जिनेन्द्रप्रणीत स्वानुभवप्रधान अध्यात्मधर्म कालदोष से वैज्ञानिक भूमिका ऊपर से सरक कर रूढ़िचुस्त साम्प्रदायिकता में और बाह्य क्रियाकाण्ड में उलझ गया। ऐसे इस विषम युग में भारतीय जीवों

के महान पुण्योदय से जिस महापुरुष ने सौराष्ट्र में अवतार लेकर आत्मसाधना का अध्यात्मपंथ प्रकाशित किया, सम्प्रदाय के दुराग्रह से बाहर निकालकर जिन्होंने देश-विदेश में रहनेवाले हजारों जीवों में अध्यात्मतत्त्व अर्थात् शुद्ध आत्मा समझने की जिज्ञासा जगाकर एक अभूतपूर्व नये मुमुक्षुसमाज का सर्जन किया, स्वयं की स्वानुभवसमृद्ध भेदज्ञानकला से जिनशासन के सूक्ष्म रहस्य खोलकर जिन्होंने 'तुझमें ज्ञान और सुखादि सब भरपूर भरे हुए हैं' इस प्रकार प्रसिद्ध करके प्रत्येक जीव की शक्तिरूप प्रभुता का जगत में ढ़िंढोरा पीटा—इत्यादि अनेक प्रकार से जगत के धर्मपिपासु जीवों पर जिनका अनन्त-अनन्त उपकार है, उन अध्यात्मयुगसृष्टा जिनेन्द्र-मार्गप्रभावक, परमोपकारी परमकृपालु परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के सातिशय प्रभावना-योग का यहाँ संक्षेप से दिग्दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

होनहार अध्यात्मसूर्य का अरुणोदय

भावनगर जिले के उमराला ग्राम में पिताश्री मोतीचन्दभाई के घर माताश्री उजमबा की पवित्र कूंख से वि.सं. 1946वैशाख सुदी दोज, रविवार के दिन अरुणोदय के समय अध्यात्मकिरण प्रसारक उस कहानसूर्य का उदय हुआ। बचपन से ही उस होनहार महाप्रतापी पुरुष के मुख पर वैराग्य की सौम्यता तथा नेत्रों में बुद्धि व वीर्य की प्रतिभा उभर आती थी। स्कूल में और जैनशाला में वे तेजस्वी विद्यार्थी थे, वे हमेशा प्रथम नम्बर आते थे; वैरागियों को देखकर उन्हें हृदय में वैराग्य का गहरा प्रभाव पड़ता था। नाटक देखने जाते, तब भी उसमें कोई वैराग्यप्रेरक दृश्य देखकर उनका आत्मा वैराग्य से भींग जाता था। एक बार नाटक देखने के बाद उन्हें वैराग्य की ऐसी धुन चढ़ गई कि उस धुन में 'शिवरमणी रमनार तुं, तुं ही देवनो देव' इन शब्दों से शुरु

होता बारह पद का काव्य उनके द्वारा सहज रचा गया था। अहा! सांसारिक रस के प्रबल निमित्तों को भी महान आत्माएँ वैराग्य के ऐसे निमित्त बनाती हैं।

दुकान पर भी वे वैराग्य-प्रेरक और तत्त्वबोधक धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। इन होनहार महात्मा को संसार में पड़ना नहीं रुचा, और इक्कीस वर्ष की छोटी कुमारावस्था में आजीवन ब्रह्मचर्यपालन करने की प्रतिज्ञा ले ली। रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग तो छोटी उम्र से ही किया था। उनका आत्मा भीतर किसी और ही खोज में था। उनके अन्तर का झुकाव सदा धर्म और सत्य की खोज के प्रति ही था। उनका धार्मिक अध्ययन, जीवन और सरल अन्तःकरण देखकर सगे-सम्बन्धी उनसे 'भगत' कहते थे। अन्तर में वैराग्य और धर्म का रस होने से भगत, जहाँ 'भजन' होते हों, वहाँ सुनने जाते थे, उपाश्रय में सम्प्रदाय के कोई साधु आयें कि वे उनकी सेवा-सुश्रुषा तथा उनके साथ धार्मिक वार्तालाप के लिये दौड़ जाते और दुकान की उपेक्षा करके अधिक समय उपाश्रय में बिताते।

एकान्त और निवृत्ति के प्रेमी उन महात्मा के वैराग्यभीने चित्त को दुकान पर या घर में रहना रुचा नहीं, और इसलिए उन्होंने, निवृत्ति लेकर धर्मसाधना करने के लिये दीक्षा लेने का अन्तर में निर्णय किया। दीक्षा हेतु योग्य गुरु की खोज के लिये काठियावाड़ तथा मारवाड़ आदि अनेक प्रदेशों में प्रवास करके सम्प्रदाय के अनेक साधुओं का परिचय कर आये, परन्तु कहीं उनका मन स्थिर नहीं हुआ। अन्त में काठियावाड़ में बोटाद-सम्प्रदाय के श्री हीराचन्दजी महाराज का, उनके त्याग, वैराग्य, क्रिया, निःस्पृहता आदि सद्गुणों के कारण चुनाव किया; और उन्होंने वि. सं. 1970 की मगसिर

शुक्ला 9, रविवार के शुभदिन जन्मधाम उमराला में हीराजी महाराज के पास दीक्षा ली।

शोधवृत्ति और समयसार का योग

दीक्षा-अवस्था में उन्होंने श्वेताम्बर आगमों का विचारपूर्वक खूब अभ्यास किया, फिर भी जिस परमार्थ सत्य की शोध में वे थे, वह उन्हें कभी नहीं मिला था; अविरामरूप से उल्लसित वीर्य से शोधवृत्ति चालू ही थी; तब वि.सं. 1978 में महान भाग्ययोग से भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव का 'समयसार' नाम का महान ग्रन्थ उनके हाथ में आया। उसका अध्ययन करते हुए उनके हर्ष का पार न रहा। जिस आध्यात्मिक सत्य की शोध में वे थे, वह उन्हें समयसार में से मिल गया। उनके अन्तरनयनों ने उसमें अमृत के सागर उछलते देखे; एक के बाद एक गाथा पढ़ते हुए उन्होंने अंजुली भर-भरकर वह भवान्तकारी अमृत पिया।

पुरुषार्थ और वस्तु स्वातंत्र्य यही जीवन-मन्त्र

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी पहले से ही तीव्र पुरुषार्थी थे। पुरुषार्थ वही उनका जीवनमन्त्र था। 'केवली भगवान ने देखा होगा, तब मोक्ष होगा'—इस प्रकार काललब्धि और भवितव्यता की पुरुषार्थहीन बातें कोई करे तो वे उसे सहन नहीं कर सकते थे और दृढ़ता से कहते थे कि 'जो सच्चा पुरुषार्थी है, उसके अनन्त भव होते ही नहीं, केवली ने भी उसके अनन्त भव देखे ही नहीं हैं। पुरुषार्थी को भवस्थिति आदि कुछ भी प्रतिबन्ध नहीं करते।' और, वे कहते:—विश्व का प्रत्येक द्रव्य परिपूर्ण स्वतन्त्र है, इसलिए जीव पदार्थ भी अपनी स्वभाव या विभाव पर्यायों को रचने में परिपूर्ण स्वतन्त्र है।

उसके पर्यायरूप परिणमन में ज्ञानावरणादि कर्म या शरीरादि नोकर्म आदि का जरा भी हाथ नहीं है। जीव भी आकाशादि अन्य द्रव्यों के समान 'अकारण पारिणामिक द्रव्य' है; अर्थात् जीव जिसका कोई अन्य द्रव्य कारण नहीं, ऐसे अपने भाव से स्वतन्त्ररूप से परिणमन करता द्रव्य है, इसलिए उसे अपने भाव स्वाधीनरूप से करने में वास्तव में कोई भी रोक नहीं सकता। वह स्वतन्त्ररूप से स्वयं का सब कुछ कर सकता है। उनकी प्रभावक वाणी में स्वतन्त्रता का ऐसा मधुर स्वर सदा गूँजता रहता था।

सम्प्रदाय में कोई-कोई बार विरोध भी होता था तो भी पूज्य गुरुदेव तो स्वयं अनुभवे हुए अध्यात्मसत् का प्रतिपादन अति निडरतापूर्वक ही करते थे। उनकी चैतन्यस्पर्शी अध्यात्मवाणी में ऐसी निडरता भरी सिंहगर्जना थी कि बड़ा राजा हो या सेठ हो—सबको निर्भयरूप से जो सत्य हो, वह कह देते थे। किसी को खुश करने के लिये जरा भी अच्छा कहना, वह उनकी प्रकृति में ही नहीं था। उन्हें राजा और रंक दोनों समान थे। वे तो जगत के ख्याति-पूजा लाभ से बिल्कुल निःस्पृहतापूर्वक रहकर केवल आत्मलक्ष्यी जीवन जीते थे।

सदुपदेश का प्रधान स्वर

उनके सदुपदेश में मुख्य भार तत्त्व की सच्ची समझ पर था। 'आत्मा की सत्य समझ बिना व्रत, तप या भक्ति आदि सब व्यर्थ हैं' इस प्रकार वे भारपूर्वक बारम्बार कहते थे। 'कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—परद्रव्य की क्रिया करने का सामर्थ्य जरा भी नहीं रखता, तो फिर व्रतादि के पालनस्वरूप देहादि की जड़ क्रिया आत्मा के हाथ में कहाँ से हो? ज्ञानी और अज्ञानी के अभिप्राय में प्रकाश-अन्धकार जैसा महान अन्तर है, और वह यह है कि

अज्ञानी परद्रव्य का तथा तदाश्रित राग-द्वेष का—शुभाशुभभावों का—कर्ता होता है और ज्ञानी धर्मात्मा अपने को स्वभाव से सदा शुद्ध अनुभवता हुआ उनका कर्ता नहीं होता। स्व-पर के और स्वभाव-विभाव के अज्ञान के कारण अनादि से चली आ रही, वह कर्तृत्वबुद्धि छोड़ने का महापुरुषार्थ प्रत्येक जीव को करने का है। वह भवजननी कर्तृत्वबुद्धि वस्तुस्वरूप के सच्चे ज्ञान बिना नहीं छूटेगी। इसलिए तुम सच्चा ज्ञान करो।'—वह उनके सदुपदेश का प्रधान स्वर था।

अहा! उस समय भी पूज्य गुरुदेव के व्याख्यानों में अध्यात्मतत्त्व के तर्कशुद्ध अद्‌भुत न्याय बहुत आते थे, जिसे श्रवण कर बुद्धिशाली श्रोतागण उनकी अध्यात्मरसभरी वाणी तथा अन्तर की खुमारी पर अहोभाव से न्योछावर हो जाते थे। श्रवण करते समय सब मन्त्रमुग्ध होकर अति प्रसन्नता से डोलते थे। प्रत्येक गाँव में गुरुदेव की अमृतवाणी श्रवण करने के लिये, हजारों श्रोता एकत्रित होते थे। प्रातःकाल सात बजे शुरु होनेवाले प्रवचन में स्पष्ट सुन सकें इसलिए, बहुत से भाई-बहन डेढ़ घण्टे पूर्व अर्थात् साढ़े पाँच बजे उपाश्रय में आकर बैठ जाते थे। न्यायशुद्ध गुरुदेव की वाणी से बहुत मेधावी श्रीमान तथा धीमान प्रभावित हुए।

अध्यात्मबीज को बोआई और सम्प्रदाय परिवर्तन

दीक्षापर्याय में इक्कीस वर्ष रहकर महाराजश्री ने सौराष्ट्र के अनेक प्रमुख शहरों में चातुर्मास किये और शेष समय में सैकड़ों छोटे-बड़े ग्रामों में विहार किया। गुरुदेव सम्प्रदाय में थे, तब भी प्रत्येक प्रवचन में भवान्तकारी सम्यग्दर्शन पर अत्यन्त-अत्यन्त भार देते थे। वे कहते:—'इस जीव ने

व्यवहारचारित्र अनन्त बार पाले हैं, किन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। सम्यक्त्व सरल नहीं, लाखों-करोड़ों में किसी विरल जीव को ही वह होता है। सम्यक्त्वी को तो मोक्ष के अनन्त अतीन्द्रिय सुख की बानगी प्राप्त हो गई है। वह बानगी मोक्ष के सुख के अनन्तवें भाग होने पर भी अनन्त हैं।' इस प्रकार सम्यग्दर्शन का अद्भुत माहात्म्य अनेक सम्यक् युक्तियों से, अनेक प्रमाणों से और अनेक सचोट दृष्टान्तों से वे श्रोताओं को हृदयंगत कराते थे। उनका प्रिय और मुख्य विषय सम्यग्दर्शन था। तदुपरान्त सम्यक्त्व प्रधान उनके प्रवचनों में गृहीत मिथ्यात्व को चूर-चूर करनेवाले वज्रप्रहार भी कोई अद्भुत आते थे! वे उस विषय में जो कहते थे, उसका कुछ नमूना, पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के ज्येष्ठ बन्धु स्व. श्री ब्रजलालभाई ने 63 वर्ष पहले लिखी हुई हाथ नोंध में से, यहाँ दे रहे हैं:—

"प्रभु का सच्चा श्रावक किसी भी देव की सहायता नहीं चाहता। साक्षात् सच्चा कोई देव या इन्द्र आकर हजारों रूप बनाकर चमत्कार करे तो भी सम्यक्त्वी श्रावक कहता है कि 'वह तेरी शक्ति है तो तू कर सकता है, किन्तु यदि मेरे अशुभ का उदय नहीं होवे तो तू मेरा एक रोम भी नहीं हिला सकता और यदि मेरे शुभ का उदय नहीं होवे तो तू मेरा शुभ तीन काल में नहीं कर सकता।' प्रभु महावीर के श्रावक ऐसे दृढ़ श्रद्धावान होते हैं।

बहुत से लोग ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर भी कुलदेवियों को नमन करते हैं। किन्तु कहनेवालों को तीर्थंकरों के स्वरूप का भान नहीं है। जो बात स्वयं को करनी होती है, वह ठेठ तीर्थंकरों के नाम चढ़ा देते हैं, अर्थात् फिर अपने को वैसा करने में बाधा नहीं। जिन महापुरुष के जन्म समय में चौदह

राजुलोक के पुद्गल क्षणभर परिवर्तन को प्राप्त होते हैं—प्रकाश होता है, जिनके जन्मप्रसंग में इन्द्रों के आसन चलायमान होते हैं, शकेन्द्र जैसे भी जिनकी माता को 'धन्य रत्नकूखधारिणी' कहकर नमस्कार करते हैं और जन्मोत्सव मनाते हैं, तो लोकोत्तर पुरुष, इन्द्र के सेवक के भी सेवक की सेविका ऐसी देवी को वह नमस्कार करेंगे? तीर्थंकरों का स्वरूप समझना जीव को कठिन पड़े ऐसा है। अहा! बिजली पड़े और पहाड़ के टुकड़े हो जायें, ऐसी गुरुदेव की मिथ्यात्वभेदिनी सिंह गर्जना थी!

उनके ज्ञान-वैराग्य-मुद्रित आदर्श जीवन तथा कल्याणबोधक तत्त्वस्पर्शी सचोट सदुपदेश के प्रति हजारों श्रोताओं को बहुमान प्रगट हुआ। बाह्य क्रियाकाण्ड में लुप्त हुए अध्यात्मधर्म का बहुत उद्योत हुआ। सम्प्रदाय की दीक्षित पर्याय में गुरुदेव को मात्र शास्त्र-स्वाध्याय और तत्त्वचिन्तन की ही धुन रहती। चारित्रपालन भी बहुत कड़क था। उनकी परिणति ऐसी आत्मानुमुखी थी कि उन्हें सरस-नीरस आहार के प्रति उपेक्षावृत्ति रहती, सामान्यतः नीरस आहार लेते। महीने में अष्टमी आदि पर्व के चार उपवास तो करते ही, किन्तु शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष आहार न मिले तो कभी-कभी उपवास हो जाता था। हमेशा सादा और निर्दोष आहार लेते। उनका जीवन जगत् से एकदम उदास और केवल आत्माभिमुख था। सम्प्रदाय में भी उनके ज्ञान-वैराग्य से प्रभावित होकर समाज को इतना अधिक भक्तिभाव उछलता कि जब वे आहार के लिये पधारते, तब गलियों में हरएक द्वार पर भक्तों के झुण्ड प्रतीक्षा करते और पधारो! पधारो! कहकर भावभरी विनय करते थे। जिन्हें आहारदान का लाभ मिलता, उन्हें तो 'अहो! मानों साक्षात् कल्पवृक्ष

आँगन में फला हो' ऐसे आनन्द का पार नहीं रहता था। भक्तहृदयों में उनके प्रति ऐसा भक्ति भरा बहुमान होने पर भी वे तो उसके प्रति एकदम निःस्पृह और उदासीन थे। थोड़े ही वर्षों में उनके प्रखर ज्ञान, दृढ़ चारित्र और प्रवचनातिशय की सुवास सम्प्रदाय में इतनी अधिक फैल गई कि समाज उनका आदर एवं बहुमान 'काठियावाड़ के कोहिनूर'—नाम से करता था। ऐसी असाधारण प्रतिष्ठा के धनी ऐसे इस महापुरुष को अन्तर में समयसार प्ररूपित वास्तविक वस्तुस्वभाव तथा शुद्धात्मानुभूतिप्रधान वास्तविक निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैनधर्म सत्य लगता था, परन्तु बाहर में स्थानकवासी जैन साधु का वेश तथा आचार था; सत्यमार्ग की प्रभावना में बाधकरूप यह विषम स्थिति उन्हें खटकती थी। इसलिए उन्होंने सोनगढ़ आकर विक्रम संवत् 1991 में स्थानकवासी जैन सम्प्रदाय का त्याग किया। हजारों श्रोताओं की उपस्थिति में गर्जता सिंह केवल सनातन सत् के हेतु जगत के ख्याति-लाभ-पूजा से एकदम निरपेक्षरूप सोनगढ़ के एकान्त स्थल में जाकर बैठ गया।

प्रभावना का सूर्योदय

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का 'परिवर्तन' अर्थात् अध्यात्मप्रधान शुद्ध दिगम्बर जैनधर्म की सातिशय प्रभावना का सूर्योदय। प्रारम्भ में उनकी अज्ञानतिमिरभेदक तेजस्वी किरणें सौराष्ट्र तक ही सीमित थीं, परन्तु अनुक्रम से उसके क्षितिज विस्तृत होते गये और वह पुनीत प्रभावना-प्रभा गुजरात तथा भारतवर्ष के अन्य समस्त भागों में व्याप्त हो गई। अरे! मात्र भारत में ही नहीं, किन्तु विदेशों में भी उस अध्यात्मविद्या की पावन किरणें फैल गईं।

पूज्य गुरुदेव स्पष्ट कहते:—**अनुभवप्रधान दिगम्बर जैनधर्म, यह**

कोई सम्प्रदाय नहीं है, यह तो सनातन वस्तुस्वभाव है-आत्मधर्म है। उसका किसी अन्य धर्म के साथ मेल है ही नहीं। उसका अन्य धर्म के साथ समन्वय करना वह रेशम और टाट के समन्वय जैसा बिल्कुल व्यर्थ है। दिगम्बर जैनधर्म की वास्तविक जैनधर्म है और आभ्यन्तर तथा बाह्य दिगम्बरत्व बिना कोई जीव मुनिदशा या मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता।—ऐसी उनकी दृढ़ मान्यता थी।

सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेव स्थायी होने के बाद, उनके प्रभावना उदय को, विशेषरूप से उद्योतकारी ऐसे अनेक पावन प्रसंग बने। 'परिवर्तन' होने के बाद पहले ही वर्ष में बोटाद से स्थानकवासीसंघ के श्री रायचन्द्र रतनशी गाँधी लगभग साठ जितने प्रतिष्ठित अग्रगण्य जन साम्प्रदायिक विरोध को अवगणना करके हिम्मतपूर्वक, पर्यूषण करने आये, जिससे सौराष्ट्र के परिचित अनेक धर्मप्रेमी स्थानकवासियों के लिये निर्भयरूप से सोनगढ़ आने का मार्ग खुल गया। पूज्य गुरुदेव स्थानकवासी जैनों के हृदय में बस गये थे। उनके पीछे सौराष्ट्र पागल बना था; इसलिए साम्प्रदायिक व्यामोह तथा लौकिक भय को छोड़कर सोनगढ़ की ओर बहता सत्संगार्थियों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन वेगपूर्वक चढ़ता ही गया।

धर्मप्रभावना में असाधारण निमित्त

विक्रम संवत् 1993 में शासनप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा होनेवाली सातिशय धर्मप्रभावना को विशेष बल देनेवाली—उनका आत्मा प्रकृति का 'त्रिकाल मंगल द्रव्य' होने की जिनेन्द्रकथित प्रसिद्धि करनेवाली—ऐसी एक महामंगल घटना बन गई। जिन्होंने पूज्य गुरुदेव के सम्यक्त्वप्रभावक पुनीत तीर्थ को सार्थक किया है, अर्थात् पूज्य कहानगुरु के परम प्रताप से जिन्होंने

विक्रम संवत् 1989 में मात्र 18 वर्ष की लघु वय में अतीन्द्रिय आनन्द परिणत स्वानुभूति प्राप्त की है, उन पवित्र आत्मा प्रशममूर्ति पूज्य बहनश्री चम्पाबहिन को, चैत्र कृष्णा (वैशाख कृष्णा) अष्टमी के दिन प्रातः 9–10 बजे के आसपास, शुद्धात्मध्यानमयी निर्मल निर्विकल्प निजानुभूति में से उपयोग विकल्प में आने पर, मतिज्ञान की स्मरणपरिणति में कोई सातिशय सहज निर्मलता होने पर, ज्ञानोपयोग की स्वच्छता में पूर्वभवों का सहज स्पष्ट और सम्यक् जातिस्मरणज्ञान प्रगट हुआ। उस ज्ञान में सर्व प्रथम श्री सीमन्धर भगवान, कुन्दकुन्दाचार्यदेव, विदेह के गुणीयल राजकुमार इत्यादि का स्पष्ट स्मरण आया। पूज्य गुरुदेवश्री को दीक्षा लेने के बाद 'अरे! मैं तो तीर्थंकर का जीव हूँ' वगैरह अपने भविष्य तथा भूतकाल के भव सम्बन्धी जो अन्दर से स्वयं सहज आता था, और जो बात वे बाहर में नहीं कहते थे, उसका स्पष्ट हल पूज्य बहिनश्री के जातिस्मरणज्ञान द्वारा प्राप्त होने से उनके अन्तर्जीवन में एक प्रकार का असाधारण प्रकाश हुआ। पूज्य गुरुदेव ने बहिनश्री के जातिस्मरणज्ञान की गम्भीर बातें प्रारम्भ में बहुत वर्षों तक गुप्त रखी, परन्तु कालक्रम से सच्चे आत्मार्थी जीवों को उपकारी होंगी ऐसा लगने से, उसके कहने योग्य कितने ही विवरण धीरे-धीरे वे मुमुक्षुओं के समक्ष अत्यन्त धर्मोल्लासपूर्वक रखने लगे। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री के श्रीमुख से, धर्मप्रभावना में निमित्त हो, ऐसे इस पवित्र ज्ञान के विषय में जानने का मुमुक्षु समाज को सौभाग्य प्राप्त हुआ।

प्रभावना केन्द्र का निर्माण

पूज्य गुरुदेव का जीवन तथा उनका उपदेश प्रथम से ही अध्यात्मतत्त्व

से ओतप्रोत था। वे अपने घोटे गये हृदयमंथन से निकाले हुए तीर्थंकरदेव के वचनामृत मुमुक्षुओं को प्रवचन में परोसते और निहाल करते, जिससे जिज्ञासुओं का प्रवाह सोनगढ़ की तरफ बढ़ता जाता था। 'परिवर्तन' स्थल 'स्टार ऑफ इण्डिया' छोटा पड़ने लगा; इसलिए विक्रम संवत् 1994 में पूज्य गुरुदेव के प्रवचन तथा ज्ञानध्यान और निवास के लिये 'स्वाध्यायमन्दिर' का नवनिर्माण हुआ। अहा! क्या उसका आनन्दकारी मंगल अवसर! उद्घाटन होने पर, पहले ही प्रवचन में धर्म की प्रभावना में कारणभूत हो ऐसी कतिपय गम्भीर बातों का गुरुदेव के गूढ संकेत किया और उसके सन्दर्भ में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की खूब महिमा गाई। मानो कि सनातन सत्य स्वानुभूति प्रधान वीतराग दिगम्बर जैनधर्म की पुनीत प्रभावना का मंगलस्तम्भ रोपते हों, ऐसा वह भव्य प्रसंग था।

प्रभावना की फली-फूली पीढ़ी

पूज्य गुरुदेव ने स्वाध्यायमन्दिर में मंगल पदार्पण किया, उसके बाद तो वीतराग दिगम्बर जैनधर्म की फलती-फूलती पीढ़ी शुरु हो गई। गुरुदेव ने सोनगढ़ में स्थायी निवास करके भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के श्री समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय नियमसार, और अष्टपाहुड तथा अन्य आचार्यदेवों के परमात्मप्रकाश, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पुरुषार्थसिद्धिउपाय, बृहद्द्रव्यसंग्रह, योगसार, पद्मनन्दिपंचविंशतिका आदि अनेक शास्त्रों तथा मोक्षमार्गप्रकाशक, समयसार-कलशटीका, समयसार-नाटक, अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन वगैरह अनेक ग्रन्थों पर अनेक बार, तथा षट्खण्डागम (धवला) 1 भाग तथा जयधवला पहले भाग पर

स्वानुभूतिरसप्रधान अध्यात्मामृत भरे व्याख्यान दे करके श्री जिनेन्द्रदेव प्रणीत परमागम निहित सूक्ष्म रहस्य मुमुक्षुसमाज को, अन्तर में शुद्धात्मसाधना के परमप्रेम से, खूब-खूब समझाया—अमृत के धोध बरसाये।

अहा! उस अमृतधोध की तो क्या बात? इस अमृतधोध की महिमा व्यक्त करते हुए धन्यावतार पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन ने कहा है :—पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी मिले, वह एक अनुपम सौभाग्य है। मार्ग बतानेवाले गुरु मिले और वाणी श्रवण करने को मिले, वह मुमुक्षुओं का परम सौभाग्य है। प्रतिदिन सुबह-दोपहर को दो बार ऐसा उत्तम सम्यक्तत्त्व सुनने को मिलता है, इसके जैसा अन्य क्या सद्भाग्य हो? श्रोता को अपूर्वता लगे और पुरुषार्थ करे तो वह आत्मा के समीप आ जाये और जन्म-मरण टल जाये—ऐसी अद्भुत वाणी है। ऐसा श्रवण का जो सौभाग्य मिला है, उसे मुमुक्षु जीव को सफल कर लेना योग्य है। पंचम काल में निरन्तर अमृत झरती गुरुदेव की वाणी भगवान का विरह भुलाती है।

तीर्थयात्रा और विहार द्वारा अध्यात्म प्रभावना

वि. सं. 1995, पौष कृष्णा दसमी के दिन—पूज्य गुरुदेवश्री 300 मुमुक्षुओं के संघ सहित पैदल विहार कर शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करने पधारे। इस मंगल यात्रा में पूज्य गुरुदेव ने तीर्थ की और तीर्थयात्रा की महिमा बताई, जिससे मुमुक्षु जीवन में अध्यात्म तीर्थप्रभावना के साथ में वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति भक्तिमय व्यवहार तीर्थप्रभावना का भी भाव जागृत हुआ। यह पवित्र यात्रा करके, थोड़े दिनों के बाद राजकोट का, चातुर्मास के लिये मंगल विहार हुआ। विहार में बीच में आते छोटे-बड़े अनेक गाँवों को

पूज्य गुरुदेव ने अध्यात्मोपदेश से पावन किया। चातुर्मास के समय राजकोट में समयसार, पद्मनन्दिपंचविंशति, आत्मसिद्धि, अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे ? वगैरह पर भाववाही प्रवचन, तत्त्वचर्चा वगैरह देकर अध्यात्मतत्त्व खूब-खूब परोसा, जिससे सम्प्रदाय के अनेक सुपात्रजीव, श्रद्धा में परिवर्तन लाकर दिगम्बर जैन मुमुक्षु हुए। चातुर्मास के बाद पूज्य गुरुदेव ने भगवान नेमिनाथ की तप, केवल और निर्वाणभूमि गिरनार की यात्रा के लिये संघ सहित प्रस्थान किया। अहा! उस पवित्र यात्रा प्रसंग में बाईसवें तीर्थेश्वर भगवान श्री नेमिनाथ के प्रति पूज्य गुरुदेव, पूज्य बहिनश्री तथा यात्रा संघ के उल्लास और भक्ति की तो क्या बात ? प्रथम टूक में भगवान नेमिनाथ के दीक्षा और केवल कल्याणक से पावन हुए सहस्राम्रवन में तथा निर्वाण कल्याणधाम गिरनार की पाँचवीं टूक पर जो भक्तिरस उछला था, वह वास्तव में कुछ अद्‌भुत था! पूज्य गुरुदेव ने अन्तर के गहरे भक्तिभाव से 'हुं एक शुद्ध, सदा अरूपी, ज्ञान-दर्शनमय खरे' की धुन तथा 'अपूर्व अवसर ऐवो क्यारे आवशे ? गवाकर जो अपूर्वभक्ति कराई, उस प्रसंग का आनन्द से ओतप्रोत प्रशान्त वातावरण भक्तों के हृदय में उत्कीर्ण हो गया है। उसका पवित्र स्मरण आज भी भक्तचित्त को प्रभावित करता है।

भरतक्षेत्र में सीमन्धरयुग

गिरनार में उछली हुई जिनेन्द्रभक्ति के बाद, स्वर्णपुरी में श्री जिनेन्द्र भगवन्तों की पधरावनी के मंगल चिह्न दिखने लगे। श्री नानालालभाई वगैरह जसाणी भाईयों की ओर से श्री सीमन्धर भगवान के नूतन भव्य जिनमन्दिर का निर्माण होने लगा। यद्यपि भक्तों के हृदयमन्दिर में सीमन्धरनाथ की मंगल

पधरावनी तो, जातिस्मरणज्ञान द्वारा, वि.सं. 1993 से ही हो गई थी, तो भी अब, गत पूर्वभव में प्राप्त उन विदेहीनाथ के समवसरण में दिव्यध्वनि के श्रवणरूप पवित्र समागम तथा दिव्यध्वनि में आये हुए पूज्य गुरुदेव के भूत तथा भविष्य के वृत्तान्तरूप अन्य उपकारों के अहोभाव से नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में मूलनायकरूप से श्री सीमन्धरनाथ की पधरावनी प्रतिष्ठा वि.सं. 1997 की फाल्गुन शुक्ला दूज को हुई। अहा! तब से हमारे इस भरतक्षेत्र में श्री सीमन्धरस्वामी के मंगल युग का प्रारम्भ हुआ। गत राजकुमार के भव में साक्षात् भेंटे हुए श्री सीमन्धर भगवान की (भले स्थापना अपेक्षा से) पुनः भेंट होने से पूज्य गुरुदेव को कोई अद्भुत आनन्दोल्लास था, जिससे उन्होंने अपने पवित्र हस्त से प्रतिष्ठा भी कोई अपूर्व भक्तिभाव से की थी।

प्रभावनायोग की मंगल भविष्यवाणी

वि.सं. 1997 में श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर का भव्य पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होने के पहले, पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग की भविष्य सूचक एक भव्य घटना घटी थी। प्रमुख दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराज पौष कृष्णा चतुर्दशी के दिन शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके, संघसहित सोनगढ़ आये थे। आचार्यश्री के आग्रहवश गुरुदेव ने पहले आधा घण्टा प्रवचन दिया। प्रवचन के अतिरिक्त अन्य समय में भी समयसार की 13वीं गाथा सम्बन्धी खूब तत्त्वचर्चा हुई। गुरुदेव के अध्यात्म-तत्त्वप्रधान प्रवचन, तत्त्वचर्चा सुनकर और श्वेताम्बर बहुल सौराष्ट्र प्रदेश में गुरुदेव द्वारा दिगम्बर जैनधर्म के पुनरुदय का शुभारम्भ देखकर आचार्यश्री मन में बहुत प्रसन्न हुए। विहार के वक्त थोड़ी दूरी पर जाकर आचार्यश्री खड़े रह

गये और अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बोले:—**'हमें यहाँ का धार्मिक वातावरण देखकर खुशी हुई है, तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं जाते; यहाँ ऐसा कुछ योग है, ऐसा हमें लगता है।'** इतना कहकर वे आगे विहार कर गये। इन शब्दों को सुनकर वहाँ खड़े भाई अन्तर में बहुत प्रसन्न हुए और 'एक प्रमुख दिगम्बर आचार्य के मुख से गुरुदेव के प्रभावनायोग की, तीर्थंकर के साथ तुलना करके, भविष्यवाणी के कितने सुन्दर शब्द प्रसन्नता से सहज में निकल गये।' इसका आश्चर्य अनुभवने लगे।

परम पूज्य श्री सीमन्धरनाथ पधारे, उसके बाद उनके पुनीत प्रताप से पूज्य गुरुदेव द्वारा वीतराग जिनशासान की बहुत-बहुत प्रभावना हुई। जैसे-जैसे पूज्य गुरुदेव का प्रभावनायोग विस्तृत होता गया, वैसे-वैसे प्रत्येक गाँव में मुमुक्षुमण्डल, स्वाध्यायमन्दिर और जिनमन्दिर बनते गये। सुवर्णपुरी में भी विभिन्न प्रकार के नूतन जिनायतन आदि का निर्माण हुआ।

प्रभावनासौध के प्रबल प्रहरी

पूज्य गुरुदेव के प्रभावना-उदय से सोनगढ़ की ओर आकर्षित बहुत सत्संगार्थियों में मुख्य थे एक श्रीमान् नानालालभाई जसाणी और दूसरे श्रीमान् रामजीभाई दोशी। माननीय श्री नानालालभाई ने—जो अमीर स्वभाव के और देव-गुरु के प्रति भक्ति की भावनावाले थे उन्होंने—पूज्य गुरुदेव के सत्समागम और उनकी देव-गुरु भक्तिभींजी स्वानुभवरसभरी अध्यात्मवाणी के सुप्रभाव से प्रभावित होकर श्री जिनमन्दिर-निर्माण वगैरह अनेक छोटे-बड़े शासन प्रभावना के कार्यों में अपना भक्तिभरा योगदान देकर असाधारण लाभ लिया था। जैसे माननीय श्री नानालालभाई अर्पणतावाले थे, वैसे

माननीय श्री रामजीभाई दोशी बुद्धिशाली, तत्त्वविचारक और शूरवीर व्यक्तित्व के धारक थे। उन्होंने पूज्य गुरुदेव के शासन की जीवनपर्यन्त सेवा की थी। स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट की स्थापना की, संस्था का कार्यभार वर्षों तक संभाला, बहुत वर्षों तक 'आत्मधर्म' पत्र का सम्पादन किया, संस्था द्वारा प्रकाशित होनेवाले मूल शास्त्र तथा प्रवचन साहित्य छपाने के पहले जाँच कर लेना इत्यादि अनेक प्रकार से बहुमूल्य सेवा दी थी।

गुरुदेव के भक्त समुदाय में अग्रगण्य इन दोनों महानुभावों को नैतिक प्रतिष्ठा उत्तम प्रकार की थी। पूज्य गुरुदेव के 'परिवर्तन' के बाद विरोध की जो आँधी आई थी, उस समय मु. श्री रामजीभाई संरक्षण के लिये ढाल का काम देते। तत्त्व के विषय में गुरुदेव के विचारों से कट्टर विरोध रखनेवालों को भी कहना पड़ता था कि—कानजीस्वामी ने सौराष्ट्र के दो सिंहों को अपने पक्ष में ले लिया है, एक सिंह धीमान श्री रामजीभाई वकील और दूसरा सिंह श्रीमान् नानालालभाई जसाणी।

इन दोनों महानुभावों के उपरान्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के ज्येष्ठ बन्धु श्री ब्रजलालभाई तथा वडील बन्धु श्री हिम्मतलालभाई शाह का भी पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग में बहुमूल्य योगदान है। आत्मार्थी मुमुक्षु भाईश्री ब्रजलालभाई ने अपने स्थापत्यविषयक कौशल्य द्वारा, गुरुदेव की साधनाभूमि में निर्मित सभी भव्य जिनायतनों के तथा दूसरे गाँवों के जिनमन्दिरों के निर्माण में भक्तिभीनी सेवा दी थी। संस्था के शासन में भी अच्छा सहकार दिया था। गहन और आदर्श आत्मार्थी अध्यात्मरसिक आदरणीय पण्डितजी श्री हिम्मतभाई के आत्मार्थयुक्त योगदान की तो बात ही

क्या? पंच परमागमों के गुर्जरभाषा में गद्यपद्यानुवाद करके और इसके उपरान्त दूसरी अनेकविध काव्यमय साहित्य कृतियाँ रचकर, उन्होंने मुमुक्षु समाज पर महान उपकार किया है। संक्षेप में कहें तो, गुरुदेव के शासन को उज्ज्वल बनाने में, पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के बाद उनका नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। उपरोक्त चारों महानुभावों को पूज्य गुरुदेव के प्रति वास्तव में अनन्य भक्तिभावपूर्ण अर्पणता थी।

प्रभावनोदय की अभिवृद्धि

वि.सं. 1998 में विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण की भव्य प्रतिष्ठा हुई, श्री कुन्दकुनद-कुमार-ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हुई और 1999 में राजकोट में चातुर्मास के हेतु झालावाड में होकर सौराष्ट्र का लम्बा विहार हुआ। समवसरण की भव्य रचना होने से मानों कि सुवर्णपुरी में विदेहक्षेत्र खड़ा हुआ हो ऐसा सबको प्रमोद हुआ। ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना से बच्चों में गुरुदेव द्वारा प्रबोधित अध्यात्मतत्त्व के संस्कार-सींचन का साधन प्राप्त हुआ। यद्यपि वि.सं. 1997 से ग्रीष्मावकाश के दिनों में बच्चों के लिये धार्मिक शिक्षण शिविर चलाना शुरु हो गया था, परन्तु वह सिर्फ 21 दिन के लिये सीमित था। ब्रह्मचर्याश्रम में तो सतत तीन साल तक पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहने और तत्त्वज्ञान का अभ्यास करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसके बाद मुमुक्षु समाज के छोटे बच्चों में पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित अध्यात्म तत्त्वज्ञान के सुसंस्कार पड़े इस हेतु से 'श्री जैन विद्यार्थीगृह' खोला गया था, जिससे क्रमशः मुमुक्षुसमाज के हजारों बच्चों को वीतराग तत्त्वज्ञान का अच्छा लाभ मिला, यह भी पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग का एक अंग था। माननीय

श्री नानालालभाई जसाणी, तथा श्री रामजीभाई दोशी वगैरह की विनती से चातुर्मास के लिये राजकोट की ओर विहार होते जो भव्य प्रभावना हुई, उसकी तो क्या बात? हर एक गाँव में भव्य स्वागत होता, व्याख्यानों में हजारों की संख्या उमड़ती और पूज्य गुरुदेव की मिथ्यात्वभेदिनी वज्रोपम वाणी तो मानों तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि! गुरुदेव का अध्यात्मोपदेश सुनकर बड़े-बड़े बुद्धिमान श्रोता भी विस्मयविमूढ़ हो जाते थे। जैनदर्शन में सिर्फ बाह्य क्रियाकाण्ड ही नहीं है किन्तु उसमें तर्कशुद्ध सूक्ष्म अध्यात्मविज्ञान भरपूर भरा हुआ है, ऐसा तथ्य समझ में आते ही उन्हें जैनदर्शन एवं उसे सरल और स्पष्टरूप से समझानेवाले पूज्य गुरुदेव के प्रति अन्तर में बहुमार प्रगटता। वास्तव में मार्ग प्रभावक गुरुदेव ने साधना का अध्यात्मपंथ प्रकाशित करके देशविदेश में हजारों जीवों को जागृत करके महान उपकार किया है। अन्तर से स्वयं खोजा हुआ स्वानुभूति प्रधान अध्यात्ममार्ग अर्थात् दिगम्बर जैनधर्म जैसे-जैसे पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रसिद्ध होता गया, वैसे-वैसे अधिक-अधिक संख्या में जिज्ञासु जीव उनके प्रति आकर्षित हुए—उनका प्रभावना—उदय दिनोंदिन वृद्धिगत होता रहा।

पूज्य गुरुदेव का अध्यात्मोपदेश देश-विदेश में जिज्ञासुओं के घर-घर में पहुँचे, इसलिए सं. 2000 में 'आत्मधर्म' मासिक पत्र का प्रकाशन शुरु हुआ। डेढ़ साल के बाद हिन्दी 'आत्मधर्म' का भी प्रकाशन शुरु हुआ। ये दोनों पत्र आज भी नियमितरूप से प्रकाशित हो रहे हैं। थोड़े वर्षों तक क्रमशः 'सद्गुरु प्रवचन प्रसाद' और 'सुवर्णसंदेश' नामक दैनिक एवं पाक्षिक प्रवचनपत्र भी प्रकाशित हुए थे। तदुपरान्त समयसारादि कुन्दकुन्द-परमागम

एवं अन्य मूल शास्त्र तथा प्रवचनग्रन्थ इत्यादि अध्यात्म साहित्य बहुत प्रकाशित हुआ। हजारों प्रवचन टेप में रेकॉर्ड किये गये, जिससे धर्मप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री का अध्यात्मोपदेश घर-घर में पहुँच गया। शुरुआत में गुरुदेव का प्रभावनोदय सौराष्ट्र-गुजरात तक सीमित था।

हिन्दीभाषी क्षितिज में प्रभावना-किरणों का विस्तरण

हिन्दी 'आत्मधर्म' से तथा उसके द्वारा आकर्षित इन्दौर के श्री हुकमचंदजी सेठ सोनगढ़ आकर अतिशय प्रभावित होने से, हिन्दीभाषी दिगम्बर जैनों का प्रवाह सोनगढ़ की ओर विशेष चढ़ने लगा। होते-होते गुरुदेव का प्रभाव इतना अधिक विस्तृत हो गया कि हजारों मुमुक्षु भाई बहन, दूर देशों से, अनेक दिगम्बर त्यागी और ब्रह्मचारी अश्रुतपूर्व अध्यात्म-उपदेश का अनुपम लाभ लेने के लिये आने लगे। उत्सव के दिनों में स्वाध्यायमन्दिर और जिनमन्दिर छोटे पड़ने लगे। प्रवचन के लिये भव्य एवं विशाल 'भगवान श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मण्डप' बाँधा गया। उसके शिलान्यास के अवसर पर श्री हुकमचन्दजी सेठ उपकृतभाव से बोले थे कि—'इन महाराजजी के उपदेश के प्रभाव से बहुत जीवों को लाभ हुआ है। मेरा भी अहोभाग्य है कि मुझे महाराजश्री के चरणों की सेवा का लाभ प्राप्त हुआ है। मेरी तो भावना है कि मेरा समाधिमरण महाराज के समीप में हो। आपके पास मोक्ष जानेका सीधा रास्ता है।' उसके उद्घाटन के समय श्री हुकमचन्दजी सेठ, गुरुदेव के प्रभावना-उदय से अत्यन्त प्रभावित होकर, अपना आनन्द व्यक्त करते हुए बोले:—'मेरी सर्व सम्पत्ति पूज्य स्वामीजी के चरणों में न्यौछावार कर दूँ तो भी कम है—ऐसा यहाँ का वातावरण देखकर, मुझे उल्लास आ रहा है।'

विद्वत्परीषद का अधिवेशन

गुरुदेव की वाणी से अकेले श्रीमन्त ही नहीं किन्तु बड़े-बड़े धीमन्त भी प्रभावित हुए हैं। उद्घाटन के बाद तुरन्त ही एक महीने में प्रवचनमण्डप में 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद' का तीसरा वार्षिक अधिवेशन, सिद्धान्ताचार्य पण्डित श्री कैलाशचन्द्र की अध्यक्षता में रखा गया था। न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त वगैरह अनेकविध विद्वता के स्वामी ऐसे कुल मिलाकर 32 उद्भट विद्वान आये थे। पूज्य गुरुदेवश्री की अध्यात्मवाणी से वे सब बहुत प्रभावित हुए थे।

विद्वत्परिषद ने, सौराष्ट्र में लुप्तप्राय दिगम्बर जैनधर्म का पुनरभ्युदय होने में प्रबल कारणभूत ऐसे पूज्य गुरुदेव के सातिशय प्रभावनायोग से प्रभावित होकर, पूज्य गुरुदेव के प्रति बहुमान पूर्वक सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया था।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद का महत्वपूर्ण प्रस्ताव

आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा दिगम्बर जैनधर्म का जो संरक्षण एवं संवर्धन हो रहा है, उसका विद्वत्परिषद श्रद्धावनत होकर अभिवादन करती है तथा अपने सौराष्ट्र के साधर्मी भाई-बहिनों के सद्धर्मप्रेम से प्रमुदित होती हुई हृदय से उनका स्वागत करती है। विद्वत्परिषद उसे परम सौभाग्य और गौरव का विषय मानती है कि—आज दो हजार साल के बाद भी महाराजश्री ने श्री 1008 वीर प्रभु के शासन के मूर्तिमान प्रतिनिधि भगवान कुन्दकुन्द की वाणी को समझकर सिर्फ अपनी ही पहिचान की है इतना ही नहीं परन्तु हजारों और लाखों मनुष्यों को एक जीव-उद्धार के सत्यमार्ग पर

चलाने का मार्ग बता दिया है। विद्वत्परिषद का दृढ़ निश्चय है कि महाराज के प्रवचन, चिन्तन तथा मनन द्वारा दिगम्बर जैनधर्म के सिद्धान्तों का जो स्पष्टीकरण तथा विवेचन हो रहा है, वह सिर्फ साधर्मियों की दृष्टि को अन्तर्मुख करके ही नहीं रुकेगा परन्तु वह सतत ज्ञानाराधकों को अप्रत्ता के साक्षात् परिणाम—आचरण के प्रति भी उद्यमशील बनाएगा और सर्व मनुष्यों को अन्तर्बाह्य पराधीनता से छुड़ानेवाले रत्नत्रय की प्राप्ति करानेवाला वातावरण सहज ही उत्पन्न करेगा। अतः इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ-साथ परिषद् यह भी घोषित करती है कि, जो उनका कर्तव्य है, वह हमारा ही है, इसलिए इस प्रवृत्ति में हम उनके साथ हैं।

समर्थक

पण्डित महेन्द्रकुमार जैन, न्यायाचार्य
पण्डित परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ
पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जैन, न्यायतीर्थ

प्रस्तावक

प्रो. खुशाल जैन
(सर्वानुमत से पारित दि. 8-3-1947)

कैलाशचन्द्र

(प्रमुख, श्री भा.दि. जैन विद्वत्परिषद्)

❀ ❀ ❀

सोनगढ़ के आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित होकर एक मूर्धन्य विद्वान प्रसन्नता से अपने प्रवचन में अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए ऐसे आशय का कुछ बोले थे:—'पण्डित मण्डनमिश्र का घर कहाँ है ?' पनिहारी ने साश्चर्य कहा:—क्या आप पण्डित मण्डनमिश्र का घर नहीं जानते ? सीधे चले जाइये और जिस घर के दालान में टंगे हुए पिंजड़े में तोता और मैना 'स्वतः प्रमाणं, परतः प्रमाणं' रटते हों, वही मण्डनमिश्र का घर! उसी प्रकार हमें लगता है कि 'सोनगढ़ कहाँ है' ऐसा पूछनेवाले को हम यही कह सकते हैं:—जहाँ चौबीसों घण्टे आबालवृद्ध सब लोग, स्त्रियाँ एवं बालिकाएँ भी, एक विज्ञानघन आत्मा की चर्चा वार्ता करते हुए देखे जाते हों वही है कानजीस्वामी का सोनगढ़! सोनगढ़ जैसा आध्यात्मिक प्रसन्न वातावरण अन्यत्र नहीं देखा।

पूज्य गुरुदेव के प्रभावना-उदय से प्रभावित हुए, दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के मूर्धन्य पण्डित स्व. श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य ने अपना प्रमोद व्यक्त करते हुए 'जैनसन्देश' के सम्पादकीय में दो तीन बार ऐसे आशय का लिखा था कि—वर्तमान दिगम्बर जैनाम्नाय में गिने जानेवाले हम मूर्धन्य पण्डितों ने गोम्मटसार एवं न्यायशास्त्र पढ़े थे, किन्तु आजतक समयसार का नाम सुना तो था लेकिन उसे देखा नहीं था। यह सब श्री कानजीस्वामी की ही देन है कि हम जैसे पण्डितों को समयसार के रसास्वाद का मौका दिया।... आज यदि शास्त्र की चौकी पर समयसार नहीं होगा तो श्रोता सुनने को तैयार नहीं है। वस्तुतः यह सब श्री कानजीस्वामी का ही सुप्रताप है।

—विद्वानों के ऐसे भावसभर हृदयोद्‌गार जानकर सचमुच आश्चर्य का

अनुभव होता है कि पूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक प्रभाव ने भारतवर्ष के मूर्धन्य दिगम्बर जैन धीमन्तों को भी कितना प्रभावित किया है!

देश-विदेश में विस्तरित गुरुदेव का प्रभाव

सूर्यप्रकाश की तरह गुरुदेव का प्रभाव और अध्यात्म का प्रचार भारतवर्ष में अत्यन्त तेजी से फैलने लगा। सौराष्ट्र में भारतवर्ष के अन्य राज्यों में क्रमशः अनेक स्थानों में स्वाध्यायमन्दिर और शुद्धाम्नायी दिगम्बर जिनमन्दिरों का नवनिर्माण, पंचकल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई, गाँव-गाँव में आत्मार्थलक्षी शास्त्रप्रवचन की पद्धति प्रचलित हुई, पंच परमागम श्री समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकायसंग्रह, नियमसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, समाधितन्त्र, इष्टोपदेश, द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्गप्रकाशक वगैरह मूल शास्त्र तथा प्रवचनसाहित्य की पुनः पुनः अनेक आवृत्तियाँ मुद्रित होकर अनेक लाखों की संख्या में, भगवान श्री कुन्दकुन्द कहान जैन शास्त्रमाला के 170 पुष्पों तथा अन्य प्रकाशन संस्थाओं द्वारा, वीतराग साहित्य का विशाल प्रकाशन हुआ। षट्खण्डागम जैसे महानशास्त्र भी पूज्य गुरुदेव के प्रभावना काल में प्रकाशित हुए, जिसके मर्म और महिमा पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी में मुमुक्षुओं को सुनने और समझने का महान सौभाग्य प्राप्त हुआ। और धार्मिक शिक्षण के आयोजन भी जगह-जगह हुए।

काय-वचन-मन आदि परद्रव्य-भावों से अत्यन्त भिन्न और समस्त स्थूल-सूक्ष्म शुभाशुभ विभावों से रहित ऐसे सहज-पूर्ण ज्ञानादि सामर्थ्य से भरपूर त्रिकाली निज शुद्धात्मद्रव्य के दृढ़ आलम्बन से समुद्भूत, पूज्य गुरुदेव के निर्मलज्ञान का एवं उनकी सातिशय अध्यात्मवाणी का प्रभाव, जिस तरह

सूर्य आकाश में दूर रहकर भी अपना उद्योत पृथ्वी पर फैलाता है वैसे, भारतवर्ष के पश्चिम विभाग में—सौराष्ट्रस्थित सुवर्णपुरी में—दूर रहकर भी समग्र भारत में एवं विदेशों में भी, प्रवचन-साहित्य, 'आत्मधर्म' पत्र और ऑडियो एवं वीडियो टेप द्वारा सहजरूप से फैल गया। पूज्य गुरुदेव की अध्यात्मप्रधान सातिशय महिमा भारत के कोने-कोने में सहजरूप से फैलने में उनके मंगल विहार भी निमित्त हुए हैं। वह जिनशासन प्रभावक मंगल विहार मुमुक्षु समाज की विनति से मुख्यतः पंचकल्याणक एवं वेदी प्रतिष्ठाएँ, जैनतीर्थों की यात्रा आदि प्रशस्त प्रयोजन के अर्थ हुए थे। अहा! उन मंगल प्रसंगों की भव्यता का वर्णन क्या करें? पूज्य गुरुदेव का आनन्ददायी आगमन होते ही उस-उस गाँव में सब मंगलरूप हो जाता और उनकी ज्ञानवैराग्य से भीगी बलवान अध्यात्मवाणी के श्रवण से हजारों श्रोता अश्रुतपूर्व आश्चर्य का अनुभव करते और धन्य-धन्य हो जाते थे। महान सद्भाग्य से जिनके घर पर पूज्य गुरुदेव के आहारदान का योग हो जाता, वहाँ तो एक बड़े उत्सव जैसा आनन्दमय वातावरण हो जाता था। अहा! मंगलमूर्ति गुरुदेव के मंगल आगमन से पूरा का पूरा गाँव मंगल हो जाये, तो फिर आहार के लिये अपने आँगन में वे पधारें, उस मांगल्य की बात ही क्या? गुरुदेव के पुनीत प्रभाव से सब कुछ आनन्द और मंगलमय हो जाता था।

प्रतिष्ठाओं द्वारा धर्मप्रभावना

पूज्य गुरुदेव का आन्तरिक जीवन तो शुद्धात्मसाधनामय था और बाह्य में उनका प्रभावनायोग भी किसी समर्थ आचार्य-सदृश अति महान था। मंगलकारी प्रभावनायोग से उनके करकमल से विभिन्न स्थानों में 32 पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएँ और 33 वेदी प्रतिष्ठाएँ हुई थीं। अहा! पूज्य गुरुदेव की

मंगल उपस्थिति में मनाये गये पंचकल्याणकों की क्या बात! पूज्य गुरुदेव के मंगल प्रताप से प्रत्येक प्रसंग भव्यता की चरम सीमा पर पहुँच जाते थे। गुरुदेव के प्रसंगोचित 'ऋषभस्तोत्र' वगैरह के ऊपर किये गये जिनेन्द्रभक्तिरस से भीगे अपूर्व प्रवचन श्रोतासागर को हर्षविभोर कर देने थे। प्रतिष्ठावेदी के ऊपर गर्भकल्याणक के पूर्व और बाद में होनेवाली घटनाएँ, जन्मकल्याणक, नि:क्रमणकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक और निर्वाणकल्याणक आदि प्रसंग पर इन्द्रों के द्वारा प्रस्तुत जिनेन्द्रभक्ति से भरे अद्भुत वार्तालाप एवं तत् तत् प्रसंग के साक्षात् दृश्य दर्शकों के नेत्र और हृदयों में अंकित हो जाते थे और सर्वजन अन्तर में ऐसा ही अनुभव करते थे कि इन भव्य प्रसंगों में सातिशयता लानेवाला तो पूज्य गुरुदेव का मंगल प्रभाव ही है।

भारत में विदेहीनाथ का आगमन

पंचकल्याणक क्या है? श्री जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणक माने वैमानिक स्वर्ग के इन्द्रों और देवों द्वारा मध्यलोक में मनाये जाते विश्व के सर्वोत्कृष्ट महापुरुष के गर्भ-जन्मादि मंगल महोत्सव। पूज्य गुरुदेवश्री के पुनीत प्रभावना उदय से, भरतभर में एवं विदेश में, ऐसे पंचकल्याणक के मंगल महोत्सव मनाने का और देखने का सौभाग्य मुमुक्षुजनों को बत्तीस बार प्राप्त हुआ है। उनमें सबसे पहला अवसर पूज्य गुरुदेव की साधनाभूमि सोनगढ़ में वि.सं. 1997 में जब श्री दिगम्बर जिनमन्दिर का निर्माण हुआ, तब मूलनायक विदेही जिन श्री सीमन्धर भगवान आदि जिनेन्द्र भगवन्तों की पंचकल्याणक-पुर:सर पावन प्रतिष्ठा हुई थी और अत्यन्त आनन्दोल्लास सहित महोत्सव मनाया गया था। वाह! रोमांचकारी उस मंगल महोत्सव की

तो क्या बात करें! उस भव्य अवसर के होने को अर्धशताब्दी जितना दीर्घकाल बीत जाने के बाद भी उसका स्मरण होते ही आज भी भक्तगणों के हृदय आनन्दकारी भक्तिरस से आह्लाद अनुभवते हैं।

सीमन्धर जिन! देखे लोयण आज

प्रतिष्ठा के पहले माघ शुक्ला दूज के शुभ दिन में सुप्रभात के समय सूर्योदय हुआ, तब श्री सीमन्धरादि जिनेन्द्रभगवन्तों की प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं का भव्य ग्राम प्रवेशोत्सव अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ हुआ था। भगवान पधारे, और स्वाध्यायमन्दिर के विशाल प्रवचनकक्ष में प्रतिष्ठित समयसार के भव्य गवाक्ष के पास पेटियाँ खोली गई। आह! सीमन्धर भगवान की भव्य मुद्रा देखते ही पूज्य गुरुदेव अन्तर के कोई अनूठे भक्तिभाव से स्तब्ध रह गये। आँखों से विरहवेदन के अश्रु बहने लगे। अभी प्रतिष्ठा तो नहीं हुई थी, तब भी पूज्य गुरुदेव की लगन इतनी तीव्र थी कि वे टहलते-टहलते बारबार भगवान के जिनबिम्ब के पास जाकर बैठ जाते और उपशम रसभरी शान्तमुद्रा निरख-निरखकर भक्तिभाव से गाते थे कि—

अमियभरी मूरती रची रे, उपमा न घटे कोय;
शान्त सुधारस झीलतो रे, निरखत तृप्ति न होय...
सीमन्धन जिन! देखे लोयण आज।

फाल्गुन कृष्णा 11 से फाल्गुन शुक्ला द्वितीय दूज तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आठ दिनों का महोत्सव मनाया गया था। अहा! कैसा योगानुयोग! पूज्य गुरुदेव के द्वारा सनातन सत्य वीतराग जिनशासन की वृद्धि होनेवाली थी, इसके शुभ चिह्नसूचक भगवान की प्रतिष्ठापूर्वक स्थापना भी वृद्धिंगत

तिथि पर हुई। जीवन में प्रथमबार ही पंचकल्याणक देखने और मनाने का लाभ पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रताप से प्राप्त होने से, प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन आदि भक्तजनों का आनन्दोल्लास अपूर्व था, सबको साश्चर्य अनुभव होता था कि मानों वे सब साक्षात् तीर्थंकरदेव के कल्याणक मान रहे हैं। उस समय भक्तगण जिनेन्द्र भक्तिरस के भींगकर गा रहे थे कि—

स्वर्णपुरी में स्वर्ण-रवि उदित हुआ रे आज,
भव्यजनों के हृदय में हर्षानन्द अपार,
श्री सीमन्धर प्रभुजी पधारे हम द्वाररपै. रे....

जिनेन्द्र महिमा का अमृतझरना

प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर पूज्य गुरुदेव के व्याख्यान भी वीतराग सीमन्धर भगवान को भेंटने की धुन से भरे रहते थे। प्रवचनों में अध्यात्मशैलीपूर्वक जिनेन्द्रभक्ति रस की बौछारें होती थीं। पूज्य गुरुदेव प्रवचनों में बारबार भगवान को याद करते रहते और अश्रुसभर नेत्रों से अन्तर के गहन भक्तिभाव से कहते:—हे नाथ! आपके प्रत्यक्ष दर्शन के अभाव में आपकी स्थापना करके, आपकी विरहवेदना को हम भुलायेंगे। हे स्वामिन्! जो अल्पमति आप जैसे सर्वज्ञप्ररूपित तत्त्व में वितण्ठा करता है, वह वास्तव में अन्ध है जो कि चक्षुवाले मनुष्य के द्वारा गिने गए आकाश में उड़ते पक्षियों की संख्या के विषय में विवाद करता है!... हे जिनेन्द्र! चन्द्र में जो मृग दिखता है, वह क्या है? उस सम्बन्ध में में तो ऐसा समझता हूँ कि स्वर्ग में देवों द्वारा आपके जो यशोगान गाये जाते हैं, उनको सुनने की अदम्य जिज्ञासा से मानों उस मृग ने चन्द्र का आश्रय लिया है। हे त्रिभुवनस्तुत! साक्षात् सरस्वती भी आपके पूर्ण गुणानुवाद में असमर्थ रहती है, तब फिर मेरे जैसे मन्दबुद्धि की

क्या गिनती है ? हे नाथ ! आपके दर्शन से, आपके चरणों की प्राप्ति से कौन सा कार्य सिद्ध नहीं होता ?—आपके पुनीत प्रताप से सभी चीज़ों की सिद्धि होती है, अत: ऐसा कौनसा मूढ़ जन है जो समस्त सिद्धियों के दाता ऐसे आपके दर्शन की चाह न रखे ? अर्थात् विवेकयुक्त सर्व जीव आपके दर्शन की अभिलाषा रखते हैं।... इस प्रकार अनेक भाँति से पूज्य गुरुदेव की भक्तिरसप्लावित वाणी में जिनेन्द्र महिमा के अद्भुत अमृत झरने झरते थे। 48साल पहले के ये प्रवचन आज भी मुमुक्षुजनों के हृदयों को प्रमुदित करते हैं और उनके रोम-रोम में जिनेन्द्रदेव के प्रति भक्ति जागृत करते हैं।

प्रतिष्ठा समय का अनूठा आनन्द

जिन महानुभावों को उस प्रथम प्रतिष्ठामहोत्सव को साक्षात् देखने का और उसमें सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे भक्तजन उस समय देखे गये पूज्य गुरुदेव और पूज्य भगवती माता के जिनेन्द्रभक्तिमय उल्लास का वर्णन करते आज भी अघाते नहीं। अत्यन्त उल्लसित चित्त से पूज्य भगवती माता अनेक बार कहते हैं:—अहो ! उस समय के आनन्दोल्लास की क्या बात कहें ! पहली ही बार का यह प्रतिष्ठा महोत्सव ! इस जीवन में कभी नहीं देखे थे ऐसे भगवान की भेंट ! तुदपरान्त मूलनायक के रूप में विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान ! फिर आनन्दोल्लास में कौनसी कमी रहती ?

भक्तिरस की मस्ती

पंचकल्याणक की विधि सम्पन्न होने के बाद श्री सीमन्धरादि भगवन्तों को गुरुदेव के पवित्र करकमल द्वारा वेदी पर विराजमान करने के शुभ अवसर पर भक्तिरस का एक गम्भीर दृश्य भक्तों को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस पावन प्रसंग का स्मरण आज भी उनके हृदय में उमंग पैदा कर देता है।

भक्तिरस का वह दृश्य इस प्रकार था। 'श्री सीमन्धर भगवान जब मन्दिर में प्रथम बार पधारे तब गुरुदेव का पूरा अस्तित्व भक्तिरस से सराबोर हो गया, उनका समस्त शरीर भक्तिरस का मूर्तस्वरूप जेसा अति प्रशान्त निश्चेष्ट दिखता था। अनायास ही गुरुदेव साष्टांग प्रणत हो गये और जिनेन्द्र भक्तिरस में डूबने से शरीर वैसे ही दो-तीन मिनिट तक धरती पर निश्चेष्ट होकर पड़ा रहा। पास में खड़े मुमुक्षुजन भक्ति का यह अद्‌भुत दृश्य देखकर गद्‌गद् हो गये; उनके नेत्रों से आँसू खिरने लगे और चित्त में भक्ति उमड़ आयी। गुरुदेव ने अपने पवित्र करकमल से प्रतिष्ठा भी भक्तिभाव से भरकर मानो अपने शरीर की सुध भूल गये हों, ऐसे अपूर्वभाव से की थी।

श्री सीमन्धरभगवान का उपशमरसपूर्ण वीतराग जिनबिमब इतना भव्य, भाववाही और मनोहर है कि उसके दर्शन करनेवाले को 'निरखत तृप्ति न होय'—तृप्ति ही नहीं होती; बारबार उस जिनमुद्रा को देखते ही रहने की इच्छा रहा करती है। पुनः पुनः दर्शनामृत का पान करके भक्तजन अन्तर में कोई ऐसी प्रसन्न अनुभूति करता है कि—

जिनकी मुद्रा देखे आत्मस्वरूप लखाय,
जिनकी भक्ति से चारित्रविमलता होय।
ऐसे चैतन्यमूर्ति प्रभुजी, अहो! हम आंगने रे....

भक्ति से भीगे हृदयोद्‌गार

जिनेन्द्रभक्त प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन अनेक बार भक्ति भीगे अहो भाव इन शब्दों द्वारा व्यक्त करती हैं:—'सबसे प्रथम हमारे सोनगढ़ में पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रताप से पधारे हुए मंगलकारी विदेहीनाथ श्री

सीमन्धर भगवान का मंगल आगमन कोई ऐसे शुभ मुहूर्त में हुआ है कि उनके पश्चात् अन्य अनेक नगरों में सीमन्धर जिनबिम्ब विराजमान हुए और पूज्य गुरुदेव का प्रभावना-उदय भी खूब-खूब बढ़ता गया।' अहो! धन्य वह देव, धन्य है वह गुरु और धन्य है उन दोनों की सातिशय महिमा समझानेवालीं भगवती माता!!

धर्मप्रभावनाकारी जिनबिम्ब महोत्सव

पूज्य गुरुदेव के मंगल प्रभावना उदय से, जिनमन्दिर को पंच कल्याणक प्रतिष्ठा होने के बाद, उनकी कल्याणकारी उपस्थिति में क्रमशः सीमन्धर-समवसरण, मानस्तम्भ, परमागममंदिर के अत्यन्त भव्य पंच कल्याणक महोत्सव हुए। उन चारों उत्सव की जिनधर्म प्रभावक लोकोत्तरता की तो बात ही क्या है? उनका विस्तृत वर्णन करें तो एक बड़ा ग्रन्थ हो जाये!

समवसरण-प्रतिष्ठा

श्री समवसरण के दर्शन करते ही, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव भरतक्षेत्र से सदेह सीमन्धर भगवान के समवसरण में पधारे थे वह, पूर्व के भव में साक्षात् देखी हुई भव्य घटना पूज्य गुरुदेव और पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की आँखों के सामने प्रत्यक्ष हुई और उनसे सम्बन्धित अनेक पवित्र भाव हृदय में स्फुरित होने से उनके हृदय भक्ति और उल्लास से उल्लसित हो गये। प्रतिष्ठा के अवसर पर, पूज्य बहिनश्री के ज्येष्ठ बन्धु, गहरे, आदर्श, आत्मार्थी, कुन्दकुन्द भारती के सपूत, अध्यात्मरसिक विद्वद्वर्य भाईश्री हिम्मतलालभाई जे. शाह द्वारा रचित भावसभर समवसरण-स्तुति के ऊपर सीमन्धरनाथ के परम भक्त पूज्य गुरुदेवश्री ने अत्यन्त भावपूर्ण सुन्दर प्रवचन किये थे। उनमें जब—

आचार्य के मन एकदा जिनविरहताप हुआ महा,
—रे! रे! सीमन्धरजिन का विरह हुआ इस भरत में!

—इन पंक्तियों के प्रवचन के समय पूज्य गुरुदेवश्री के श्रीमुख से सीमन्धरनाथ के विरह की गहरी वेदना से गद्गदित होकर, आँसू भरे नेत्रों से सीमन्धर भगवान और कुन्दकुन्दाचार्य के प्रति जो अद्भुत भक्तिस्रोत बहा, उसका भावयुक्त वर्णन करना वास्तव में शब्दों के द्वारा शक्य नहीं है।

मानस्तम्भ-प्रतिष्ठा

मानस्तम्भ के पंचकल्याणक भी अत्यन्त भव्य हुए। उस समय पूज्य गुरुदेव का प्रभावना-उदय हिन्दी भाषी भारत में दूर तक फैल गया था; इसलिए उत्तर में हिमालय की तलहटी में स्थित सहारनपुर से लेकर मद्रास आदि दक्षिण भारत के, पूर्व में कलकत्ता से लेकर पश्चिम भारत के बहुत से मुमुक्षुओं ने इस उत्सव का और पूज्य गुरुदेव के प्रभावनाकारी आध्यात्मिक एवं जिनेन्द्रभक्ति से ओतप्रोत सातिशय प्रवचनों का लाभ लिया था। इन्दौर के उदासीन आश्रम के त्यागीगण ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूज्य गुरुदेव के प्रभावना-उदय की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

परमागममन्दिर-प्रतिष्ठा

परमागममन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर हुई धर्मप्रभावना तो चरम सीमा को पार कर गई थी। उस समय गुजरात राज्य का राजकीय वातावरण अत्यन्त क्षुब्ध था, बड़े शहरों में कर्फ्यू-संचार निषेध चलता था। फिर भी 27 हजार मेहमानों ने इस भव्य उत्सव का और पूज्य गुरुदेव के अद्भुत प्रवचनों का अनूठा लाभ लिया था। पूज्य गुरुदेव के लोकोत्तर प्रभावनायोग से संगमरमरनिर्मित परमागममन्दिर की ऐसी भव्य रचना हुई है कि जो सारे

विश्व में अनन्य एवं अनुपम है। उसके बाद हुए पंचमेरु-नन्दीश्वर की रचना तो ऐसी अद्भुत है कि दर्शन करनेवाले पुनः पुनः उसे देखने की भावना करते रहते हैं। पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रताप से तैयार हुए इन दोनों जिनमन्दिरों की लोकोत्तर भव्यता के कारण दर्शनार्थियों का प्रवाह सोनगढ़ की ओर दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है।

भारतवर्ष का अनुपम तीर्थक्षेत्र

पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग से सोनगढ़ सचमुच भारतवर्ष का एक अनुपम, आध्यात्मिक अतिशयतायुक्त महामंगल तीर्थक्षेत्र बन गया है। नये-नये जिनायतन, मुमुक्षुओं के नये-नये आवास, ब्रह्मचर्याश्रम, जैन विद्यार्थीगृह, नयी-नयी सोसायटियाँ आदि विविध भव्य रचनाओं से सुवर्णपुरी तीर्थधाम अत्यन्त सुशोभित हो गया है। अभी भी, पूज्य गुरुदेव के परम भक्त अध्यात्ममूर्ति स्वानुभव विभूषित पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की मंगलवर्द्धिनी देवगुरुभक्तिरसिक्त आध्यात्मिक अमृतछाया में, परम तारणहार परम पूज्य कहान गुरुदेव के इस मंगल अध्यात्मतीर्थ की वृद्धि दिनोंदिन अविरतरूप से हो रही है, जिसके फलस्वरूप सच्चे आत्मार्थी जिज्ञासुओं का विशाल प्रवाह इस पावन तीर्थ की ओर निरन्तर बहता ही रहता है। सोनगढ़ में मनाये जाते मंगल महोत्सवों में गुजराती एवं हिन्दी मुमुक्षु मेहमानों की विशाल संख्या देखकर सभी भक्तों के हृदय ऐसा स्पष्ट अनुभव करते हैं कि वाह! परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री का सातिशय प्रभाव अद्यापि अखण्डरूप से प्रतापवन्त वर्तता है।

प्रभावना-किरणों का प्रसार

पूज्य गुरुदेव का जिनेन्द्रभक्तिभीगा अध्यात्मप्रभाव देश-विदेश में

बहुत फैल गया था और उनके अनुयायी के रूप में अध्यात्म जिज्ञासुओं का बड़ा समुदाय तेयार हो गया था, इसलिए सबने अपने-अपने गाँव में तत्त्वस्वाध्याय के लिये 'स्वाध्यायमन्दिर' और जिनेन्द्र पूजा-भक्ति की उपासना के लिये जिनमन्दिर के नवनिर्माण की योजना बनायी। तद्नुसार क्रमशः वींछिया, लाठी, राजकोट, पोरबन्दर, मोरबी, वांकानेर, जामनगर, भावनगर आदि सौराष्ट्र के अनेक छोटे-बड़े नगरों में एवं गुजरात तथा अन्य राज्यों में और विदेश में नैरोबी आदि अनेक स्थानों पर स्वाध्यायमन्दिर, जिनमन्दिर आदि और पंचकल्याणक तथा वेदी-प्रतिष्ठा के महोत्सव हुए।

पूज्य गुरुदेव की अध्यात्मसाधना और मार्गप्रकाशन की सातिशयता के कारण उनका प्रभावनायोग, विहारों में एवं प्रतिष्ठोत्सवों में तीर्थंकर-आचार्योंपम, चमत्कारपूर्ण अद्भुतता की सीमा तक पहुँच जाता था। वि.सं. 2015, 2020 और 2025—इस प्रकार तीन बार बम्बई में मनाये गये पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सवों की भव्यता का तो कहना ही क्या ? प्रवचनों मे दस-दस सहस्र जिज्ञासु श्रोताओं की विशाल संख्या पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से बरसते अध्यात्मामृत का इतनी शान्ति और तल्लीनता से रसपान करती कि छोटी सी सुई गिरने की आवाज भी श्रोताओं को खटकती। सभा की शान्ति एवं श्रवण लीनता देखकर 'पूज्य गुरुदेव की अध्यात्मवाणी में श्रोताओं को जकड़ लेने का कोई आश्चर्यकारी जादू है'—ऐसा अनुभव लोगों को होता।

अलौकिक पुरुष की अलौकिक वाणी

पूज्य गुरुदेव का आत्मद्रव्य अद्भुत और अलौकिक था। उनकी लोकोत्तर अध्यात्मवाणी भी ऐसी ही प्रभावक थी। वह सातिशय वाणी श्रोताओं के अन्तर में आत्मा की रुचि जगानेवाली थी। उनकी वाणी की

गहनता और टंकार अनोखे ही थे। वाणी सुनते ही अपूर्वता लगे और 'जड़-चैतन्य भिन्न-भिन्न हैं' ऐसा स्पष्ट भास हो जाये, ऐसी सक्षम और अद्भुत वह वाणी थी। 'अरे जीव! तुम देह में विराजमान भगवान आत्मा हो, जो कि अनन्त गुणों का महासागर है, वह मन, वचन, काया से भिन्न है और विभाव से भी पार है। उस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर निज आत्मभगवान का तुम अनुभव करो! तुम्हें परमानन्द की प्राप्ति होगी।'—ऐसी गुरुदेव की अनुभवयुक्त प्रबल वाणी हजारों श्रोताओं को आश्चर्य में डाल देती थी।

प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर अनूठी प्रभावना

पंचकल्याणक-प्रतिष्ठोत्सव के समय बम्बई में स्वागत, जन्म-कल्याणक, निःक्रमणकल्याणक आदि के उपलक्ष्य में जो बड़े-बड़े जुलूस अनेक हाथी, सुन्दर रथ, सुशोभित विक्टोरिया आदि से सजधजकर निकले थे, उनका मनोहर सौन्दर्य सचमुच अद्भुत था। पूज्य गुरुदेव का यह पुनीत प्रभाव देखकर जुलूस में चलते-चलते लाडनूँ (राजस्थान) निवासी—कलकत्ता के व्यापारी श्री तोलारामजी और गजराजजी—दोनों गंगवाल बन्धुओं ने प्रभावित होकर गुरुदेव से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि—महाराजजी! आपका पुण्यप्रभाव बहुत बड़ा है, कृपा करके हमारे लाड़नूँ में भी ऐसा भव्य महोत्सव कर दीजिये! आपके पधारने से हमारा जीवन, परिवार एवं गाँव धन्य धन्य हो जायेगा। पूज्य गुरुदेव ने उत्तर में कहा:—सेठ! यह सब जिनधर्म का प्रभाव है, मैं इसका कर्ता-धर्ता नहीं हूँ। यह सब करने से नहीं, अपितु सहज होता है।

ऐसी ही भव्यता पिपलानी (भोपाल) के पंचकल्याणक अवसर पर देखने को मिली थी। 45 हजार श्रोताओं की बड़ी सभा में भी पूज्य गुरुदेव

अश्रुतपूर्व, अद्भुत अध्यात्मतत्त्व परोसते थे। श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर उसका रसपान करते थे। आस-पास त्यागीगण और विद्वद्गण, सामने विशाल श्रोतासमुदाय और भव्य उच्चासनस्थित दिव्यवाणी के प्रकाशक पूज्य गुरुदेव, अहो! कैसा समवसरणसदृश आश्चर्यकारक वह अद्भुत दृश्य था! भक्तजन पूज्य गुरुदेव के सातिशय प्रभावनोदय की सराहना करते अन्तर में बहुत प्रसन्न होते थे। उत्सव की समाप्ति के समय शान्तिरथयात्रा में वहाँ के मुमुक्षुओं की आग्रहपूर्ण विनति से पूज्य गुरुदेव, भगवान के रथ के सारथी के रूप में, रस पर विराजमान हुए थे। अहो! पूज्य गुरुदेव उस वक्त ऐसे शोभते थे मानों कि जिनेन्द्र-धर्मरथ के शासननायक अजोड़ सारथी कोई असाधारण कौशल्य से वीतराग जिनधर्म की अचिन्त्य महिमा को सारे भारतवर्ष में सुप्रसिद्ध करने के लिये पधारे हैं।

पूज्य गुरुदेव के परम प्रताप से किस नगर में कब पंचकल्याणक या वेदी-प्रतिष्ठा हुई उसका विवरण निम्न प्रकार है।

वीतरागधर्मप्रभावक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल-प्रभावनायोग में बने जिनमन्दिरों की—

पंचकल्याणक-प्रतिष्ठाएँ

क्रम	स्थान	प्रतिष्ठातिथि (गुजराती तिथि अनुसार)	मूलनायक भगवान
1.	सोनगढ़	वि.सं. 1997, फाल्गुन सुद 2	श्री सीमन्धर भगवान
2.	सोनगढ़-समवसरण	" 1998, वैशाख वद 6	"
3.	वींछिया	" 2005, फाल्गुन सुद 7	श्री सीमन्धर भगवान
4.	लाठी	" 2005, जेठ सुद 5	" सीमंधर भगवान

5.	राजकोट	''2006, फाल्गुन सुद 12	''सीमन्धर भगवान
6.	सोनगढ़-मानस्तंभ (63 फीट उन्नत)	''2009, चैत्र सुद 10	''सीमन्धर भगवान
7.	पोरबन्दर	''2010, फाल्गुन सुद 3	''पार्श्वनाथ भगवान
8.	मोरबी	''2010, चैत्र सुद 2	''महावीर भगवान
9.	वांकानेर	''2010, चैत्र सुद 13	''वर्धमान भगवान
10.	लींबडी	''2014, वैशाख सुद 13	''पार्श्वनाथ भगवान
11.	बम्बई	''2015, माघ सुद 6	''सीमन्धर भगवान
12.	जामनगर	''2017, माघ सुद 7	''महावीर भगवान
13.	जोरावरनगर	''2019, वैशाख सुद 13	''आदिनाथ भगवान
14.	दादर (बम्बई)	''2020, वैशाख सुद 11	''महावीर भगवान
	(जिनमन्दिर-समवसरण)		''सीमन्धर भगवान
15.	राजकोट	''2021, वैशाख सुद 12	''सीमन्धर भगवान
	(समवसरण-मानस्तम्भ)		''सीमन्धर भगवान
16.	आंकडिया	''2023, माघ सुद 1	''सीमन्धर भगवान
17.	हिम्मतनगर	''2023, माघ सुद 10	''महावीर भगवान
18.	अहमदाबाद	''2025, फाल्गुन सुद 5	''पार्श्वनाथ भगवान (विशाल आदिनाथ)
19.	रनासण	''2025, फाल्गुन वद 2	''आदिनाथ भगवान
20.	मलाड (बम्बई)	''2025, वैशाख सुद 7	''आदिनाथ भगवान
	घाटकोपर ''	''2025, वैशाख सुद 8	''नेमिनाथ भगवान
21.	अंतरीक्ष पार्श्वनाथ	''2026, फाल्गुन सुद 2	''पार्श्वनाथ भगवान
22.	भावनगर	''2026, वैशाख सुद 3,	''सीमन्धर भगवान
23.	घाटकोपर (सर्वोदय-होस्पीटल)	''2028, फाल्गुन वद 3	''आदिनाथ भगवान

24.	फतेपुर–समवसरण	''2028, वैशाख सुद 3	''सीमन्धर भगवान
25.	सोनगढ़ (परमागम मंदिर)	''2030, फाल्गुन सुद 13	''महावीर भगवान
26.	भोपाल (पिपलानी)	''2031, माघ वद 3	''महावीर भगवान
27.	बैंगलोर	''2031, चैत्र सुद 13	''महावीर भगवान
			(ऊपर : सीमन्धर–समवसरण)
28.	वढवान	''2032, फाल्गुन सुद 8	श्री वर्धमान भगवान
29.	मद्रास	''2034, फाल्गुन सुद 3	''महावीर भगवान
30.	कुरावड	''2034, वैशाख सुद 1	''सीमन्धर भगवान
31.	नाईरोबी	''2036, माघ सुद 2	''महावीर भगवान
32.	वडोदरा	''2036, फाल्गुन सुद 13	''आदिनाथ भगवान
		* * *	
33.	सोनगढ़*	''2041, फाल्गुन सुद 7	''पंचमेरु–नन्दीश्वर
			(ऊपर : आदिनाथ भगवान)
34.	नवरंगपुरा (अहमदाबाद)	''2041, फाल्गुन सुद 11	''महावीर भगवान
35.	राजकोट	''2045, माघ सुद 5	''भरत–बाहुबली

* पूज्य गुरुदेवश्री के महाप्रयाण के पश्चात् जन्म शताब्दी तक, यह क्रम अब भी अनवरतरूप से चल रहा है।

जिनेन्द्रधर्मप्रभावक अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
सातिशय प्रभावनायोग से सम्पन्न—

जिनेन्द्र-वेदीप्रतिष्ठाएँ

क्रम	गाँव	प्रतिष्ठातिथि (गुजराती)	मूलानायक भगवान
1.	वढवाण	वि.सं. 2010, चैत्र वदि 8	श्री सीमन्धर भगवान
2.	सुरेन्द्रनगर	''2010, वैशाख सुदि 3	''शान्तिनाथ भगवान
3.	राणपुर	''2010, वैखाख सुदि 13	''महावीर भगवान
4.	बोटाद	''2010, वैशाख वदि 8	''श्रेयांसनाथ भगवान
5.	उमराला	''2010, जेठ सुदि 5	''सीमन्धर भगवान
6.	सोनगढ़	''2013, कार्तिक सुदि 12	''नेमिनाथ भगवान
	(68 फीट, उन्नत)	(जिनमन्दिर-बृहत्ताकरणनिमित्त पुनः वेदी प्रतिष्ठा)	
7.	पालेज	''2013, मार्गशीर्ष सुदि 11	''अनन्तनाथ भगवान
8.	खैरागढ़	''2015, चैत्र सुदि 1	''शान्तिनाथ भगवान
9.	वडिया	''2016, माघ सुदि 6	''नेमिनाथ भगवान
10.	जेतपुर	''2016, माघ सुदि 11	''श्रेयांसनाथ भगवान
11.	गोंडल	''2016, माघ सुदि 15	''शान्तिनाथ भगवान
12.	सावरकुंडला	''2017, फाल्गुन सुदि 13	''शान्तिनाथ भगवान
13.	दहेगाम	''2019, वैशाख वदि 8	''महावीर भगवान
14.	भोपाल	''2019, ज्येष्ठ सुदि 5	''नेमिनाथ भगवान
15.	रखियाल	''2020, फाल्गुन वदि 3	''नेमिनाथ भगवान
16.	बोटाद (ऊपर)	''2020, चैत्र सुदि 8	''
17.	उज्जैन	''2021, माघ वदि 6	''सीमन्धर भगवान

18.	भोपाल (टी.टी. नगर)	''2021,	''सीमन्धर भगवान
19.	जसदण	''2023, पोष वदि 8	''महावीर भगवान
20.	जयपुर (टोडरमल-स्मारक)	''2023, फाल्गुन सुदि 2	''सीमन्धर भगवान
21.	उदयपुर	''2023, चैत्र वदि 8	''चन्द्रप्रभ भगवान
22.	इन्दौर	''2025, वैशाख वदि 5	''चन्द्रप्रभ भगवान
23.	मक्षी (पार्श्वनाथ)	''2025, वैशाख वदि 7	''पार्श्वनाथ भगवान
24.	जलगाँव	''2026, फाल्गुन सुदि 6	''आदिनाथ भगवान
25.	बानातलाव	''2026, चैत्र वदि 11	''धर्मनाथ भगवान
26.	अमरेली	''2028, फाल्गुन सुदि 5	''शान्तिनाथ भगवान
27.	रामपुरा	''2028, वैशाख सुदि 5	''आदिनाथ भगवान
28.	कामणवाडा	''2028, वैशाख सुदि 6	''आदिनाथ भगवान
29.	जांबूडी	''2030, कार्तिक सुदी 13	''आदिनाथ भगवान
30.	गढ़डा	''2030, वैशाख वदि 2	श्री पार्श्वनाथ भगवान
31.	जूनागढ़-मानस्तम्भ	''2031, माघसुदि 5	''नेमिनाथ भगवान
32.	खुरई मानस्तम्भ	''2031, माघ वद 7	''आदिनाथ भगवान
33.	सनावद-समवसरण	''2031, माघ वद 11	''सीमन्धर भगवान

* * *

34.	घाटकोपर (ऊपर)	''2043, फाल्गुन सुद 3	''आदिनाथ-बाहुबली
35.	सुरेन्द्रनगर	''2043, वैशाख सुद 13	''
36.	दादर	''2044,	''आदिनाथ भगवान

— * — * —

गुरुदेव का मुख्य उपकार

पूज्य गुरुदेव के लोकोत्तर पुण्य प्रताप से स्वानुभूति प्रधान अध्यात्मधर्म के साथ-साथ जिनमन्दिर निर्माण, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, वेदी-प्रतिष्ठा, धार्मिक शिक्षण शिविर, 'आत्मधर्म' पत्रिका गुजराती, हिन्दी, मराठी, कन्नड़ और तमिल भाषा में प्रकाशन, समयसारादि मूल शास्त्र तथा प्रवचन-साहित्य की लाखों पुस्तकें आदि—इन सभी कार्यों के 'कर्ता' वास्तव में तो कृपालु गुरुदेव थे ही नहीं, वे तो अन्तर में, उनके लिये उनकी ज्ञातापरिणतिरूप साधना ही मुख्य होने से, केवल इन कार्यों के ज्ञाता ही थे। उनकी दृष्टि और जीवन आत्माभिमुख था। उपरोक्त सभी कार्य 'अकर्ता' भाव से—ज्ञाताभाव से सहजपने से हो गये थे। स्वानुभव समन्वित भेदज्ञानधारा से बहते शुद्धात्म-दृष्टिजनक अध्यात्मोपदेश द्वारा आत्मकल्याण का जो अनुपम मार्ग हमें दिखाया वही वास्तव में उनका हम पर अलौकिक, महानतम, मुख्य उपकार है। वे बारबार कहते:—इस अल्पायु मनुष्यपर्याय में निज कल्याण की साधना और उसके मूल कारणभूत शुद्धात्मानुभूतियुक्त निर्मल सम्यग्दर्शन की प्राप्ति यही परम कर्तव्य है। भवान्तकारी सम्यग्दर्शन का माहात्म्य सचमुच अचिन्त्य, अद्भुत, अपार है।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

अरे! इस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन-निज शुद्धात्मदर्शन के बिना अनादिकाल से अनन्त-अनन्त जीव संसारपरिभ्रमण के दु:ख सह रहे हैं। जीव चाहे जितना पूजापाठ, व्रत-तप आदि क्रियाकाण्ड करे या तो शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करे किन्तु जब तक वह राग और परलक्ष्यी ज्ञान पर से अपनी दृष्टि हटाकर तथा उसकी महिमा छोड़कर अन्तर में त्रिकाली विज्ञानघन

आत्मस्वभाव की महिमा नहीं समझेगा, अन्तर्मुख दृष्टि नहीं करेगा, तब तक उसकी गति संसार की ओर है। उनमें से कोई विरल जीव सद्गुरुबोध के द्वारा तत्त्व समझकर, अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक अपनी परिणति अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शन-निज शुद्धात्मानुभूति—प्राप्त कर ले, उसी ने वास्तव में, संसारमार्ग पर चलते समूह से अलग होकर, मोक्ष के मार्ग पर अपना मंगल प्रस्थान किया है। भले उसकी गति मन्द हो, वह असंयतदशा में हो, अन्तर में साधना का-लीन हो जाने का उग्र पुरुषार्थ नहीं कर सकता हो, तथापि उसकी दिशा मोक्ष की ओर है, वह मोक्षमार्ग पर चलनेवालों की जाति का है। सम्यग्दर्शन का ऐसा अद्भुत माहात्म्य कल्याणार्थी के हृदय में जम जाना चाहिए।

—इस प्रकार जिनेन्द्रशासनप्रभावक, मंगलमूर्ति पूज्य कहान गुरुदेव ने मंगल विहार करके, मंगलमय पंचकल्याणक तथा वेदी प्रतिष्ठाओं द्वारा परम मंगलकारी जिनेन्द्रवृन्दों की पावन स्थापना की और नगर-नगर तथा गाँव-गाँव में व्याख्यान करके अध्यात्मामृत के महान झरने बहाये, जिनमें डूबकर पावन होने के लिये हजारों भव्यजीवों का समुदाय उमड़ रहा था। अहा! क्षणभर के लिये तो बड़े-बड़े मांधाता भी विस्मयमूढ़ हो जायें ऐसा था पूज्य गुरुदेव का पावन प्रभावना-उदय!

अहा! मात्र सम्यग्दृष्टि के रूप में ही इतना माहात्म्य है, तो फिर भवसागर पार होने का अमोघ उपाय बतानेवाले ऐसे प्रत्यक्ष-परमोपकारी सम्यग्दृष्टि के अपार माहात्म्य की तो क्या बात की जाये? सम्यक्त्वतीर्थ-प्रभावक ऐसे हमारे प्रत्यक्ष परमोपकारी सम्यग्दृष्टि सातिशय महिमा के धनी कृपामूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के चरणों में हम अपना सर्वस्व अर्पण कर दें, वह भी कम है। सचमुच, पूज्य कहान गुरुदेव के द्वारा सम्यक्त्वप्रधान

जैनधर्म की सहजरूप से बहुत-बहुत प्रभावना हुई है।

आदर्श ब्रह्मचारी

पूज्य गुरुदेव का समग्र जीवन एक ओर अध्यात्मरस से सराबोर था तो दूसरी ओर ब्रह्मचर्य की अद्‌भुत कान्ति से दैदीप्यमान था। छोटी उम्र से ही उनके हृदय में ब्रह्मचर्य का असीम प्रेम था, इसलिए उन्होंने कुमार ब्रह्मचारी के रूप में अपना जीवन व्यतीत किया। वे न तो कभी स्त्रियों की ओर देखते या न उनके साथ बातचीत करते, वे स्त्रियों की ओर उपेक्षाभाव से, सिर्फ पुरुषों के प्रति अपनी दृष्टि रहे, इस प्रकार प्रवचन के समय पुरुषों की ओर मुख करके आसन लेते। वे कभी स्त्रियों को सम्बोधन नहीं करते, न उनके साथ प्रश्नोत्तर करते। उनके दर्शन के लिये भी अकेली एक या एक से ज्यादा स्त्रियाँ अपने साथ पुरुष की उपस्थिति के बिना उनके पास आ नहीं सकती थीं, ऐसा उनके ब्रह्मचर्य का प्रताप था। उनका तीव्र वैराग्य और ब्रह्मचर्य का रंग सचमुच अद्‌भुत था।

स्वानुभवसमृद्ध-शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानी ऐसे पूज्य गुरुदेव के ब्रह्मचर्य का प्रभाव श्रोतासमाज के ऊपर बहुत गहरा पड़ता। उनके आदर्श ब्रह्मचर्यमय आध्यात्मिक जीवन से प्रभावित होकर, निजकल्याण के हेतु कई कुमार भाईयों ने, अनेक कुमारिका बहनों के और अनेक दम्पतियों ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा ली थी।

इस शताब्दी में हुई वीतराग जिनशासन की प्रबल प्रभावना में जिनकी आध्यात्मिक पवित्रता का और जिनके मार्गप्रभावक लोकोत्तर पुण्ययोग का बहुत बड़ा हिस्सा है, ऐसे पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के भव्यजनहितकर

तत्त्वोपदेश में 'मुमुक्षुजनों को सबसे प्रथम मोक्षमार्ग की नींव स्वरूप सम्यग्दर्शन प्रकट करना चाहिए'—इस प्रकार सम्यक्त्व का खूब महत्त्व दर्शाया जाता। वे कहते:—सम्यग्दर्शन के बिना व्रत-तप, भक्ति और शास्त्रज्ञान—सबकुछ मोक्ष के लिये व्यर्थ है। निर्मल सम्यग्दर्शन स्व-पर और स्वभाव-विभाव के भेदज्ञानरूप तत्त्व के अभ्यास से होता है। सत्समागम के द्वारा जीवादि तत्त्वों का यथार्थ श्रवण-ग्रहण करके, उसके विषय में सत्-असत् के गहन विचारबल से निर्णयादि के अभ्यास में प्रगति हो सकती है।

कुमारिका बहिनों की ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा

पूज्य गुरुदेव के अध्यात्मोपदेश से प्रभावित होकर क्रमश: अनेक कुलीन कुमारिका बहिनों को ज्ञान, वैराग्य और उपशमरसपूरित ऐसी प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के निकट सत्समागम में रहकर तत्त्वाभ्यास के हेतु, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके जीवन बिताने की भावना जागृत हुई। इसलिए सबसे प्रथम वि.सं. 2005 में कार्तिक शुक्ला 13 के दिन 6कुमारिका बहिनों ने एकसाथ पूज्य गुरुदेव के पास आजीवन ब्रह्मचर्यपालन की प्रतिज्ञा ली। बाद के वर्षों में क्रमश: ऐसी ही अन्य 14, 8, 9, और 11 कुमारिका बहिनों ने भिन्न-भिन्न अवसर पर, पूज्य गुरुदेव के समक्ष ब्रह्मचर्यप्रतिज्ञा ली। अहो! इस भौतिक, विलासप्रचुर, विषमयुग में अन्तर में उपशम का लक्ष्य रखकर, वीतरागविज्ञान के अभ्यास के लिये, पूज्य गुरुदेव के सम्यक्त्वप्रधान पावन तीर्थ में, प्रशममूर्ति, स्वानुभवविभूषित, महिला मुमुक्षु समाज के एकमात्र परमाधार ऐसी पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की कल्याणकारी छाया में—उनकी भवोदधितारक मंगल शरण में—जीवन को

वैराग्य और उपशम में ढालने का यह अनुपम आदर्श सचमुच पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रभावनायोग का एक असाधारण विशिष्ट अंग है।

विहार और यात्रा द्वारा प्रभावना

पूज्य गुरुदेव के असाधारण पवित्र प्रभावनायोग से 'अध्यात्मतीर्थक्षेत्र' के रूप में केवल भारतवर्ष के ही नहीं अपितु विश्व के नक्शे में दीपित सुवर्णपुरी में (सोनगढ़ में) रहकर उनके अध्यात्मोपदेश, विविध जिनायतनों के निर्माण, विपुल सत्साहित्य के प्रकाशन, ब्रह्मचर्य-जीवन के आदर्श, धार्मिक शिक्षणशिविर आदि द्वारा वीतराग जैनधर्म की महती प्रभावना हुई। इसके अतिरिक्त दो बार पूर्व एवं उत्तर भारत के तथा दो बार दक्षिण एवं मध्य भारत के जैन तीर्थक्षेत्रों की विशाल संघ सहित पावन यात्राएँ और अनेक विहारों द्वारा भी सनातन सत्य जैनधर्म की असाधारण प्रभावना हुई। पूज्य गुरुदेव द्वारा हो रही धर्मप्रभावना को देखकर देश-देश के लोग अध्यात्मप्रधान जैनधर्म का मंगलमय पुनरुदय हो रहा हो, ऐसा अनुभव करते थे। वे सब अत्यन्त हर्षविभोर होकर पूज्य गुरुदेव के प्रति उनके भव्य स्वागत और उपदेशश्रवणादि द्वारा अपना आदर भक्तिभाव व्यक्त करते थे।

परिवर्तन करने के पहले ही, अनेक वर्षों से पूज्य गुरुदेव द्वारा, चातुर्मास और शेषकालीन विहारों में सौराष्ट्र में अध्यात्मधर्म का वातावरण तैयार हो गया था; परन्तु 'परिवर्तन' होने के बाद ये अध्यात्म-बीज 'शुद्ध दिगम्बर जैनधर्म' के रूप में स्पष्टरूपेण अंकुरित हुए। पूज्य गुरुदेव का आत्मद्रव्य ही सत्प्रभावना की कोई अद्‌भुत योग्यतावाला था! इससे उनके विहारों में भी सातिशय धर्मप्रभावना होती थी। 'परिवर्तन' के बाद वि.सं.

1995 एवं 1999 में राजकोट में चातुर्मास के हेतु से सौराष्ट्र में जो-जो विहार हुए, उनमें पूज्य गुरुदेव की प्रभावनाकारी अध्यात्मवाणी सुनने के लिये सत्-पिपासु जीवों का बहुत बड़ा समुदाय उमड़ता।

छोटे-छोटे गाँवों में भी पूज्य गुरुदेव की वाणी के प्रभाव से जनता कितनी आकर्षित होती थी, इसका एक नमूना देखिये। सं. 1995 के विहार में, राजकोट से लौटते वक्त 'कोठारिया' नामक छोटे गाँव में पूज्य गुरुदेव ने प्रभावनापूर्ण व्याख्यान दिया था। इसका वर्णन प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन ने इन शब्दों में किया था। "वहाँ परम पूज्य कृपालुदेव के व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या करीब 1000-1200 जितनी थी। बगीचे में—हरी वनराजि में—प्रवचन दिया था। एक पेड़ के नीचे बरामदा था, उसके ऊपर तख्त था। वहाँ बैठकर पूज्य गुरुदेव प्रवचन करते थे। समवसरणसदृश दृश्य खड़ा होता था। श्री पद्मनन्दि शास्त्र में 'श्रुत-परिचित-अनुभूत सर्वने' इस प्रकार के आशवाली जो गाथा है, उसके विषय में व्याख्यान दिया गया था। 'मैं कौन हूँ? कहाँ से हुआ?' आदि बातें आयीं थीं।"

दोनों चातुर्मास के बाद वि.सं. 2005, 2006, 2010 और 2014 इस प्रकार चार बार सौराष्ट्र में, पंचकल्याणक और वेदी प्रतिष्ठा के हेतु, अनेक गाँवों में मंगल विहार हुए। पूज्य गुरुदेव अपने अध्यात्मोपदेश में जिनेन्द्र महिमा के साथ-साथ जिनेन्द्र प्ररूपित सूक्ष्म तत्त्वज्ञान भी समझाते थे। वे कहते:—विश्व के जीवादि समस्त द्रव्य परिपूर्ण एवं स्वतन्त्र हैं। प्रत्येक द्रव्य के गुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भिन्न-भिन्न हैं। आत्मद्रव्य को शरीरादि परद्रव्यों के साथ वास्तव में कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। आत्मा अन्य

पदार्थों से बिल्कुल भिन्न रहकर अपने शुभ, अशुभ या शुद्धभाव को स्वयं ही करता है। यहाँ स्वभावतः एक प्रश्न होता है कि "(श्री प्रवचनसार शास्त्र के अनुसार) शुभ के अशुभमां प्रणमतां 'शुभ के अशुभ' आत्मा बने" ऐसा आप कहते हैं और साथ-साथ "आत्मा 'सदा शुद्ध' रहता है, तथा उस त्रिकाली शुद्धता का आश्रय करना, वह मोक्षमार्ग है" ऐसा भी आप फरमाते हैं; तो इन दोनों बातों में मेल कैसे होता है? (दोनों का मेल कैसे बैठता है?)

इस अत्यन्त महत्त्व की बात का स्पष्टीकरण पूज्य गुरुदेव इस प्रकार करते:—"जब स्फटिकमणि लाल वस्त्र के संयोग से लाल होता है, तब भी उसकी निर्मलता सर्वथा नष्ट नहीं हुई है, सामर्थ्य की अपेक्षा से—शक्ति की अपेक्षा से वह निर्मल रहा है; उसका परिणमन लालीरूप अवश्य हुआ है, वह लाली स्फटिक की ही है, वस्त्र की बिल्कुल नहीं; परन्तु वह लाली लाल रंग के पावडर की, सिन्दूर की या कुमकुम की लाली जैसी नहीं है; लाल अवस्था के समय भी सामर्थ्यरूप निर्मलता उसमें विद्यमान है।

इसी प्रकार आत्मा कर्म के निमित्त से शुभभावरूप या अशुभभावरूप होता है, तब भी उसकी शुद्धता सर्वथा नष्ट नहीं हुई है, सामर्थ्य अपेक्षा से-शक्ति अपेक्षा से वह शुद्ध रहा है; वह शुभाशुभभावरूप से अवश्य परिणमा है, वह शुभाशुभपना आत्मा का ही है, कर्म का बिल्कुल नहीं; परन्तु शुभाशुभ अवस्था के समय भी उसमें सामर्थ्यरूप शुद्धता विद्यमान है।"

"जिस प्रकार स्फटिकमणि को लाल हुआ देखकर बालक रोने लगता है कि 'अरे! मेरा स्फटिकमणि सर्वथा मैला हो गया' परन्तु जौहरी (स्फटिक की) लाली के समय में ही मौजूद निर्मलता को मुख्य करके जानता होने से

वह निर्भय रहता है; उसी प्रकार आत्मा को शुभाशुभभावरूप परिणमता देखकर अज्ञानी उसको सर्वथा मैला मानकर दु:खी-दु:खी होता है, परन्तु शुभाशुभभाव के समय में ही विद्यमान शुद्धता को मुख्यरूप से जानता होने से ज्ञानी निर्भय रहता है।''

सामर्थ्य कहो, शक्ति कहो, सामान्य कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुवत्व कहो, द्रव्य कहो या पारिणामिकभाव कहो—ये सब एकार्थ हैं, ऐसा गुरुदेव फरमाते थे।

पूज्य गुरुदेव का सातिशय प्रभावनायोग सम्पूर्ण भारत में फैल जाय ऐसा महान मंगल विहार वि.सं. 2013 में हुआ। 'अध्यात्मतीर्थ' सुवर्णपुरी में श्री सीमन्धर-जिनमन्दिर का विस्तृतीकरण होने से, कार्तिक शुक्ला 12 मंगलवार के दिन बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान की पुन: वेदीप्रतिष्ठा सम्पन्न होने के बाद प्रथम बार ही, शाश्वत् निर्वाणक्षेत्र श्री सम्मेदशिखर, पावापुरी, चम्पापुरी आदि जैन तीर्थों की पवित्र यात्रा के हेतु पूज्य गुरुदेवश्री का बम्बई की ओर विहार हुआ। मार्ग में आते हुए छोटे-बड़े अनेक गाँवों को दिव्य अध्यात्मोपदेश से पावन करते-करते, पालेज में मार्गशीर्ष शुक्ला 11 के शुभ दिन श्री अनन्तनाथादि जिनेन्द्र भगवन्तों की पावन प्रतिष्ठा करके पूज्य गुरुदेव माघ कृष्णा 14 और रविवार के दिन बम्बई में पधारे।

अहो! अध्यात्मतीर्थप्रवर्तक के रूप में बम्बई में पहली ही बार पधारे हुए पूज्य गुरुदेव द्वारा जो असाधारण धर्मप्रभावना हुई, उसकी तो क्या बात हम करें! इस अवसर पर स्थल-स्थल पर की गई विविध रचनाओं से विभूषित बम्बई नगरी की शोभा अद्‌भुत थी। ध्वज और तोरण, दरवाजे और भव्य प्रवेशद्वार, पुष्पवृष्टि और स्वागत-सूत्र, बैण्डबाजे और विमान-रचना,

अनेक मोटरों और विक्टोरिया गाड़ियों की लम्बी-लम्बी कतारें—और इन सबके बीच में हजारों भक्तों के हर्षोल्लासमय गगनभेदी जयकार और मधुर गीतों से स्वागत किये गये पूज्य गुरुदेव—अध्यात्मतीर्थप्रवर्तक महान सन्त का अनुपम स्वागत हुआ था। नगर में कोई असाधारण महापुरुष पधारे हैं, ऐसे अहोभाव से लाखों लोग खिड़कियों और छतों से स्वागत का यह भव्य दृश्य देख रहे थे। लोग गुरुदेव के दर्शन के लिये इतने उत्सुक थे कि अनेक स्थलों पर भारी भीड़ बढ़ जाती थी और इस महानगर का वाहन-व्यवहार जगह-जगह थम जाता था। देखने और सुननेवाले सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे। बम्बई के केन्द्रस्थान में आये हुए मुम्बादेवी-मैदान में पन्द्रह-पन्द्रह हजार श्रोताओं की विशाल सभा में भी पूज्य गुरुदेव तो भवान्तकारी सम्यग्दर्शन के हेतुभूत अध्यात्मतत्त्व ज्ञान ही परोसते। श्रोतागण बिल्कुल नीरव बनकर अत्यन्त शान्ति, जिज्ञासा और नवीनता के अहोभाव से सुनते रहते। बम्बई मुमुक्षु मण्डल द्वारा आमन्त्रित प्रमुख दिगम्बर जैन विद्वान भी, पूज्य गुरुदेव की उपादान-निमित्त और निश्चय-व्यवहार का सुमेल बिठानेवाली प्रवचनवाणी से अत्यन्त प्रभावित होते थे। (वि.सं. 2015 में बम्बई के श्री सीमन्धरस्वामी दि. जिनमन्दिर की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के वक्त सुप्रसिद्ध पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री अपना प्रमोद व्यक्त करते अपने भाषण में इस प्रकार के आशययुक्त कुछ बोले थे कि—'स्वामीजी द्वारा जो धर्मप्रभावना हो रही है, इससे हमारा हृदय आनन्द से गद्‌गद् हो रहा है। पिछली कई शताब्दी पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि यह धर्मप्रभावना अद्‌भुत है। उपादान-निमित्त का उल्लेख करके वे प्रसन्नता से बोले थे कि स्वामीजी की वाणी में उपादान-कारण पर बल अवश्य आता है, परन्तु वे समुचित निमित्त के योग

का निषेध नहीं करते। स्वामीजी की वाणी का मर्म नहीं समझकर कई लोग विवाद करते हैं कि 'स्वामीजी निमितत उड़ाते हैं', किन्तु वे निमित्त उड़ाते नहीं, अपितु उपादान में निमित्त के कर्तृत्व का निषेध करते हैं, जो तत्त्वतः यथार्थ है।')

बम्बई महानगर में 17 दिन तक पूज्य गुरुदेव ने अध्यात्मतत्त्वज्ञान का अमृत झरना बहाया। श्रोताजन आह्लाद से कहते : अनादिकाल से मोहनिद्रा में डूबे हुए जीवों को तत्काल जगानेवाली यह बलवान वाणी है। वाणी इतनी प्रभावशाली है कि लोग स्तब्ध होकर थम जाते हैं। व्याख्यान सुनते समय तो ऐसा लगता है कि मानों हम किसी दूसरे विश्व में-शान्ति की दुनिया में बैठे हैं। बम्बई में प्रवचनकार तो अनेक आते हैं और आम सभाएँ भी होती हैं, परन्तु सभा का ऐसा शान्त वातावरण और अध्यात्म की ऐसी बात अनके दिनों तक धारावाहीरूप से लोग सुनते रहे, ऐसा हमने कभी देखा नहीं है। इस प्रकार अनेक लोग भिन्न-भिन्न उद्‌गारों से अपना प्रमोद व्यक्त करते थे।

वि.सं. 2013, पौष शुक्ला 15 के शुभ दिन को पूज्य गुरुदेव ने बम्बई से 700 भक्तों के विशालसंघ के साथ शाश्वत सिद्धिधाम श्री सम्मेदशिखर आदि पावन तीर्थों की मंगलयात्रा के हेतु प्रस्थान किया। भव्यता ऐसी लगती थी कि जैसे तीर्थंकर अकेले मोक्ष नहीं पधारते, उसी प्रकार पूज्य गुरुदेव का सिद्धिधाम के प्रति प्रस्थान एकाकी नहीं परन्तु विशाल संघसहित का हो, ऐसा लगता था। पूज्य गुरुदेव भिवंडी होकर नासिक के पास गजपंथा सिद्धक्षेत्र पधारे। सात बलभद्र और आठ करोड़ मुनिराज यहाँ से मुक्त हुए हैं। पौष कृष्णा प्रतिपदा के दिन पूज्य गुरुदेव ने संघसहित मुनिवरों के प्रति अन्तर के आनन्दोल्लासपूर्वक भव्य यात्रा की। गुरुदेव के श्रीमुख से तीर्थक्षेत्र की

विशेषताएँ सुनकर-समझकर भक्त समुदाय बहुत आनन्दित होता था। गजपंथा सिद्धक्षेत्र के छोटे से रणमीय पहाड़ के ऊपर दो जिनमन्दिर हैं। उनमें से एक मन्दिर में आठ फीट की विशाल, पद्मासनस्थ श्री पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा विराजित है। भगवान की भव्य वीतराग मुद्रा देखकर पूज्य गुरुदेव के नेत्र अहोभाव से लीन हो गये। पूज्य गुरुदेव के साथ पूजा-भक्ति करने में भक्तों को अतिशय आनन्द होता था कि—अध्यात्मतीर्थप्रवर्तक पूज्य गुरुदेव ने अन्तर में साधना-तीर्थ तो दिखाया और साथ-साथ बाह्य तीर्थ भी दिखाये।

अहा! लोकोत्तर पुण्य के स्वामी बलभद्र जैसे शलाकापुरुष मुनिदशा अंगीकार करके जब अन्तर में आत्मा की साधना करके केवलज्ञान प्राप्त करते होंगे, वह अवसर कैसा होगा?' इस तरह अनेक प्रकार के भक्तिभाव से भींगे हृदयोद्गारों के द्वारा गुरुदेव यात्रा को बहुत उल्लासमय बना देते थे। गुरुदेव का उल्लास देखकर भक्तजन अत्यन्त आनन्दित होते थे।

गजपंथा की यात्रा पूरी करके गुरुदेव की 'कल्याणवर्धिनी' (मोटरकार) के पीछे-पीछे संघ की 40 जितनी मोटरगाड़ियाँ और 9 बसों की पंक्ति ने 'मांगीतुंगी' सिद्धक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। 'मांगीतुंगी' से आठवें बलभद्र श्री रामचन्द्रजी, सुग्रीव, हनुमान, सुडील, गवगवाख्य, नील-महानील आदि 99 करोड़ मुनिवर मुक्त हुए हैं। पहाड़ की चढ़ाई कठिन होने पर भी उसकी भव्यता इतनी मनोहर है कि चढ़ने की थकान हम भूल जाते हैं। जिस तरह कि साधक सन्त स्वरूपानुभूति में विकल्प की सभी थकान भूल जाते हैं।

रामचन्द्रजी आदि करोड़ों मुनिवरों के इस पवित्र सिद्धिधाम में पहाड़ के ऊपर श्री चन्द्रप्रभ भगवान का मन्दिर है, उसमें वीतरागभाववाही उपशान्त मूर्ति के दर्शन होते ही गुरुदेव ने क्षणभर भक्तिभाव में चकित होकर,

कहा:—'अहा! यहाँ तो ऐसा लगता है कि मानों साक्षात् सिद्ध भगवान ऊपर से नीचे उतरे हों। मानो सिद्ध भगवान सामने ही विराजते हैं और हम उनका ध्यान करने के लिये बैठ जायें।—ऐसी अनुभूति होती है। यहाँ से जो करोड़ों मुनिवर मुक्त हुए हैं, वे यहाँ हमारे ऊपर ही विराजते हैं, देखा!' ऐसा कहकर गुरुदेव ने ऊपर दृष्टि करके, सिद्धालय की ओर हाथ उठाकर सबको दिखाया। गुरुदेव की ऐसी प्रमोदयुक्त अमृतवाणी सुनकर भक्त-यात्रियों को बहुत हर्ष हुआ और सबने पूज्य गुरुदेव तथा पूज्य भगवती माता के साथ, दर्शन-पूजन किया। इसके बाद गुरुदेव ने वैराग्यरस भरी भक्ति सुनाई।

मांगीतुंगी की यात्रा करके गुरुदेव की प्रभावनादुन्दुभि बजाता हुआ यात्रासंघ, जिस प्रकार समवसरण विहार में श्री तीर्थंकर भगवान के साथ-साथ चतुर्विध संघ चलता है, तद्नुसार पूज्य गुरुदेव के साथ धूलिया, सोनगरि, सेंधवा होकर बड़वानी सिद्धक्षेत्र पहुँचा। सिद्धक्षेत्र के सतत् दर्शन से सबको अतीव आनन्द हो रहा था। सब यात्री सांसारिक समस्त वातावरण भूलकर, 'बस हम तो सिद्धिधाम के यात्री हैं... और हमें, गुरुदेव के प्रभावनायोग से उनके पावन चरणों का अनुसरण करके सिद्धिधाम में जाना है—ऐसे प्रसन्नभाव घूँट रहे थे। बड़वानी के सिद्धक्षेत्र का नाम 'चूलगिरि' है। वहाँ से रावणपुत्र श्री इन्द्रजीत तथा कुम्भकर्ण और साढ़े तीन करोड़ मुनिवर मुक्त हुए हैं। पहाड़ के पत्थर से उत्कीर्ण आदिनाथ भगवान की बावनगज (84 फीट) विशाल खड्गासन भव्य प्रतिमा है। मन्दिर के पीछे एक छोटी सी देरी में आचार्यदेव श्री कुन्दकुन्द भगवान की पूर्वाभिमुख वन्दना मुद्रायुक्त भव्य दिगम्बर प्रतिमा है। इस भव्य सिद्धक्षेत्र की पावनकारी यात्रा करके सब पावागिरि—ऊन सिद्धक्षेत्र की यात्रा के लिये गये। चेलना नदी के तट पर

स्थित इस पावागिरि के शिखर पर से सुवर्णभद्रादि चार मुनिवर मुक्त हुए हैं। यहाँ एक मन्दिर के भूगर्भतल में चक्रवर्ती, कामदेव और तीर्थंकर—इन तीनों पद के धारक श्री शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ भगवान की विशाल, भव्य, खड्गासन प्रतिमाएँ हैं। चक्रवर्ती की विशाल सम्पत्ति का त्याग करके परमात्मदशा को प्राप्त इन भगवन्तों की वीतरागभाववाही भव्य मुद्रा देखकर पूज्य गुरुदेव प्रसन्नता से बोल उठे:—'अहा! हम तो यह सब इस जीवन में पहली बार ही देखते हैं।' पूज्य गुरुदेव की अनहद कृपा के फलस्वरूप ऐसे भगवन्तों का दर्शन होने से प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री आदि भक्त भी बहुत प्रसन्न होते थे। इस पावन तीर्थ का दर्शन-पूजन-भक्ति करके संघ पूज्य गुरुदेव के साथ खण्डवा शहर में आया।

खण्डवा शहर के अनेक महानुभाव सोनगढ़ से परिचित थे। पूरा शहर पूज्य गुरुदेव के भव्य स्वागत के लिये आतुर हो रहा था। मार्ग में जगह-जगह सुन्दर दरवाजे, भव्य कमानें, ध्वज-तोरणों से शहर की शोभा 'अयोध्यानगरी' जैसी लगती थी। स्वागतोत्सुव के समय हर चौराहे पर चौकी-पाटले बिछाकर ऊपर अक्षत के स्वस्तिक बनाकर, श्रीफलयुक्त कलश सिर पर रखकर स्वागत किया जाता था, हजारों की मानवमेदनी इकट्ठी हुई थी, भारी भीड़ और गीतध्वनि से गुँजित नगरी में आनन्दोत्साह की ऐसी लहर फैल गयी थी कि मानों वहाँ श्री तीर्थंकर भगवान का समवसरण आया हो ऐसा लगता था! सत्य तत्त्वप्रकाशिनी पूज्य गुरुदेव की सातिशय प्रवचनवाणी से यहाँ जो जिनशासन की प्रभावना हुई, उसका तो हम क्या वर्णन करें? हजारों जिज्ञासुओं के हृदय प्रभावित होकर नाच उठते थे।

खण्डवा से हम सनावद गये। वहाँ से सिद्धवरकूट की यात्रा के लिये

गये। दो चक्रवर्ती (सनतकुमार और मधवा), दस कामदेव और साढ़े तीन करोड़ मुनिवर जहाँ से मुक्त हुए हैं, ऐसे इस भव्य सिद्धक्षेत्र में पहुँचने के लिये पूज्य गुरुदेव के साथ किये गये नौका-विहार की आनन्ददायी पुण्य-स्मृतियाँ आज भी भक्तों को प्रफुल्लित करती हैं।

दर्शन-पूजन-भक्तिसह तीर्थवन्दन के बाद में पूज्य गुरुदेव ने अपने प्रवचन में कहा:—(यात्रासंघ के उपरान्त आसपास के गाँवों से सैकड़ों जैन पूज्य गुरुदेव के दर्शन और वाणीश्रवण का लाभ लेने के लिये यहाँ आये थे) 'देखो, इस सिद्धक्षेत्र का नाम 'सिद्धवरकूट' है। दो चक्रवर्ती, दस कामदेव और साढ़े तीन करोड़ मुनिवर यहाँ से मुक्त हुए हैं, वे यहाँ से ऊपर लोकाग्र विराजमान हैं।'—ऐसा कहकर मानों अपने एवं श्रोताओं के हृदयों में सिद्धभगवन्तों को उतार रहे हों, इस प्रकार 'वंदित्तुं सव्व सिद्धे' कहकर उन्हें अत्यन्त भाव से नमस्कार किया।

श्री सिद्धवरकूट की अत्यन्त भावोल्लास से प्रभावनापूर्ण मंगल यात्रा करके पूज्य गुरुदेव बड़वाह होकर इन्दौर पधारे। आह! सर सेठश्री हुकमचन्दजी हर्षोल्लासभरी भावना से एवं उनके आदेश से किये गये असाधारण स्वागत समारोह की भव्यता का क्या कहना? इन्दौर के दस हजार से भी अधिक संख्यावाले जैन समाज ने उत्साह के साथ पूज्य गुरुदेव के स्वागत में भाग लिया था, उसमें रंगबिरंगी मालव वेशभूषा में सजधकर हजारों महिलाएँ भी आयीं थीं। इन्दौर के राजा सदृश विपुल सम्पत्ति के स्वामी श्री हुकमचन्दजी सेठ ने हाथी, सुवर्णांकित मखमल की मूल्यवान झूलें, भव्य अश्व जोड़ी बग्घियाँ, मोटरकारें वगैरह अपना सम्पूर्ण साज स्वागत की शोभा

के लिये निकालने का आदेश दिया था। ध्वज-तोरण, स्वागत-सूत्र, भव्य सुशोभित प्रवेश द्वार और कमानों से इन्दौर नगरी इन्द्रपुरी के समान शोभती थी। स्थल-स्थल पर ध्वनिवर्धकयंत्रों से आनन्दभेरी सुनाई देती कि 'सौराष्ट्र के महान आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी हमारी नगरी में ससंघ पधारे हैं;... आइये, स्वागत कीजिये!' अहा! मानों समवसरण के साथ श्री तीर्थंकरदेव पधार रहे हों, ऐसा आनन्दमय अद्भुत वातावरण बन गया था!

गुरुदेव 'कल्याणवर्षिणी' से बाहर आये, तब सबसे पहले राज्य की बैण्डपाटी ने सलामी के मधुर स्वरों से और सेठ के सुवर्णालंकारों से सुशोभित गजेन्द्र ने पुष्पहार से पूज्य गुरुदेव का स्वागत किया। इन्दौर दिगम्बर जैन समाज के अनेक अग्रगण्य प्रतिष्ठित महानुभाव पूज्य गुरुदेव के साथ-साथ नंगे पाँव स्वागतयात्रा में साथ चल रहे थे। स्वागतयात्रा के अनेकविध भव्य साज के पीछे सबसे आखिर में वाहनों की लम्बी कतार थी। अन्त तक दृष्टि न पहुँचे इतनी लम्बी स्वागतयात्रा थी। स्वागतयात्रा से इन्दौर नगरी के राजमार्ग मानवसमूह से उभरा रहे थे। मकानों की अट्टालिकाओं में, झरोखों में भी दर्शकों की भारी भीड़ दिखाई पड़ती थी। जैन परिवार (कहीं-कहीं अजैन परिवार भी) स्थान-स्थान पर चौकी के ऊपर अक्षत का स्वस्तिक बनाकर, उसके ऊपर श्रीफलयुक्त कलश रखकर, अक्षत-पुष्प की वृष्टि करके गुरुदेव का भाव से बधाई-स्वागत कर रहे थे। भिन्न-भिन्न बाजारों में व्यापारी-संगठनों ने भी अपने बाजार ध्वज-पताका से, कमानों एवं स्वागतसूत्रों से सुसज्जित करके इस स्वागतयात्रा की भव्यता में अपना भावपूर्ण सहयोग दिया था। अहो! कैसी शोभा थी, उस प्रभावशाली भव्य स्वागत की! जिस प्रकार

देव-ऋद्धि देखकर किसी को सम्यक्त्व हो जाये, ऐसा यह समृद्ध भव्य स्वागत था। इस मनोरम स्वागत को और गुरुदेव के प्रभावक व्यक्तित्व को देखकर नगर के बहुत से लोग प्रभावित हुए थे।

वह रमणीय एवं प्रभावनापूर्ण स्वागतयात्रा नगर में घूमती श्री हुकमचन्दजी सेठ द्वारा निर्मित काँच की कलाकारीवाले भव्य जिनालय के सामने एक विशाल सभा के रूप में बदल गई। वहाँ पन्द्रह हजार जनों की विशाल सभा में मंगल-प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा:—'अरिहंत, सिद्ध, साधु और वीतरागसर्वज्ञप्ररूपित धर्म मंगलस्वरूप है। आत्मा का जैसा स्वभाव श्री सर्वज्ञदेव ने कहा है, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसमें लीनता वह मंगल है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्ध रत्नत्रय जगत में उत्कृष्ट मंगल है। सम्यग्दर्शन होते ही सिद्ध भगवान जैसे अपूर्व आनन्द का अंश प्राप्त होता है; इसलिए वह सम्यग्दर्शन भी महामंगल है।...' गुरुदेव की मधुर मंगलवाणी जीवन में प्रथम बार सुनकर जनता ने बहुत प्रमोद व्यक्त किया।

इन्दौर के उदासीन आश्रम के ब्रह्मचारी एवं वहाँ के प्रसिद्ध विद्वान्, कई राज्यमन्त्री, न्यायाधीश, वकील, डॉक्टर आदि प्रबुद्ध लोग प्रवचन-श्रवण में अग्रभाग लेते थे।

इन्दौर का भव्य स्वागत तथा उसके बाद के यात्रा प्रवास में बीच में आते छोटे-बड़े अनेक शहरों में भी जगह-जगह पूज्य गुरुदेव के प्रभावक व्यक्तित्व के अनुरूप और एक-एक से बढ़कर स्वयंस्फुरित भावपूर्ण भव्य स्वागत हुए। इस तरह के अकल्प्य ऐसे मनोरम स्वागतसमारोह देखकर, गुरुदेव के ऐसे सातिशय पुण्यप्रभाव से प्रसन्न होकर, सर्व यात्रीगण साश्चर्य आनन्द का अनुभव करते थे। सेठश्री हुकमचन्दजी का स्वास्थ्य ठीक न था, वे

शय्यासीन स्थिति में होने पर भी गुरुदेव के प्रवचन सुनने के लिये आते थे। सब अन्तर से रसपूर्वक प्रवचन सुनते। गुरुदेव की प्रवचनसभा एक भव्य धर्मसभा जैसी शोभती थी—मानों कि धर्म का कोई महान कल्याणकारी महोत्सव हो रहा हो ऐसा लगता था। सुबह-शाम वहाँ जिज्ञासुओं की भीड़ उमड़ती। गुरुदेव के प्रवचन भी अध्यात्मरस से पूर्ण अद्‌भुत थे। एक-एक घण्टे तक परमशान्तरस का अमृतझरना धीरे-धीरे बहता रहता था। श्रोतागण शान्तरस में डुबकी लगाकर मन्त्रमुगध की तरह डोल उठते। मोक्षमार्ग का प्रारम्भ निज शुद्धात्मानुभूतियुक्त निश्चय सम्यग्दर्शन से ही होता है—यह जिनेन्द्र कथित परम रहस्य गुरुदेव विशिष्ट महत्त्व से बारबार स्पष्टरूप से समझाते थे। तदुपरान्त उपादान-निमित्त में अर्थात् स्व-परहेतुक पर्याय में उपादान की स्वतन्त्रता, निश्चय-व्यवहार का यथार्थ स्वरूप तथा उन दोनों का सुमेल बताकर निश्चय की मुख्यता, सर्वज्ञ का निर्णय करने में स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ आदि आगम-कथित महत्त्व के विषयों की सरल भाषा में खूब-खूब स्पष्टता कर समझाते थे। गुरुदेव की हृदयस्पर्शी प्रवचनवाणी से त्यागीगण और विद्वज्जन बहुत प्रभावित होते थे और सरल भाषा में अध्यात्म के गहनभाव स्पष्ट करनेवाली गुरुदेव की शैली की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। उनमें सोलापुर के वयोवृद्ध पण्डित श्री बंसीधरजी तो गुरुदेव के दर्शन और प्रवचनश्रवण से भावविभोर होकर कहने लगे:—"अहा! स्वामीजी! निश्चय-व्यवहार का यथार्थ रहस्य आपने ही खोला है। आचार्य कुन्दकुन्दस्वामीकथित 'भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होने की' महत्त्वपूर्ण बात भी आपने जो खोली है, वह सचमुच अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत है। निश्चय-व्यवहार का सुमेल, समयसार की बारहवीं गाथा के आधार से, जो आपने स्पष्ट किया, वह आज तक किसी ने नहीं समझाया।"

रात्रि के समय पूज्य गुरुदेव के निवासस्थान नसियाजी में एक विशाल मण्डप में तत्त्वचर्चा होती थी। तत्त्वचर्चा में भी छह-सात हजार जिज्ञासु भाई-बहन अत्यन्त रसपूर्वक भाग लेते थे। तत्त्वचर्चा में गुरुदेव अनेकविध प्रश्नों की चारों ओर से स्पष्टता करते, बाद में सादी भाषा में विस्तार से समाधान करते। तत्त्वचर्चा में इतनी अधिक संख्या में और इतनी जिज्ञासा से लोगों ने लाभ लिया, यह इन्दौर के जैन इतिहास में अभूतपूर्व प्रसंग था। 'कानजीस्वामी किसी के साथ तत्त्वचर्चा नहीं करते और किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देते'—ऐसा जिन्होंने सुना था, वे यहाँ तत्त्वचर्चा का ऐसा सरस वातावरण देखकर आश्चर्य अनुभवते थे और पहले सुनी हुई बातें कितनी भ्रामक थीं, उसका उनको स्पष्ट ख्याल आ गया था। अहो! पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा वीतराग जैनधर्म की जो अद्भुत प्रभावना हुई, उसका क्या वर्णन हो? विस्तृत वर्णन लिखने में एक बड़ा ग्रन्थ भर सकता है।

जिस प्रकार कोई शासन प्रभावक महान आचार्य का चतुर्विध संघ के साथ गाँव-गाँव विहार हो रहा हो, वैसे अध्यात्मशासन के महान प्रभावक, आचार्यकल्प पूज्य गुरुदेवश्री का मंगल यात्रा-प्रवास मुमुक्षुसंघ सहित सम्मेदशिखरजी की ओर आगे बढ़ रहा था। मार्ग में छोटे-बड़े अनेक गाँवों में पूज्य गुरुदेव के भव्य स्वागत होते थे। हजारों जिज्ञासु श्रोता प्रवचनों का लाभ लेते थे। प्रायः प्रत्येक गाँव में पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दनपत्र समर्पित करके उनका बहुमान किया जाता था। अनेक स्थानों में, दिगम्बर जैन समाज के अति आग्रह से गाँव में जाने के लिये समय का अभाव होने से, रास्ते पर तैयार किये गये मण्डप में बैठकर छोटासा मंगल प्रवचन करना पड़ता। सूर्योदय के

बाद सुबह का समय हो तो वहाँ का समाज गुरुदेव को दुग्धपान और यात्रासंघ को चाय-नाश्ता कराकर ही आगे बढ़ने का अति आग्रह करता। गुरुदेव की अध्यात्मवाणी सुनकर लोग बहुत ही प्रमुदित और प्रभावित होते थे। जहाँ दिगम्बर का नामोनिशान नहीं था, ऐसे सौराष्ट्र प्रदेश में दिगम्बर जैनधर्म का महान उद्योत करनेवाले महात्मा श्री कानजीस्वामी महत् भाग्य से हमारी नगरी में पधारे हैं। उनका जितना शक्य हो इतना अधिक से अधिक बहुतान करके, जीवन का अभूतपूर्व लाभ ले लें—इस प्रकार का आनन्दोल्लास प्रत्येक गाँव के दिगम्बर जैन समाज में मुमुक्षुयात्रियों को देखने मिलता था, इस कारण उनको भी, गुरुदेव का सातिशय प्रभावनाउदय प्रत्यक्ष देखकर, बहुत ही आनन्द होता था। कई स्थानों कपर 'कल्याणवर्षिनी' को रोकने के लिये लोग भक्तिभाव से रास्ता रोककर खड़े हो जाते थे, इस कारण पूज्य गुरुदेव को समय का अभाव होने पर भी, उनकी तीव्रतम भावना के वश होकर पाव घण्टा या आधा घण्टा मांगलिक-प्रवचन के लिये देना पड़ता था; परिणामतः गन्तव्य स्थान पर पहुँचने में विलम्ब हो जाता था। विलम्ब होने से, जिस प्रकार भरतचक्रवर्ती आहारदान के लिये मुनिराज की प्रतीक्षा करते थे, वैसे सामनेवाले गाँव का समाज भी गुरुदेव के स्वागत हेतु, आतुरता से, मार्ग पर दूर-दूर तक झाँककर प्रतीक्षा करता रहता। दूर से जब 'कल्याणवर्षिनी' के हॉर्न के मधुर सुर सुनाई देते, तब लोग आनन्द में आ जाते और भव्य स्वागतयात्रा के आयोजन में लग जाते थे।

इन्दौर के बाद क्रमशः उज्जैन, मक्सी पार्श्वनाथ, सारंगपुर, व्यावर, राघवगढ़, सोंनकच्छ, भोपाल, कुराना, नरसिंहगढ़, गुना, बजरंगगढ़,

बदरवास, कोलारस, सेसई, शिवपुरी, झांसी, बबीना, तालबहेट, ललितपुर, देवगढ़, थुबोनजी, चंदेरी, (फिर से ललितपुर होकर) सोनागिरि सिद्धक्षेत्र में गुरुदेव संघसहित पधारे।

सोनागिरि सिद्धक्षेत्र से नंग और अनंग इन दोनों मुनिवरों ने दूसरे साढ़े पाँच करोड़ मुनिवरों के साथ सिद्धपद पाया है। इसके अतिरिक्त यहाँ श्री चन्द्रप्रभ तीर्थंकर का समवसरणसह, अनेक बार शुभागमन हुआ है। इस सिद्धक्षेत्र का पहाड़ धवल जिनमन्दिरों की मनोहारी शोभा के कारण अत्यन्त आकर्षक लगता है।

सोनागिरि की तलहटी में बड़ा भव्य प्रवेशद्वार है। उसमें प्रवेश करते ही पहाड़ की चढ़ाई और क्रमपूर्वक मन्दिरों की शुरुआत होती है। क्रमशः प्रत्येक मन्दिर में दर्शन और अर्घ्यार्चन करते-करते पहाड़ का आरोहण अपने आप हो गया। इस भव्य सिद्धक्षेत्र में मुख्य मन्दिर 12 फीट ऊँचा और 1100 वर्ष प्राचीन, खड्गासनस्थ श्री चन्द्रप्रभ स्वामी का है। पर के विशाल चौक में 10 फीट के खड्गासनस्थ श्री बाहुबली भगवान की अत्यन्त भव्य प्रतिमाजी हैं। बाहुबलीजी के दर्शन, पूजन, अभिषेक के बाद पूज्य गुरुदेव ने निम्न भक्तिगीत बहुत भाव से गाया और भक्तों ने आनन्द से झेला—

धन्य दिवस धन्य आजका, धन्य धन्य घड़ी तेह,
धन्य समय प्रभु माहरा, दरिशन दीठा आज;
मन रे लगा मेरे नाथ में...

बाद में नंग-अनंग मुनिवरों के चरणों पर अर्घ्य चढ़ाकर, नीचे उतरकर दोपहर के समय सिद्धक्षेत्र के प्रवेशद्वार के बीच रक्खे गये आसन पर बैठकर,

सहस्राधिक श्रोताजन को प्रवचन में, पास में स्थित सिद्धक्षेत्र की ओर बारबार हाथ फैलाकर, सिद्धिपद का मार्ग समझाया था। साथ में यात्रा का मर्म दिखाते हुए कहा था कि—'लाखों और करोड़ों जीव मुक्त हुए, उनका तो यह बाह्यक्षेत्र है, परंतु वे अन्तर के कौन से भाव से मुक्त हुए, यह यथार्थ समझकर, उस भाव का अंश अपने में प्रकट करना, वह भगवान के तीर्थ की अर्थात् रत्नत्रय की सच्ची यात्रा है।....' मंगल तीर्थयात्रा के सिलसिले में, सिद्धक्षेत्र में गुरुदेव के ऐसे निश्चय-व्यवहार तीर्थ के सुमेलयुक्त, भावपूर्ण प्रवचन सुनकर आत्मार्थी जीवों के चैतन्य के प्रदेश-प्रदेश में प्रमोदभाव उमड़ता और उनके भक्तिपूर्ण हृदयों से ऐसे हर्षोद्गार निकलते कि:—जयवन्त हों गुरुदेव और उनके साथ की गयी यह आत्मवृद्धिकरा मंगल तीर्थयात्रा!!

सोनागिरि की यात्रा करके पूज्य गुरुदेव संघसहित ग्वालियर-लश्कर, धौलपुर होकर आगरा शहर में पधारे। यहां पूज्य गुरुदेव का निवासस्थान श्री नेमिचन्दभाई पाटनीजी के घर था। श्री नेमिचन्दभाई 'श्री कानजीस्वामी दिगम्बर जैन यात्रासंघ' के यात्री थे। उनके श्रमसाध्य, कुशल संचालन से यात्रा के सभी कार्यक्रम व्यवस्थित रूप में सम्पन्न होते थे। उनके नगर में पूज्य गुरुदेव के ससंघ आगमन से वे बहुत ही प्रसन्न हुए थे। उन्होंने नगर में अनेक स्थान पर गुरुदेव के प्रवचनों के और जिनेन्द्रभक्ति के आयोजन किये थे। वहाँ पूज्य गुरुदेव के अध्यात्म-प्रवचन द्वारा अच्छी धर्मप्रभावना हुई... और संघ के साथ शहर के सभी जिन-मन्दिरों के दर्शन हुए। वहाँ से शौरीपुर (बटेश्वर) और मथुरा सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके फिरोजाबाद पधारे। यमुना नदी के तट पर शौरीपुर श्री नेमिनाथ भगवान का जन्मस्थल है और चौरासी-मथुरा इस

भरतक्षेत्र के अन्तिम कामदेव और अन्तिम केवली श्री जम्बुस्वामी का सिद्धक्षेत्र है। यहाँ से महामुनि श्री विद्युत् (पहले जो चोर थे वह) आदि 500 मुनिवर भी मुक्त हुए हैं। मुनिसुव्रत भगवान के तीर्थ में राजा शत्रुघ्न (रामचन्द्रजी के भाई) यहीं राज्य करते थे, तब महामारी का भयंकर उपद्रव हुआ था। उस वक्त श्री मनु, स्वरमनु वगैरह सात चारणऋद्धिधारक मुनिवर (सप्तर्षि भगवान, जो कि सगे भाई थे) मथुरा पधारे और उनकी ऋद्धि के पुनीत प्रताप से महामारी का उपद्रव बिल्कुल शान्त हो गया। ऐसे सिद्धक्षेत्र और अतिशय क्षेत्र के दर्शन-पूजन-भक्ति करके समागत अनेक विद्वानों के समक्ष पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मरसप्रधान भाववाही प्रभावक प्रवचन दिया। प्रवचन के बाद पण्डित बलभद्रजी ने अपने स्वागत-प्रवचन में प्रमुदित हृदय से कहा:—जैसे भगवान नेमिनाथ ने उत्तर से पश्चिम में जाकर (शौरीपुर से सौराष्ट्र में आकर) धर्म का सन्देश सुनाया था, वैसे आज इतने वर्षों के बाद वही सन्देश स्वामीजी के द्वारा वहाँ से हमको यहाँ वापस मिल रहा है, यह हमारा बढ़ा भाग्य है। ....प्रवचन में हमने देखा कि स्वामीजी की दृष्टि अन्तर की है। हमने कभी इस पद्धति से स्वाध्याय-मनन नहीं किया। यह जो नवीन दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है, उससे स्वामीजी के आभारी हैं।—इस प्रकार पण्डितजी ने स्वागत-प्रवचन बहुत भाव से किया था।

वहाँ से पुनः आगरा होकर फिरोजाबाद पधारे। वहाँ के सेठ श्री छदामीलालजी सोनगढ़ आये थे और पूज्य गुरुदेव की अध्यात्मवाणी से बहुत ही प्रभावित हुए थे। उन्होंने वहाँ के विशाल समाज को साथ में रखकर, पूज्य गुरुदेव तथा यात्रासंघ का हार्दिक भावना से बहुत ही उत्साह एवं प्रेमपूर्वक

स्वागत किया। गुरुदेव उनके नगर में और जैनबाग में पधारे, इस कारण उनका हृदय हर्षानन्द से फूला नहीं समाता था। यह देखकर यात्रीभक्तों को ऐसा आश्चर्य अनुभव हुआ कि उनके दिल में गुरुदेव के प्रति कितनी गहरी भावना है। वे अपने जैनबाग में बीस लाख रुपयों के खर्च से नवनिर्मित जिनमन्दिर के सामने एक भव्य मानस्तम्भ बना रहे थे, उसको सोनगढ़ के मानस्तम्भ जैसा बनाने के लिये अपने इंजीनियरों और कारीगरों को देखने के लिये खास सोनगढ़ भेजा था। उसकी पीठिका की पश्चिम दिशा के चित्र में उन्होंने पूज्य गुरुदेव की प्रवचन-सभा का और वहाँ नमस्कार-मुद्रा में आगे बैठे हुए अपना दृश्य अंकित करवाया है।—उस भव्य दृश्य के द्वारा उन्होंने गुरुदेव के प्रति अपना खास भक्तिभाव प्रकट किया है। जिसमें पण्डित राजेन्द्रकुमार (मथुरा) और सोनगढ़ ट्रस्ट के प्रमुख श्री रामजीभाई दोशी पूज्य गुरुदेव के दोनों ओर बड़ा धर्मध्वज लेकर चलते थे, उस जिनशासन-प्रभावकारी भव्य स्वागतयात्रा और गुरुदेव के मंगल-प्रवचन के बाद श्री सेठ छदामीलालजी ने 'श्री कानजीस्वामी दिगम्बर जैन सरस्वतीभवन' का उद्घाटन पूज्य गुरुदेव के पुनीत करकमल से करवाया था। जैनबाग में हुए प्रवचनों से वहाँ के समग्र समाज को पूज्य गुरुदेव के प्रति अत्यधिक अहोभाव उत्पन्न हुआ था। इसलिए पी.डी. जैन इण्टर कालेज के व्यवस्थापकों के मन में प्रवचन के लिये आमन्त्रण देने की भावना हुई। कालेज के प्रोफेसरों एवं विद्यार्थी गुरुदेव के प्रवचन से बहुत ही प्रभावित हुए थे और उनके द्वारा समर्पित किए गये अभिनन्दनपत्र में प्रमोद से लिखा था कि:—आपके शोधपूर्ण एवं ठोस अध्ययन तथा अनुभवन ने अध्यात्मजगत में एक युगान्तर ही उपस्थित कर दिया है। भारतवर्ष सहस्त्रों वर्षों से सन्त भूमि है, परन्तु आत्मतत्त्व की इतनी

मौलिक जगत्मोहिनी एवं रसवती व्याख्या, जिसका निर्विरोधरूप से सर्वत्र स्वागत हुआ हो, अद्यावधि कम ही हुई है।

जैनबाग में तैयार किये गये विशाल मण्डप में अन्तिम प्रवचन के पहले दोपहर में 'अभिनन्दन समारोह' में अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भावपूर्ण प्रशस्ति वचनों से पूज्य गुरुदेव को 'अभिनन्दन-अंजलि' दी थी, पण्डित श्री राजेन्द्रकुमारजी ने अपनी अभिनन्दनांजलि में कहा था कि पूज्य कानजीस्वामी के आगमन से हमारी नगरी को हम धन्य समझते हैं! आज हमारे लिये उल्लास और आनन्द का प्रसंग है। स्वामीजी के आध्यात्मिक सिद्धान्त मात्र हमारे लिये ही नहीं, अपितु हमारे राष्ट्र और विश्व के लिये बड़ी उपयोगी चीज़ है। आज ऐसे महापुरुष के समागम से हम सब धन्य बने हैं। ...जब आप दिल्ली पधारें, तब फिर यहाँ का प्रोग्राम ज्यादा रखने की हम सब प्रार्थना करते हैं। यह सुनकर हजारों लोगों की पूरी सभा ने हर्षनादपूर्वक उसमें अपनी सम्मति दी थी, उसके बाद 'श्री महावीर जयन्ती-सभा' की ओर से पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया था।

फिरोजाबाद से (शिकोहाबाद होकर) मैनपुरी, कानपुर, लखनौ, रत्नपुरी (धर्मनाथ भगवान का जन्मधाम) वगैरह गाँवों में धर्म प्रभावना करते-करते पूज्य गुरुदेव संघ सहित अयोध्या पधारे। इन्द्रों ने यहाँ आकर क्रमशः अनन्त तीर्थंकरों के जन्मकल्याणक मनाये हैं। जिस प्रकार सम्मेदशिखर तीर्थंकरों का शाश्वत निर्वाणधाम है, वैसे ही वह अयोध्यानगरी तीर्थंकरों का शाश्वत् जन्मधाम है। सम्मेदशिखर की तरह अयोध्यापुरी के नीचे भी शाश्वत स्वस्तिक है।

इस शाश्वत तीर्थ में आकर खूब उत्साह से पूजा-भक्ति की। पूज्य गुरुदेव और साथ में आये हुए भक्तों की सातिशय तीर्थभक्ति देखकर आसपास से आये हुए दिगम्बर जैन बहुत प्रभावित हुए थे। मंगल यात्रा के बाद धर्मशाला में पूज्य गुरुदेव ने अतिशय भक्ति और वैराग्यरस टपकता प्रवचन किया था। उसमें इन्द्रों ने यहाँ भगवान के जन्मकल्याणक मनाये थे, उसका भक्तिभरा वर्णन किया; भरत चक्रवर्ती छह खण्ड जीतकर आता है, तब चक्ररत्न बाहर रुक जाता है, भरत-बाहुबली का युद्ध होता है, बाहुबली विरक्त होते हैं—ये सब घटनाएँ यहीं घटी थीं—ऐसा कहकर उसका वैराग्य-रस से भरा चित्र अंकित किया था, तदुपरान्त रामचन्द्रजी के वनगमन के वैराग्यप्रसंग का ऐसा रोमांचित वर्णन किया था कि श्रोताओं की आँखें सुनते-सुनते आँसुओं से भर गईं। राम-लक्ष्मण-सीता अयोध्या छोड़कर जब वन में जाते हैं, तब माताएँ रुदन करती हैं, भरत रोता है, अनेक राजा रोते हैं, प्रजा रोती है। इस करुण कहानी का उल्लेख करके गुरुदेव ने अत्यन्त वैराग्य से कहा:—अहा! जब रामचन्द्रजी इस सरयू नदी को पार करके अयोध्या छोड़ गये, तब अयोध्या के हजारों, लाखों प्रजाजन आँसुभरी आँखों से प्रार्थना करते रहे, परन्तु रामचन्द्रजी तो इन सबको वहीं छोड़कर चले गये। बाहर से देखनेवाले लोगों को ऐसा लगे कि, 'अरे! यह क्या हो गया? कहाँ तो अयोध्या का राजभोग और कहाँ यह वनगमन!! किन्तु रामचन्द्रजी तो धर्मात्मा थे, वे जानते थे कि हमारा प्रेम राज्य में भी नहीं था और न वन में भी है। हमारा प्रेम तो सदा हमारे ज्ञानस्वभाव में ही है।—इस प्रकार गुरुदेव करुणरस से वैराग्यरस में और वैराग्यभाव से निकालकर श्रोताओं की अध्यात्मरस में ले जाते थे। उस समय श्रोतागण मुग्ध

बनकर जम जाता था। और जब तीर्थंकर के जन्मकल्याणक को याद करके गुरुदेव फिर से भक्तिरस का प्रवाह बहाने लगते, तब भक्तगण भक्तिरस में डूब जाता था। इस प्रकार सरयू के तट पर पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से प्रवाहित ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की त्रिवेणी में आत्मार्थपूर्वक श्रवणस्नान करके यात्री पावन हुए थे। सचमुच, इस शाश्वत तीर्थ की यात्रा बहुत ही प्रभावनापूर्ण थी। गुरुदेव के साथ की गई इस मंगलयात्रा के अनुपम लाभ से भक्तजन अत्यन्त प्रसन्न होकर आनन्द का अनुभव करते थे।

अयोध्यापुरी से प्रस्थान करके गुरुदेव संघसहित, विद्वानों की नगरी और सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ का जन्मधाम काशीपुरी–बनारस पधारे। पण्डित कैलाशचन्द्रजी, प्रो. फूलचन्दजी, प्रो. खुशालचन्द्रजी आदि दिगम्बर जैन आम्नाय के मूर्धन्य मनीषीगण के साथ बनारस के जैनसमाज ने पूज्य गुरुदेव और यात्रियों को भावपूर्ण स्वागत किया। स्वागत यात्रा में प्रखर सिद्धान्तशास्त्री और अनेक विद्वानों के बीच में गुरुराज का दृश्य अत्यन्त प्रभावशाली था। इनमें से अनेक विद्वान विद्वत्परिषद के तीसरे अधिवेशन के अवसर पर सोनगढ़ आये थे। सोनगढ़ के आध्यात्मिक वातावरण से और पूज्य गुरुदेव द्वारा दिगम्बर जैनधर्म की जो असाधारण प्रभावना हो रही थी, इससे वे सब अत्यन्त प्रभावित हुए थे।

मंगल–प्रवचन में 'जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिउ...' सूत्र पर बोलते हुए गुरुदेव ने कहा:—'...कारणजीव 'त्रिकालमंगल' है; उसके श्रद्धान–ज्ञान–चारित्र के द्वारा ही परमात्मदशा प्रगट हो, वह 'अपूर्व मंगल' है। इस तरह त्रिकालमंगल के आश्रय से कार्यमंगल प्रकट होता है—कारणस्वभाव के अवलम्बन से मोक्षमार्ग और मोक्षरूप कार्य होता है; ऐसा कार्य प्रकट करके

स्वसमयरूप से जीना, वह मांगलिक है। इस प्रकार भगवान के जन्मधाम में गुरुदेव ने मांगलिक किया था।

बनारस के पास चन्द्रप्रभ भगवान का जन्मधाम चन्द्रपुरी और श्रेयांसनाथ भगवान का जन्मधाम सिंहपुरी है। इस प्रकार यहाँ सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, श्रेयांसनाथ और पार्श्वनाथ—इन चार तीर्थंकरों के जन्मधाम की पावन यात्रा का गुरुदेव के साथ लाभ मिलने से भक्त बहुत प्रसन्न हुए थे। इस अवसर पर गुरुदेव के सन्मान निमित्त से उनकी मंगलवर्धिनी छत्रछाया में 'स्याद्वाद-महाविद्यालय' का वार्षिक अधिवेशन रखा गया था। स्वागत-प्रवचन में सिद्धान्ताचार्य पण्डित श्री कैलाशचन्द्रजी ने भावभीने शब्दों में कहा था कि:—पूज्य स्वामीजी सौराष्ट्र में से इस तरफ पहली बार पधार रहे हैं—यह जब से सुना, तब से हमारे हर्ष का पार नहीं था। और आज हमारे विद्यालय में आपको विराजमान देखकर हमें और भी विशेष हर्ष हो रहा है। ...यह विद्यालय उत्तर भारत का एक आदर्श विद्यालय है; यहाँ अनेक धार्मिक एवं राजनैतिक नेता आ गये हैं, अब तक इन महाराजश्री का आगमन नहीं हुआ था। आज इस विद्यालय के अधिवेशन के शुभावसर पर पधारने से हम विद्वद्गण एवं छात्रगण को बड़ी प्रसन्नता हो रही है। हम महाराजश्री के साथ-साथ संघ के सभी सदस्यों का भी हार्दिक स्वागत करते हैं।

उसके बाद पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री ने भी भावपूर्ण स्वागत करते हुए कहा :—हमारे बड़े सौभाग्य हैं कि आज एक बड़े आध्यात्मिक सन्त हमारे विद्यालय में पधारे हैं। जैसे यहाँ पर गंगा का प्रवाह बह रहा है, वैसे ही अभी आप यहाँ पर स्वामीजी के मुख से अध्यात्मगंगा का

प्रवाह बहता हुआ देखेंगे। स्वामीजी ने समयसार अपने जीवन में उतार लिया है, यहाँ के लोगों ने स्वामीजी का प्रवचन सुना और आँखें खुल गईं। लोग व्यामोह में पड़ गये हैं कि यह क्या कहते हैं? आप सम्यक्त्व के ऊपर ही भार देते हैं, क्योंकि वही तो दुर्लभ है। ...सम्यक्त्व न हो लेकिन भद्र हो—सम्यक्त्व की बात आदरपूर्वक सुनता हो—तो वह भी सुमार्गशाली है। क्योंकि यथार्थ देशनालब्धि भी बहुत महत्त्व की है। ऐसी देशनालब्धि जहाँ मिलती है, वहाँ तक जो भाई-बहिन पहुँचे हैं, वे भी अभिनन्दनीय हैं।

गंगातट पर बही हुई अध्यात्मगंगा

समयसार की 19वीं गाथा पर प्रवचन करते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा:— 'जगत् में स्याद्वाद ही महाविद्या है। उस स्याद्वाद विद्या से अर्थात् भावश्रुतज्ञान से अन्तर में भूतार्थस्वभाव का आश्रय करना, वह मुक्ति का कारण है। भूतार्थस्वभाव का आश्रय करनेवाली विद्या के बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते नहीं हैं; इसलिए शुद्ध स्वभाव का आश्रय करना और रागादि का आश्रय छोड़ना, वही स्याद्वाद विद्या का तात्पर्य है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञानस्वरूप महास्याद्वादविद्या का मार्ग दिखाया। ऐसी स्याद्वाद विद्या ही मोक्ष का कारण है। 'सा विद्या या विमुक्तये।' वह यही विद्या है।

अहा! गुरुदेव के अध्यात्मश्रुतगंगा के पुनीत प्रवाह के साथ, नीचे बहते गंगाजल के जड़ प्रवाह की क्या तुलना हो सके? इस श्रुतगंगा का जल तो जीवों के अज्ञानमल को धो डालता है; ऐसी शक्ति जड़मय जलप्रवाह में कहाँ से आ सकती है? गंगा के किनारे पर 'स्याद्वाद महाविद्यालय' में गुरुदेव ने स्याद्वादविद्या की पावनकारी गंगा बहाई। लोग कहते हैं कि

गंगास्नान से जीवों के पाप धुल जाते हैं,—यह बात तो ठीक है, लेकिन वह कौन सी गंगा? वह जड़गंगा नहीं परन्तु श्रुतगंगा है। गुरुदेव की अद्भुत श्रुतगंगा में स्नान करके श्रोता पावन हो गये थे।

जीवनतीर्थ की मंगल छाया में तीर्थयात्रा

अहा! स्वानुभूतिविभूषित भेदज्ञानरूप जहाज के द्वारा भवसागर को तिरनेवाले और मुमुक्षु जगत को तिरानेवाले ऐसे पूज्य गुरुदेव का जीवन स्वयं ही वास्तव में साक्षात् तीर्थस्वरूप है। अहा! ऐसे जीवन्त तीर्थस्वरूप सन्तों के साथ भारत के अनेक तीर्थों की यात्रा करने में भक्तों को कोई अनन्य आनन्द हो रहा था और इस कारण वे बारबार गुरुदेव का उपकार प्रकट करते थे।

विद्वानों की नगरी में प्रभावक

दूसरे दिन सुबह में पार्श्वप्रभु की जन्मभूमि में पार्श्वप्रभु के दर्शन, अभिषेक, पूजन तथा भक्ति करने के बाद टाउन हॉल में गुरुदेव का प्रवचन हुआ था। काशीनगरी पण्डितों की नगरी है। जैन एवं जैनेतर विद्वत् समाज गुरुदेव का प्रवचन सुनने के लिये आया था। काशी में गुरुदेव के प्रवचन अध्यात्म के सूक्ष्म भावों से भरे रहते थे; निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त आदि विषयक पर्याप्त स्पष्टीकरण आता था।

प्रवचन के बाद पण्डित कैलाशचन्द्रजी ने कहा:—आपके ससंघ आगमन से हम सबको बहुत प्रसन्नता हुई है और यात्रा से वापस लौटते समय भी आप यहाँ दो-चार दिन ठहरने का प्रोग्राम अवश्य रखें-ऐसी विनति है। इस प्रकार की विनति करने के बाद उन्होंने कहा कि:—महाराजजी के प्रवचन के बारे में मैं कुछ कहना चाहता हूँ। अध्यात्म की यह कथनी सुनते

लोगों को ऐसा होता है कि 'यह क्या कहते हैं!—यह तो एक आत्मा की ही बात करते हैं!'—लेकिन यही तो प्रयोजन की चीज़ है, यह अपनी ही बात है, इस शरीर के भीतर रहे हुए आतमराम की यह चर्चा है।... सब जगह शरीर और शरीर के साथ सम्बन्ध रखनेवाली शिक्षा चलती है, लेकिन शरीर में स्थित आतमराम क्या चीज़ है, इसकी शिक्षा नहीं चलती। जिसकी शिक्षा नहीं, जिसकी चर्चा नहीं, वह बात महाराजजी अपने प्रवचन में बतला रहे हैं। लेकिन मैं क्या कहूँ!—'मोहि सुन सुन आवै हाँसी... पानी में मीन पियासी।'

शुद्धनय के अनुसार आत्मा का वास्तविक स्वरूप आप दिखला रहे हैं, आचार्यों ने भी यही दिखलाया है—'आत्मस्वभावं परभावभिन्नं, आपूर्ण-माद्यन्तविमुक्तमेकम्। विलीन संकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽ-म्युदेति॥' यह चीज़ अनुभवगम्य है।—इत्यादि प्रकार से गुरुदेव की प्रवचनशैली सम्बन्ध में स्पष्टता करके उनकी सहृदय प्रशंसा की थी।

सोनगढ़ तो अध्यात्म का गढ़ है

बनारस से यात्रासंघ डालमियानगर आया! प्रसिद्ध दिगम्बर जैन उद्योगपति श्री शान्तिप्रसादजी साहू की इस सीमेन्ट की उद्योगनगरी में अनेक कारखाने चलते हैं। उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री का तथा यात्रासंघ का भावपूर्ण स्वागत किया था और सब व्यवस्था उल्लासपूर्वक की थी। जिनमन्दिर में भव्य विशाल महावीर भगवान की पूजा एवं भक्ति बहुत आनन्द से हुई थी। रोटरी क्लब के विशाल कक्ष में पूज्य गुरुदेव का सन्मान समारोह और प्रवचन हुआ था। स्वागत-गीत के बाद वहाँ के एक विद्वान ने समारोह का प्रारम्भ करते हुए कहा कि आज हमें आध्यात्मिक जगत के एक बड़े सन्त का स्वागत करने का

सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस विषमय युग में आपने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि सच्ची शान्ति चाहिए तो वह बाहर से नहीं अपितु आत्मा में से ही मिलेगी। आज सोनगढ़ से कौन अपरिचित है! सोनगढ़ तो अध्यात्मधाम बन गया है। बात आती है—किसी ने पूछा:—पण्डित मण्डनमिश्र का घर कहाँ है? साश्चर्य पनिहारी ने कहा:—जहाँ तोता और मैना भी 'स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं' रट रहे हों, वही पण्डित मण्डनमिश्र का घर समझना। उसी प्रकार यदि मुझे पूछा जाय कि सोनगढ़ कहाँ आया? तो मैं कहूँगा कि जहाँ बालक भी प्रतिदिन अध्यात्म की चर्चा करते हों, वही श्री कानजीस्वामी का सोनगढ़ समझो। सोनगढ़ वास्तव में सुवर्ण का नहीं अपितु अध्यात्म का गढ़ बन गया है।

पण्डित अयोध्याप्रसादजी गोयली ने समाज की ओर से सन्मानपत्र अर्पण करते हुए कहा:—जब सूर्य और चन्द्र सहस्त्रों वर्ष तक परिभ्रमण करके पृथ्वी के कोने-कोने में शोध करते हैं, तब जाकर उनकी तपस्या के फल में उन्हें किसी महान सन्त का दर्शन होता है; उसी प्रकार भारतवर्ष में आज हमें इन महान अध्यात्मसन्त का सुयोग प्राप्त हुआ है...! जिस विश्ववंद्य विभूति के दर्शन के लिये सेठजी के साथ हमें सोनगढ़ जाना था, वह विभूति स्वयं आज हमारे प्रांगण में विराजमान है, यह हमारे सौभाग्य का विषय है। उसके बाद सेठश्री शान्तिप्रसादजी साहू, उनकी धर्मपत्नी रमारानी और अनेक अग्रगण्य महानुभावों ने पुष्पमाला द्वारा पूज्य गुरुदेव के लिये सन्मानांजलि समर्पित की थी।

गुरुदेव के अध्यात्म प्रवचन से प्रभावित आरा नगरी

विक्रमगंज रात रहकर गुरुदेव आरानगर पधारे। संघसहित पूज्य गुरुदेव के शुभागमन से वहाँ के समाज को बहुत उल्लास था। यहाँ 40

जिनमन्दिर और ब्रह्मचारी श्री चन्दाबाई संचालित 'जैन बालाश्रम' है। बालाश्रम में 13 फीट उन्नत बाहुबली भगवान और भव्य मानस्तम्भ है। इस जैन नगरी के भव्य मन्दिरों की यात्रा का गुरुदेव के साथ लाभ मिलने से भक्तों को आनन्द हुआ था। गुरुदेव का प्रवचन सुनकर जनता ने ऐसे अध्यात्म प्रवचनों का विशेष लाभ उन्हें मिलना चाहिए, ऐसी विनति की थी। शाम को बाहुबली के समक्ष उल्लासपूर्वक भक्ति हुई थी। शाम को ब्रह्मचारी चन्दाबाई ने गुरुदेव के समक्ष उनके प्रांगण में गुरुदेव के पधारने से बहुत प्रसन्नता व्यक्त की थी। थोड़ी धर्मचर्चा के बाद सोनगढ़ के ब्रह्मचर्याश्रम के विषय में बात निकली, तब पूज्य गुरुदेव ने पूज्य भगवतीमाता बहिनश्री चम्पाबहिन की पवित्र परिणति तथा उनकी दूसरी भी कहने योग्य महिमामय बातें की थीं। पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से ये बातें सुनकर ब्रह्मचारी चन्दाबाई ने बहुत प्रमोद व्यक्त किया था।

सुदर्शन सेठ का पटना और श्रेणिक की राजगृही

आरा से पूज्य गुरुदेव ससंघ पटना-शहर में पधारे। गंगा के तट पर बसा हुआ यह शहर श्री सुदर्शन सेठ की मोक्षभूमि है। पूज्य गुरुदेव के साथ इस सिद्धक्षेत्र की यात्रा करके, विहार शरीफ होकर सब श्रेणिक राजा की राजधानी राजगृही नगर में पहुँच गये। यहाँ के विपुलाचल पर्वत पर महावीर भगवान का समवसरण आया था और उनकी प्रथम देशना यहीं प्रकट हुई थी। इस पवित्र धाम में विविध धर्मवैभवयुक्त पाँच पहाड़ हैं। विपुलाचल पर पूज्य गुरुदेव ने जो भक्ति कराई थी, उसके आनन्द की क्या कहें! गुरुदेव ने इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति गौतम का आगमन, मानस्तम्भ देखते ही उनका मानगलन और महावीर

भगवान की दिव्यध्वनि का छूटना आदि विषय का विस्तृत, महिमायुक्त चित्र खड़ा किया था, जिसको सुनकर भक्तजन बहुत ही आनन्दित हुए थे।

1 विपुलाचल, 2 रत्नगिरि, 3 उदयगिरि, 4 सुवर्णगिरि (सोनागिरि अथवा श्रमणगिरि) और 5 वैभारगिरि—इन पंच शैल की क्रमशः दो दिनों में आनन्ददायी यात्रा की। अहा! उस आनन्द की क्या बात करें? आज भी, पूज्य माताजी के श्रीमुख से उसके संस्मरण सुनते-सुनते रोमांच हो जाता है! यात्रा का आनन्द व्यक्त करने के लिये बड़ी रथयात्रा निकली थी। जिनेन्द्र-अभिषेक के बाद पटना तथा गया शहर के जैन समाज की ओर से पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दनपत्र समर्पित किये गये थे। राजगृही की पावन यात्रा के मधुर संस्मरणों को हृदय में भरकर भक्तजन पूज्य गुरुदेव के साथ कुण्डलपुर और नालन्दा होकर फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा के दिन महावीर निर्वाणधाम श्री पावापुरी में पधारे।

पावापुरी की प्रभावनापूर्ण भव्य यात्रा

अत्यन्त रमणीय जल-मन्दिर की मनमोहक भव्यता देखकर पूज्य गुरुदेव तथा भक्तजनों को बहुत ही आनन्द हुआ। मनोमन्दिर में भगवान के निर्वाण का पावन चित्र साक्षात् हुआ। वीरशासन प्रभावक गुरुदेव पधारे और पूरा वातावरण आह्लाद से भींग गया। दिगम्बर जिनमन्दिर में महावीर भगवान की विशाल खड्गासन जिन प्रतिमाजी हैं, जिनकी भव्यता यात्रियों को बहुत ही आकर्षित करती है। फाल्गुन शुक्ला दूज के दिन भक्तों के मनःपट पर सोनगढ़ में सीमन्धरनाथ की प्रतिष्ठा के समय हुए विधिनायक श्री महावीर प्रभु के पंचकल्याणक के मधुर दृश्य प्रत्यक्ष हुए। जलमन्दिर में पूज्य गुरुदेव ने संघ के साथ आनन्दकारी पूजा-भक्ति की। (पूज्य गुरुदेव ने भक्ति भी

अन्तर के कोई अनन्यभाव से कराई थी।) पूज्य गुरुदेव के भक्तिरंग से भक्तों के हृदय आनन्द से उछलते थे। दूसरे दिन जल-मंदिर के प्रांगण में महावीर-अभिषेक का भव्य समारोह रखा गया था। चारों ओर क्षीरसमुद्र-सा रमणीय सरोवर और बीच में भक्तों द्वारा महावीर-अभिषेक, अहा कैसा आनन्दकारी अवसर! पूज्य गुरुदेव के प्रताप से इस अपूर्व लाभ की प्राप्ति भक्तों को आनन्द दे रही थी।

गौतम मोक्षधाम गुनावा

वीर निर्वाणधाम की पवित्र यात्रा करके गौतम-सिद्धिधाम गुनावा सिद्धक्षेत्र में आये। यह पवित्र धाम भी महावीर-निर्वाण धाम की तरह सरोवर के बीच में है। पूज्य गुरुदेव के प्रभावना-उदय से आह्लादित बने यात्रियों ने गुरुदेव के साथ जिनमन्दिर में दर्शन किये, अर्घ्य चढ़ाया और उसके बाद बहुत भावपूर्वक भक्ति की। शाम के समय पूज्य गुरुदेव आसपास के दृश्य देखते हुए घूम रहे थे, तब वहाँ के पुजारी ने कहा:—सामने जो खण्डहर दिखता है, वहाँ इन्द्रभूति-गौतम का आश्रम था। गुरुदेव ने वह स्थान भक्तों को दिखाया, जिसको देखकर सभी को बहुत प्रसन्नता हुई... और गणधरदेव श्री गौतमस्वामी के जयनादों से वातावरण भर गया।

गया से सम्मेदशिखर की ओर प्रस्थान

फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन नवादा होकर 'गया' आये। गया वैष्णव और बौद्धों का बड़ा यात्राधाम है। जैनों के दो मन्दिरों के दर्शन किये। दोपहर में प्रवचन के बाद जैन युवक मण्डल की ओर से पूज्य गुरुदेव को अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया था। सुबह में पूज्य गुरुदेव ने 'कल्याणवर्षिनी' में यात्रा प्रवास के चरमध्येय ऐसे श्री सम्मेदशिखर (शाश्वत्

निर्वाण एवं सिद्धिधाम) की ओर मंगल प्रस्थान किया। साथ में आये हुए अनेक यात्री पहले से वहाँ पहुँच गये थे। मुमुक्षुभक्तों को लेकर बम्बई से एक स्पेशल ट्रेन भी आ पहुँची थी। भक्तों का विशाल समुदाय पूज्य गुरुदेव के पधारने की प्रतीक्षा में, भव्य स्वागत की तैयारी में लग गया था।

'कल्याणवर्षिणी' में बैठे-बैठे पूज्य गुरुदेव सम्मेदशिखर के पवित्र पहाड़ का दूर से निरीक्षण कर रहे थे। अहो! उस पवित्र धाम के प्रथम दर्शन से जो हृदयोर्मियाँ उछल रही थीं, उनकी क्या बात करें! दूर से दिखनेवाली टूंक पर दृष्टि गड़ी थी और रास्ता तेजी से पार किया जा रहा था—जिस प्रकार ज्ञायक पर दृष्टि स्थिर करके साधक का मार्ग जल्दी से पूरा हो जाता है, वैसे ही। दूर से 'कल्याणवर्षिणी' को देखते ही हजारों यात्रियों का जयनाद एवं बाजों का मंगल नाद शिखरजी के पहाड़ों के साथ टकराकर उनके प्रतिघोष गगन में फैल गये। 'कल्याणवर्षिणी' से उतरकर गुरुदेव ने सबसे पहले शिखरजी के प्रति हाथ जोड़कर भावपूर्वक प्रणाम किया।

मुक्तिगामी का मुक्तिधाम में शुभागमन

तेरापंथी कोठी में स्थित भव्य जिनमन्दिरों के दर्शन के बाद, मधुवन के छोटे से बाजार में होकर स्वागतयात्रा बीसपंथी कोठी में बनाये गये भव्य और विशाल मण्डप में आ पहुँची। वहाँ पर हजार श्रोताओं की सभा में मांगलिक सुनाते हुए पूज्य गुरुदेव ने अन्तर के प्रमाद से कहा:—'अनन्त तीर्थंकर एवं मुनिवर शुद्धात्मानुभूतिविभूषित रत्नत्रयरूप तीर्थ की आराधना करके संसार को पार कर इस क्षेत्र से सिद्धपद पाये हैं। देखो, इस सिद्धक्षेत्र के ऊपर समश्रेणी में अनन्त सिद्ध विराजते हैं। मंगलमय सिद्धरूप साध्यदशा जिस

भाव से प्रकट हुई, वह सम्यग्दर्शनादि साधकभाव भी मंगल है। 'धवला' टीका में आचार्यदेव ने कहा है :—'भविष्य में मुक्त होनेवाला आत्मद्रव्य भी त्रिकाल मंगल है, अल्पकाल में होनेवाली मुक्तिपर्याय के साथ वह बँधा हुआ है और जिस काल-क्षेत्र से आत्मा मुक्त हुआ, वह काल और क्षेत्र भी व्यवहार से मंगल है। इस प्रकार यह सम्मेदशिखर, पावापुरी आदि निर्वाण एवं सिद्धक्षेत्र भी मंगल हैं। ऐसी मोक्षभूमि को देखकर साधक को मोक्षतत्त्व का स्मरण होता है। ऐसे पवित्र स्मरण में निमित्तभूत इस पावन तीर्थ की यात्रा के हेतु हम यहाँ आये हैं।' इस प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—सर्व प्रकार से मांगलिक किया। पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से सम्मेदशिखर की अध्यात्मरसयुक्त महिमा सुनकर, श्रोताओं को पूज्य गुरुदेव की प्रभावशाली वाणी के प्रति अनन्य उल्लास आता था। इस महत्त्वपूर्ण तीर्थक्षेत्र में सौराष्ट्र के आध्यात्मिक सन्त की चैतन्यस्पर्शी अमृतवाणी का लाभ लेने के लिये भारतवर्ष के अनेक प्रदेशों से बहुत से हिन्दी भाषी दिगम्बर जैन भी आये थे। सबको पूज्य गुरुदेव की वाणी सुनने की भावना थी।

दोपहर में पूज्य गुरुदेव, मु. श्री रामजीभाई, अध्यात्मरसिक पं. श्री हिम्मतलालभाई, ब्रजलालभाई, नेमिचन्दभाई आदि कई भक्तों के साथ ईसरी आश्रम में, श्री गणेशप्रसादजी वर्णी से मिलने के लिये, पधारे थे। वर्णीजी के साथ करीब आधे घण्टे तक वात्सल्यपूर्ण बातचीत हुई थी। गुरुदेव से साक्षात् मिलकर वर्णीजी ने खूब प्रसन्नता व्यक्त की थी और मधुवन आने की एवं गुरुदेव संघ के साथ वहाँ जब तक रहें, तब तक वहाँ रहने की भावना व्यक्त की थी।

शाश्वत सिद्धिधाम में गुरुदेव द्वारा मार्ग-प्रभावना

दोपहर में मधुवन में 'नमः समयसाराय....' श्लोक के ऊपर पूज्य

गुरुदेव का अध्यात्मरस से भरा सरस प्रवचन हुआ। मुनि, अर्जिकाएँ, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाएँ, उदासीन ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वगैरह अनेक त्यागी, विद्वानगण एवं अनेक गाँव के प्रतिष्ठित गृहस्थों सहित पाँच हजार जितने श्रोताओं से खचाखच भरी प्रवचनसभा अत्यन्त भव्य लगती थी। अहा! जैसे तीर्थंकर भगवान के समवसरण में दशों दिशाओं से श्रोता आते हैं, वैसे गुरुदेव की दिव्यवाणी सुनने के लिये चारों ओर से हजारों जिज्ञासुओं का मेला भरा था। अहा! कितना अद्भुत था गुरुदेव का प्रभावना योग!

गुरुदेव का प्रभावक व्यक्तित्व

फाल्गुन शुक्ल छठ के दिन सुबह में तलहटी के सभी जिनायतनों में जाकर, सभी जिनभगवन्तों के दर्शन करके पुष्पदन्त भगवान की वेदी के समक्ष यात्रासंघ के सभी भाई-बहनों ने पूज्य गुरुदेव के साथ अत्यन्त भाव से पूजा की। सौराष्ट्र के हजार से भी अधिक भक्तों द्वारा की गई भावभीनी समूहपूजा देखकर मूल दिगम्बर आनन्द से गद्गद हो जाते थे। दोपहर के समय पंडित फूलचन्द्रजी, पण्डित पन्नालालजी, पण्डित दयाचन्द्रजी, पण्डित खुशालचन्द्रजी वगैरह विद्वद्गण श्री गणेश दिगम्बर जैन विद्यालय (सागर) का सुवर्णजयन्ती-महोत्सव यहाँ मधुवन में पूज्य गुरुदेव की मंगलवर्धिनी छाया में मनाने का निर्णय करने के लिये आये थे। वे गुरुदेव से विनति करके कहने लगे :—'वर्णीजी महाराज आपकी प्रसन्न मुद्रा की बार-बार प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि—स्वामीजी की प्रसन्न मुद्रा मुझे बहुत पसन्द आई; और मुझे ऐसा लगा कि इस आत्मा के द्वारा समाज का कल्याण होगा।' तदुपरान्त उन विद्वानों ने स्वयं भी गहरे भाव के साथ प्रवचन एवं पूजा-भक्ति के कार्यक्रमों

की प्रशंसा करते हुए कहा:—आपके प्रवचन और पूजा-भक्ति के कार्यक्रम देखकर दो दिन में तो यहाँ का सारा वातावरण पलट गया है। ऐसा व्यवस्थित और भावपूर्ण कार्यक्रम और ऐसी भक्ति हमने कहीं नहीं देखी। तब गुरुदेव ने कहा:—जो चम्पाबहिन हैं उनकी आत्मानुभूति, उनका निर्मल सम्यग्दर्शन इत्यादि अन्य बहुत है...। लेकिन यह बात अन्तर की है। इस तरह दोपहर में गुरुदेव के साथ हुई बातचीत से सब विद्वान प्रसन्न हुए थे।

सिद्धिधाम की अपूर्व यात्रा

गुरुदेव की यात्रा की उमंग कोई अनूठी थी। यात्रा के लिये प्रस्थान का समय सुबह 4 बजे निश्चित हुआ था। गुरुदेव 12.00 बजने पर जाग गये और डेढ़ बजने तक तो तैयार होकर प्रस्थान-स्थल के पास पहुँच गये। गुरुदेव के पधारते ही यात्रियों में उल्लासपूर्ण कोलाहल हो गया। व्यवस्था-क्रम में लगे हुए मुख्य कार्यकर्ता देर से सो सके थे, वे जल्दी-जल्दी उठकर आश्चर्य से तैयार होने लगे। ढाई बजने पर 'शाश्वत् सिद्धिधाम सम्मेदशिखर की जय हो' ऐसे गगनभेदी जयनादों के साथ, मंगल प्रस्थान हुआ।

फाल्गुन शुक्ला सप्तमी का दिन है। आज चन्द्रप्रभ भगवान के निर्वाण का मंगल पर्व है। सम्यक्त्व तीर्थप्रभावक पूज्य गुरुदेव के साथ सम्मेदशिखर शाश्वत् सिद्धिधाम की मंगलयात्रा करने की हजारों यात्रियों की दीर्घकालीन भावना आज सफल हुई। भक्त लोग भावना करते थे कि—हे सिद्ध भगवन्त! कहान गुरुदेव के नेतृत्व में हुई इस सिद्धिधाम की अपूर्वयात्रा के अध्यात्मभाव हृदयगत करने की शक्ति हमें दीजिये... और गुरुदेव के साथ हमें भी सिद्धिपथ की ओर ले जाइये।

सिद्धिमार्ग के नेता कहानगुरु के पीछे हजारों मुमुक्षु यात्री सिद्धिधाम का मंगल आरोहण कर रहे हैं। यात्रियों की लम्बी कतार में कितनेक लोग जयकार के नाद से गगन भर देते हैं, कई मधुर भक्तिगीत गाते हैं, कई पंचपरमेष्ठी का स्मरण करते हैं—इस प्रकार प्रशस्तभाव से आरोहण करते सब अरुणोदय के पहले ही प्रथम टोंक पर पहुँच जाते हैं। पीछे रह गये मु. रामजीभाई आदि यात्रियों की प्रतीक्षा के लिये पूज्य गुरुदेव ऊपर विश्रामधाम में थोड़ी देर के लिये बैठे। समवसरण की बारह सभाओं की भाँति भक्तजन पूज्य गुरुदेव के चारों ओर बैठ गये।

पूज्य गुरुदेव ने आज की यात्रा के सम्बन्ध में बहुत ही प्रमोद व्यक्त करते हुए कहा:—आज यह महामंगल अवसर है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—सभी मंगल हैं।

* अल्पकाल में मुक्त होनेवाला आत्मद्रव्य है, वह द्रव्य-मंगल है।
* यहाँ से अनन्त जीव सिद्ध हुए हैं, इसलिए इस सम्मेदशिखर की भूमि क्षेत्र-मंगल हैं।
* आज श्री चन्द्रप्रभ भगवान के निर्वाण का दिन है, इसलिए आज का दिन काल-मंगल है।
* रत्नत्रयरूप तीर्थ की भावना से भीगा हुआ आज का भाव, भाव-मंगल है।
* इसलिए हमारे लिये सभी मंगल है।

गुरुदेव के श्रीमुख से शाश्वत् तीर्थराज की यात्रा के प्रारम्भ में ऐसा प्रमोदपूर्ण मांगलिक सुनकर सबको बहुत ही आनन्द हुआ था। मांगलिक के

बाद प्रथम कुन्थुनाथ भगवान की टोंक से हजारों यात्रियों की भीड़ के बीच पूजनभक्ति शुरु हुए। क्रमशः आनेवाली सभी टोंकों पर पूज्य गुरुदेव उन-उन तीर्थंकर या गणधरों के चरणचिह्नों का नतमस्तक होकर स्पर्श करते थे, बाद में अर्घार्चन करते थे। अहा! चन्द्रप्रभ भगवान की टोंक पर हुए पूजा-भक्ति के आनन्द की क्या कहें? पूज्य गुरुदेव ने स्वयं चरणपट पर उत्कीर्ण प्रशस्ति पढ़ी, उसके बाद अत्यन्त भाव से भक्ति हुई थी। भक्ति के बाद पूज्य गुरुदेव ने खड़े होकर शिखरजी की सभी टोकों का भाव से विहगावलोकन किया। अत्यन्त दूर अन्तिम पार्श्वनाथ भगवान की टोंक दृष्टिगोचर होती थी। सिद्धिधाम का रमणीय दृश्य देखकर गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए।

वहाँ से लौटते हुए 'जलमन्दिर' में थोड़ा विश्राम करके पूज्य गुरुदेव के साथ संघ ने पार्श्वनाथ टोंक की तरफ प्रयाण किया। रास्ते में दूसरे अनेक भगवन्तों की टोंकें आईं, वहाँ अर्घ्यपूजा करते-करते सब सुपार्श्वनाथ भगवान की टोंक पर आये। इस 'प्रभात' टोंक पर आने पर बहुत उत्साह जागा। गुरुदेव के प्रमोद से सुपार्श्वप्रभु के चरणों का अभिषेक किया। गुरुदेव के हस्त से अभिषेक होता हुआ देखकर भक्तों में आनन्द फैल गया। उल्लासपूर्वक पूजा-भक्ति करने के बाद गुरुदेव ने भावपूर्वक मोक्ष के कारणस्वरूप अध्यात्मभावना का प्रवाह बहाया, जिसका श्रवणपान करके, गुरुदेव के साथ सिद्धिधाम में आये हुए भक्त आनन्द से कृतार्थ हुए। उस मंगल भावना में 'मैं एक शुद्ध सदा अरूपी ज्ञानदर्शनमय अरे' और 'अपूर्व अवसर ऐसा कब हम पायेंगे?'—इसकी मनमोहक धुन द्वारा अन्तर के चैतन्यरस को घूँटते हुए गुरुदेव ने कहा:—ऐसी अपूर्व साधना द्वारा परिपूर्ण वीतरागदशा प्रकट करके,

सर्वज्ञपद प्राप्त करके, इच्छारहित सहजभाव से चारों ओर मोक्षमार्ग का प्रवर्तन करके क्रमशः अनन्त तीर्थंकरों का इस पवित्र सिद्धक्षेत्र पर आगमन हुआ है। यहाँ योगनिरोध दशा होकर उन्होंने मोक्षपद प्राप्त किया है। अहा! मुक्तिपथ के मंगलप्रवासी कहान गुरुदेव के मंगल मुख से मोक्षपद की भावना सुनने का कैसा मंगल अवसर! गुरुदेव की वैराग्य और भक्तिभीनी अध्यात्मधुन से संघ में साथ आये हुए कई अमूर्तिपूजक जैन महानुभाव भी बहुत ही प्रभावित हुए थे। वे भी गुरुदेव के साथ यात्रा करने का लाभ प्राप्त करके अपने को कृतार्थ मानते थे।

वहाँ से आगे चलकर, दूसरी अनेक टोंकों पर दर्शन, चरणस्पर्श और अर्घार्चन करके पूज्य गुरुदेव अन्तिम टोंक पर—श्री पार्श्वनाथ भगवान की सुवर्णभद्र टोंक पर—पहुँच गये। बीच में चलते-चलते भक्तिगीत और जय-जयकार के मधुर नादों से गगन को गुँजाते हुए भक्त भी गुरुदेव के पास पहुँच जाने के लिये जल्दी-जल्दी चलने लगे। प्रत्येक टोंक की तरह यहाँ भी पार्श्वप्रभु के पावन चरणों के दर्शन, वन्दन, स्पर्शन, अर्घार्चन और जयनादकरण —इस प्रकार पंचविध यात्रा की। स्थान छोटा होने से गुरुदेव ने कहा:—बाहर बैठकर भक्ति करेंगे, जिससे दूसरे यात्री भीतर जाकर दर्शन आदि कर सकें। मंगल आदेश स्वीकार कर सभी भक्त गुरुदेव के चारों ओर बैठ गये।

अहा! सम्मेदशिखर की पच्चीसों टोंकों की यात्रा पूर्ण करके उसके सर्वोच्च शिखर-सुवर्णशिखर पर सुवर्णपुरी के सन्त यात्रियों के मध्य में ऐसे शोभते थे मानों बारह परिषद के मध्य में तीर्थंकर भगवान बैठे हों! जैसे धर्मकाल में या तो विदेहक्षेत्र में कोई महान आचार्य-सन्त चारों ओर के

सैकड़ों मुनिवरों के समुदाय के मध्य में शोभते हों और आनन्ददायिनी चैतन्य की चर्चा करते हों—अहा! ये दृश्य कितने अद्भुत होते हैं! वैसे ही यहाँ भी सिद्धिधाम के चरमशिखर पर सैकड़ों मुमुक्षु यात्रियों के मध्य में शोभते गुरुदेव जैसे भारतवर्ष के अद्वितीय महान युगसन्त आज की, जीवन में पहली ही बार हुई मंगल यात्रा की, आनन्ददायी चर्चा करके अध्यात्मरस का पोषण कर रहे थे। सचमुच, उस समय गुरुदेव की प्रसन्नता का दृश्य अद्भुत था।

यहाँ प्रथम गुरुदेव ने अत्यन्त भावपूर्वक भक्ति कराई। 'पार्श्व जिणंद को प्रीत से नित्य वंदूँ...' इत्यादि स्तवन द्वारा पूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से वैराग्यरसपूर्ण भक्तिस्रोत जैसे-जैसे बहता गया, वैसे-वैसे भक्ति का प्रशमरससिक्त उत्साह बढ़ता गया। उसके शान्तरस में लीन प्रशममूर्ति भगवती माताजी एवं सभी को ऐसा लगता था कि अहा! स्वानुभवतीर्थप्रभावक गुरुदेव के श्रीमुख से ऐसी मधुर भक्ति सुनते ही रहें। जिस प्रकार भगवान के समवसरण में बैठे हुए जीवों को वहाँ से उठने की जरा भी इच्छा नहीं होती, वैसे ही गुरुदेव के भक्तिरस का अमृतपान करनेवाले भक्तों को भी वहाँ से उठने की इच्छा नहीं होती थी। लम्बी यात्रा की थकान पूज्य गुरुदेव के भक्तिरस के दूर कर दी। अहा! मुमुक्षुओं की अनादि की भवयात्रा की थकान दूर करनेवाले पूज्य गुरुदेव के पावन प्रभावनायोग में ऐसी आश्चर्यकारी अद्भुतता न हो तो जगत में दूसरे कौन से स्थान में होगी? सचमुच, गुरुदेव के भक्तिरस से पूरे के पूरे यात्रासंघ में हर्षोल्लास फैल गया था। पूज्य गुरुदेव ने दो स्तवन गवाये, उसके बाद गाये गये 'विचरंता चोबीस जिनने वंदु भावे...' और 'तुमसे लगनी लागी जिनवर, तुमसे लगनी लागी,...' इन दोनों स्तवनों द्वारा

भक्तिरस में बाढ़ आयी। भक्तिपूर्ण होते ही पूज्य गुरुदेव ने स्वमुख से 'सम्मेदशिखर तीर्थधाम की जय हो! श्री चन्द्रप्रभु भगवान की जय हो! श्री पार्श्वनाथ भगवान की जय हो! और श्री शाश्वत् निर्वाधाम की जय हो!'—इस प्रकार 'जयनाद' कराया। गुरुदेव ने प्रसन्नता से पुकार हुए 'जयकारनाद' के श्रवण के विरल एवं दुर्लभ सौभाग्य से आनन्दित विशाल भक्त-समुदाय ने वह मंगलनाद झेलकर ऊँची आवाज से गगन को भर दिया, जिसके प्रतिघोष दूर-दूर तक फैल गये।

गुरुदेव के परम प्रताप से हुई आज की अपूर्व और अद्भुत यात्रा के लिये अहोभाव दर्शाते हुए सभी यात्रियों ने गुरुदेव के पीछे-पीछे उतरना शुरु किया—जिस प्रकार भक्तिरस में उमड़े हुए साधक बाद में स्वरूप में उतर जाते हैं, वैसे ही। अहा! इस मंगलयात्रा की तो क्या बात करें? गुरुप्रताप से जीवन में कई ऐसे आनन्ददायी अवसर आ जाते हैं जो कि वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं किये जा सकते। मु. श्री नानालालभाई, रामजीभाई, आदरणीय पण्डित श्री हिम्मतभाई, ब्रजलालभाई, आनन्दभाई वगैरह भाई तथा प्रशममूर्ति भगवती माता बहिनश्री चम्पाबहिन, बहिन शान्ताबेन आदि बहिनें और विभिन्न नगरों से आये हुए अनेक यात्री भाई-बहिनें गुरुदेव के साथ की गई, इस अभूतपूर्व यात्रा का आनन्द अनुभवते थे। भक्तिगीत एवं गुरुदेव की उपकार-महिमा गाते-गाते और गुरुदेव के साथ प्राप्त हुए अपूर्व यात्रालाभ के आनन्द का रसास्वाद लेते हुए शाम के तीन बजने पर सब तलहटी में पहुँच गये। उतरने के बाद पूज्य गुरुदेव ने पीछे मुड़कर शिखरजी के पहाड़ का पुनरावलोकन किया; पावन शाश्वत सिद्धिधाम को भावभीगे चित्त से नमस्कार किया। भक्तों ने गुरुदेव का अनुकरण किया। इस तरह मंगल

जयनाद करते-करते, घण्टनाद करते-करते और पुनः-पुनः इस सिद्धिधाम की यात्रा करने की भावना भाते-भाते भक्तों ने यात्रा पूर्ण की।

यात्रा की पूर्णता के अवसर पर जिनेन्द्रभक्त भक्तयात्री के हृदय में ऐसा भक्तिभीना वेदन रहा करता था कि—हे अनन्त सिद्धभगवन्त! हे अनन्त जिनेन्द्र! हे अनन्त गणधरादि मुनिवर! आपके इस पवित्र मुक्तिधाम की गुरुदेव के साथ यात्रा करने की दीर्घकालीन हमारी भावना आज पूर्ण हुई...; आज हमारे मनोरथ सफल हुए;... आज भगवान की भेंट हुई। हे गुरुदेव! आपके परम अनुग्रह से यह अपूर्व लाभ मिला है,... आपका इस जीवन में परम-परम उपकार है।... आज इस महामंगलकारी शाश्वत् तीर्थधाम की यात्रा हुई, वह आत्मा के हित का कारण है।

वासुपूज्य-कल्याणकधाम चम्पापुरी-मन्दारगिरि

सम्मेदशिखर के निवास के समय में गुरुदेव ने संघसहित 160 मील दूर के, बालब्रह्मचारी वासुपूज्य भगवान के पंचकल्याणक के पावनधाम चम्पापुरी-मन्दारगिरि की यात्रा की थी। रास्त में गिरिडीह और देवधर होकर दोपहर में भागलपुर पहुँचे। वहाँ के दिगम्बर जैन समाज ने गुरुदेव का भावभीना स्वागत किया, प्रवचन का खूब उत्साह से लाभ लिया, प्रवचन के बाद समाज की ओर से अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया था।

फाल्गुन शुक्ला दसवीं के प्रातः काल भागलपुर से थोड़ी दूरी पर गंगा के तट पर बसे नाथनगर अर्थात् चम्पापुर के भव्य जिनालयों के गुरुदेव ने संघसहित दर्शन किये, पूजन किया और वासुपूज्य भगवान का अभिषेक किया। गुरुदेव को अपने करकमल से जिनेन्द्र-अभिषेक करते हुए देखकर

भक्तों को अत्यन्त आनन्द हुआ। गुरुदेव ने बड़वानी, पावापुरी, शिखरजी आदि स्थानों पर चरणाभिषेक किया था परन्तु यहाँ तो साक्षात् वासुपूज्य भगवान की जिनप्रतिमा का अभिषेक किया था। गुरुदेव के जीवन में यह नाविन्य था, जिसे देखकर मु. श्री नानालालभाई जसाणी वगैरह प्रमुख महानुभावों को भी बहुत प्रसन्नता हुई। इस आनन्दकारी प्रसंग की खुशी में यात्रासंघ की ओर से अच्छीसी दानराशि घोषित हुई, जिसका उपयोग पूज्य गुरुदेव के निवास के मकान का जीर्णोद्धार करने में किया जायेगा, ऐसा निश्चित हुआ। गुरुदेव प्रवचन में छोटी पीपर का दृष्टान्त अनेक बार देते, जिसकी बेल यहाँ जिनमन्दिर के उद्यान में पहली बार देखी। गुरुदेव ने यात्रियों का लक्ष्य उसकी ओर खींचा। उसके बाद जब-जब वे छोटी पीपर का दृष्टान्त देते, तब चम्पापुरी की उस बेल को याद करते थे।

दूसरे दिन सुबह गुरुदेव संघसहित वासुपूज्य निर्वाणधाम मन्दारगिरि की यात्रा के लिये पधारे। भागलपुर से करीब 30 मील दूर मन्दारगिरि पर्वत पर वासुपूज्य भगवान के दीक्षा, केवल और मोक्षकल्याणक हुए हैं। आह! इस पवित्र धाम की यात्रा करने में यात्रियों को बहुत आनन्द होता था क्योंकि चम्पापुरी के स्वामी बालब्रह्मचारी वासुपूज्य भगवान को, भगवती माता पूज्य चम्पाबहिन के पवित्र जन्मदिन (गुजराती) सावन कृष्णा दूज के मंगल दिन- करोड़ों वर्ष पहले इस पवित्र भूमि में केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई थी! गुरुदेव के साथ भावपूर्ण पूजा भक्तिपूर्वक की गई, इस मधुर यात्रा के मधुर संस्मरण भक्तजनों के हृदय में जम गये हैं।

पुनः शिखरजी आये। फाल्गुन शुक्ला 12-13 के दिन श्री गणेश दि.

जैन संस्कृत विद्यालय (सागर) का सुवर्ण जयन्ती महोत्सव पूज्य गुरुदेव की प्रभावयुक्त मंगल छाया में मनाया गया था। इस अवसर पर आत्मा और आस्रव की भिन्नता के ऊपर, पूज्य गुरुदेवश्री का—अनेक मुनि, त्यागी, विद्वान तथा पाँच हजार से भी अधिक संख्या में उपस्थित श्रोता समुदाय के समक्ष—बहुत प्रभावशाली प्रवचन हुआ था। शास्त्राभ्यासी कई विद्वान पूज्य गुरुदेव की चैतन्य की गहराई को छूकर निकलती वाणी से प्रभावित होकर प्रसन्नता से झूमते थे, तो कई सूक्ष्म अध्यात्म को सरल भाषा में अस्खलित रूप से प्रस्तुत करने के गुरुदेव के प्रवचन-कौशल्य का अहोभाव से आश्चर्य अनुभवते थे।

प्रवचन और भक्ति के बाद जो अभूतपूर्व तीर्थयात्रा हुई थी, उसकी खुशी में जिनेन्द्ररथोत्सव का क्रम रखा गया था। फाल्गुन की अष्टाह्निका पूज्य गुरुदेव ने संघसहित विभिन्न मन्दिरों में पूजा-भक्ति के समारोहपूर्वक यहीं मधुवन में पूर्ण की। फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा के दिन सुबह में दर्शन-पूजन के बाद गुरुदेव का प्रवचन हुआ। प्रवचन के बाद सैकड़ों पण्डितों के विद्यापिता पण्डित श्री बंसीधरजी सिद्धान्तशास्त्री (इन्दौर) ने अपने भाषण में आँखों में आँसू भरकर गद्गद्वाणी से साहस करके स्पष्टतया जाहिर किया कि "अनन्त चौबीसी के तीर्थंकर और आचार्यों ने सत्य दिगम्बर जैनधर्म को—अर्थात् मोक्षमार्ग को—प्रकट करनेवाला जो सन्देश सुनाया है वही इनकी (कानजीस्वामी की) वाणी में हम सुन रहे हैं।...महावीर भगवान ने जो कहा और कुन्दकुन्दादि आचार्यों ने जो कहा वही आज यह महाराजश्री प्रसिद्ध कर रहे हैं।... आपकी वाणी में तीर्थंकरों का और कुन्दकुन्दस्वामी का ही हृदय था।... आपकी दृष्टि से जो तत्त्व प्रतिपादित होता है, वह जगत के लिये कल्याणकारी है।"

समाज के मूर्धन्य पण्डित द्वारा व्यक्त किये गये इन भावसभर उद्‌गारों से सम्पूर्ण सभा में हर्ष का वातावरण फैला गया था; उपस्थित त्यागीगण एवं विद्वद्‌गण सब साश्चर्य मुग्ध बन गये थे। पूज्य गुरुदेव के प्रभावनोदय के इतिहास में सदैव अंकित हो जाये ऐसा भव्य आज का वातावरण था। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के अध्यक्ष महोदय पण्डित श्री फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य तथा सागर विद्यालय के मन्त्री पण्डित श्री मुन्नालालजी आदि ने भी अपने प्रवचन में सानन्द श्रद्धापूर्ण हृदयोद्‌गार व्यक्त किये थे। शाश्वत् सिद्धिधाम से अलग न होना हो ऐसी भावना से 'हे नाथ! पुनः जल्दी-जल्दी दर्शन देना और हमारे आत्मकल्याण की कामना शीघ्रतया पूर्ण करना।' ऐसी प्रार्थना पूर्वक सिद्धिक्षेत्र की वन्दना करके यात्रा संघ ने गुरुदेव के साथ विदा ली।

अहो! सिद्धिपथ के पथिक गुरुदेव को नमस्कार हो कि जिसके पुनीत प्रताप से भक्तों को ऐसी अपूर्व यात्रा का महान लाभ मिला!

ध्यान रहे कि यह प्रस्तुत लेख यात्रा का वर्णन नहीं है किन्तु पूज्य गुरुदेव के पावन प्रभावनायोग का अति संक्षिप्त दिग्दर्शन है। प्रभावनायोग के वर्णन में, उसका अंग होने से विहार, प्रवचन, मन्दिर और प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा आदि का उल्लेख अवश्यंभावी होने से, उनका वर्णन संक्षेप में हो गया है। उक्त सभी बातों का मूलाधार पूज्य गुरुदेव का मंगल प्रभावना-उदय है, यह यहाँ दिखाना है, इसलिए अब आगे के प्रवास में सिर्फ विशेष प्रभावना प्रसंग का उल्लेख किया जायेगा।

मधुवन से जमशेदपुर, झरिया-धनबाद, आसनसोल और चेनसुरा होकर गुरुदेव संघसहित कलकत्ता पधारे। स्वागत-प्रमुख श्री शान्तिप्रसादजी

साहू और उपप्रमुख श्री गजराजजी गंगवाल के नेतृत्व में हिन्दी भाषी एवं गुजराती समाज के गुरुदेव के स्वागत तथा प्रवचनों में बहुत ही उल्लास से भाग लिया था। अनेकान्त के रहस्य से भरपूर प्रवचन सुनकर श्रोतासमूह अतीव प्रसन्न होता था। गुरुदेव को प्रत्यक्ष देखने से और सुनने से अनेक जीवों का भ्रमनिवारण हो जाता था। सूरत निवासी 'जैनमित्र' के सम्पादक श्री मूलचन्द किशनदास कापडिया ने तो प्रवचन में कहा था कि आत्मा का और नौ तत्त्व का ऐसा प्रभावक विवेचन मैंने पचास साल में किसी के पास कभी सुना नहीं है। सचमुच, गुरुदेव की स्वानुभवभीगी अध्यात्मवाणी से चार दिनों के निवास के अरसे में कलकत्ता महानगर में जैनधर्म की अच्छी प्रभावना हुई थी।

खण्डगिरि-उदयगिरि तीर्थ की यात्रा

विहार, अंग और बंग इन तीन प्रदेश में होकर अब कलिंग (उड़ीसा) प्रदेश के 'खण्डगिरि-उदयगिरि' नामक ऐतिहासिक सिद्धक्षेत्र की यात्रा का भी गुरुदेव के साथ भक्तों को लाभ मिला। कलिंग राज्य का मुख्य शहर भुवनेश्वर है। वहाँ से 4-5 मील दूर खण्डगिरि और उदयगिरि ये दो पहाड़ी हैं। यहाँ भगवान महावीर स्वामी का समवसरण आया था। उसके पहले भी जसरथ राजा के पुत्र एवं 500 मुनि यहाँ से मुक्त हुए थे। भगवान महावीर के बाद करीब 200 वर्ष बाद हुए जैन सम्राट खारबेल ने इन पहाड़ियों में अनेक गुफाएँ, प्रतिमा, लेख आदि उत्कीर्ण किये हैं, जिनमें उदयगिरि पर हाथीगुफा के ऊपर वाला बड़ा शिलालेख अधिक प्रसिद्ध है।

पूज्य गुरुदेव और कुछ भाई-बहिनें—ऐसे कुल मिलाकर 27 प्रवासियों के लिये प्राप्त किये गये एक चार्टर्ड डाकोटा विमान में बैठकर—कलकत्ते से भुवनेश्वर गये थे। बाकी के यात्री अगले दिन शाम को रेलगाडी में

रवाना हो गये थे। पूज्य गुरुदेव के गगनविहार के समय में कुन्दकुन्द प्रभु की गगनविहारी विदेशयात्रा के मधुर स्मरण जागते थे। इस गगनविहार के आनन्द में विमान में भक्तगण उत्साहपूर्वक भक्ति कर रहा था। खण्डगिरि-उदयगिरि सिद्धक्षेत्र की पूजा-भक्तिसह भावभीनी यात्रा करके गुरुदेव वगैरह शाम को कलकत्ता वापस आ गये थे। फाल्गुन कृष्णा 14 के दिन—कलकत्ता निवास के आखिरी दिन—पूज्य गुरुदेव के अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचन के बाद श्री शान्तिप्रसादजी साहू ने और श्री गजराजजी गंगवाल ने सुन्दर प्रवचन द्वारा पूज्य गुरुदेव का बहुमान किया और साहूजी के हस्त से गुरुदेव को अभिनन्दनपत्र अर्पण किया गया था।

कलकत्ता से दिल्ली की ओर

अध्यात्मविद्या के महिमासागर की मधुर तरंगें समग्र भारतवर्ष में फैलानेवाले चन्द्रोपम गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सातिशय प्रभावनायोग से 'पूज्य श्री कानजीस्वामी दिगम्बर जैन तीर्थयात्रा' के सिलसिले में पौष शुक्ला 15 से फाल्गुन कृष्णा अमावस्या तक के ढाई महीने में बम्बई से कलकत्ता तक के छोटे-बड़े अनेक शहर, सिद्धक्षेत्र और दूसरे अनेक तीर्थों में पूज्य गुरुदेव की प्रवचन वाणी से वीतराग जैनधर्म की अद्‌भुत प्रभावना हुई। लौटने के पहले तो ऐसा विचार आया कि सीधे सोनगढ़ चले जायें, किन्तु यात्रासंघ के व्यवस्थापकों को विचार आया कि लौटते समय भी मार्ग में आनेवाले शेष बचे बड़े शहरों में कार्यक्रम रखना चाहिए, जिससे वहाँ की धर्मपिपासु जनता को पूज्य गुरुदेव की अध्यात्मवाणी का लाभ मिल सके। अतः लौटते समय प्रवास में जल्दी करके पूज्य गुरुदेव इलाहाबाद में प्रवचन देकर तथा किल्ले में 'अक्षय-वटवृक्ष' के नीचे श्री आदिनाथ-तपोभूमि के दर्शन करके, प्रयाग के

त्रिवेणी संगम को देखकर, कानपुर, कुरावली, एटा आदि स्थानों में प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा द्वारा जैनशासन की प्रभावना करते-करते तीर्थधाम हस्तिनापुर पधारे।

कुरुजांगल देश की यह महानगरी आदिनाथ-आहारदान, शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ—इन तीन चक्रवर्ती तीर्थंकरों की जन्मभूमि, मल्लिनाथ तीर्थंकर के समवसरण का आगमन, पाण्डवों की राजधानी, अकम्पनादि 700 मुनिवरों का उपसर्गविजय, भरत चक्रवर्ती के सेनापति जयकुमार एवं अकम्पनराजा आदि अनेक मोक्षगामी महापुरुषों की पुण्यभूमि के रूप में पुराणप्रसिद्ध है। इस पवित्र धाम की पूजा-भक्तिपूर्वक यात्रा करके गुरुदेव मोदीनगर होकर ससंघ भारतवर्ष की राजधानी दिल्ली शहर में पधारे।

यहाँ मुमुक्षुमण्डल समेत समाज के तीन हजार जितने लोगों ने भव्य स्वागत किया। प्रवचन लालमन्दिर के पास बड़े मण्डप में होते थे। तत्कालीन कांग्रेस प्रमुख श्री उछरंगभाई ढेबर भी प्रवचन में लाभ लेने के लिये आते थे। गुरुदेव के निवासस्थान 'वीरसेवामन्दिर' में ढेबरभाई के प्रश्नों के उत्तरस्वरूप धर्मचर्चा से दिल्ली समाज के प्रमुख विद्वान और गृहस्थजन बहुत ही प्रभावित हुए थे। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की ओर से गुरुदेव के सन्मान का भव्य समारोह हुआ था, उसमें गुरुदेव को अभिनन्दन-पत्र समर्पित किया गया था।

दिल्ली से गुरुदेव सहारनपुर पधारे थे। मार्ग में मुज्जफरनगर आदि शहरों में उत्साह से स्वागत आदि हुए। सहारनपुर के आधे दिन के कार्यक्रम में भव्य स्वागत, प्रवचन और अभिनन्दन पत्र-समर्पण आदि अनेकविध प्रभावनापूर्ण कार्यक्रम हुए थे। लौटते हुए छोटे-बड़े गाँवों में बहुत से दिगम्बर

जैन भाई 'कल्याणवर्षिणी' के समक्ष आकर खड़े रह जाते और उनकी भावना देखकर पूज्य गुरुदेव स्वरूप मांगलिक-प्रवचन सुनाते। खतौली गाँव में हजारों लोग दर्शन-स्वागत के लिये उमड़े थे। बहुत बड़ी भीड़, लम्बी स्वागत-यात्रा और समयाभाव के कारण, सिर्फ दर्शन देकर पूज्य गुरुदेव शाम को देर से दिल्ली पहुँच गये थे।

राजस्थान की जैननगरी जयपुर

दिल्ली से, अलवर को एक दिन का प्रवचन-लाभ देकर, आमेर होकर गुरुदेव जैनों के वैभव से समृद्ध ऐसी प्रसिद्ध जयपुरनगरी में पधारे। सम्भवतः भारत में सबसे अधिक जिनमन्दिर एवं जिनबिम्ब इस भव्य नगरी में होंगे। इस जैननगरी ने पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग को शोभा दे, ऐसा अति भव्य स्वागत किया। स्वागतयात्रा में हजारों लोग मारवाड़ी वेश-भूषा में सजधजकर उमड़े थे। दोनों ओर गुलाबी पाषाण की एक-सरीखी भव्य इमारतों और बाजारों के चौड़े रास्ते लोगों की भीड़ से भरे हुए थे। ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ दर्शकों से खचाखच भर गई थीं। पूज्य शासन-प्रभावक गुरुदेव के मंगल-आगमन से जयपुर नगर की शोभा आज अतीव मनोहर लगती थी।

मांगलिक प्रवचन में 8000 जितने लोग थे। राज्य के अनेक जैन मन्त्री, पण्डित टोडरमलजी और पण्डित जयचन्द्रजी आदि अनेक विद्वानों की इस पुण्यभूमि में पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों द्वारा अध्यात्मधर्म की अच्छी प्रभावना हुई। गुरुदेव ने संघ के साथ इस नगर के बड़े-बड़े अनेक जिनमन्दिरों के भावभीगे दर्शन और अर्घार्चन किये। दीवानजी के बड़े मन्दिर में पूजा का समारोह भी रखा गया था। महावीर जयन्ती के दिन जिनेन्द्र रथोत्सव में

पच्चीस हजार लोगों ने भाग लिया था। वह रथोत्सव बहुत ही भव्य था। जयपुर के चार दिवस के कार्यक्रम के अनुसंधान में सांगानेर का किल्ला और पद्मपुरा भी देख आये थे। जयपुर का विपुल जैन वैभव देखकर तथा वहाँ की जनता को अध्यात्मवाणी का अनुपम चिरस्मरणीय लाभ देकर, गुरुदेव अलीगढ़, टोंक होकर अजमेर पधारे!

अजमेर की भव्य स्वागतयात्रा

अजमेर के प्रसिद्ध सेठ श्री भागचन्द्रजी के नेतृत्व में दिगम्बर समाज ने संघ का भावभीना स्वागत किया था। वहाँ के साप्ताहिक पत्र 'आजाद' ने उसका विवरण इस प्रकार दिया था—

दिनांक 15 अप्रेल को भारत के महान आध्यात्मिक सन्त श्री कानजीस्वामी का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। .... 10 हजार व्यक्ति सम्मिलित थे। जुलूस के रास्ते में स्थान-स्थान पर नागरिकों द्वारा पुष्पवृष्टि की गई तथा विशेषरूप से दरगाह के ऊपर से मुसलमान बन्धुओं ने स्वामीजी के स्वागत में जो फूलवर्षा की, वह विशेष महत्त्व व भ्रातृभावना की एक ऐतिहासिक घटना है! लगभग 200 वर्ष पूर्व भी मुसलमान बन्धुओं ने जैनसन्त को इसी प्रकार अपने यहाँ विशेष सन्मान दिया था। अजमेर के इतिहास में इतना विशाल जुलूस प्रथम बार देखने को मिला।... पुष्पवर्षा से रास्ता सुगन्ध से महक उठा।... बाजार में जो चाँदी व गोटे के क्रमशः द्वार बनाये गये थे। वह भी विशेष उल्लेखनीय हैं।

लाडनूं में मंगल-आगमन

अजमेर में सोनीजी की नसियां, पंचकल्याणक की मूर्तिमान भव्य

रचना एवं अन्य मनोरम मन्दिरों के भाव से दर्शन करके तथा दो दिन प्रवचन देकर गुरुदेव लाडनूं पधारे।

जिन्होंने पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग से प्रभावित होकर सोनगढ़ में प्रभावना के अंगरूप ऐसी प्रत्येक कुमारिका ब्रह्मचारिणी बहिनों के प्रति जिन्हें पितृवत् वात्सल्य था, ऐसे सेठ श्री बच्छराजजी आदि गंगवाल भाईयों को अपने वतन में गुरुदेव के शुभागमन से बहुत ही आनन्द हुआ था। लाडनूं के विशाल भव्य मन्दिर में दर्शन-पूजन-भक्ति करके तथा प्रवचन देकर गुरुदेव कुचामन, किशनगढ़, ब्यावर, शिवगंज, जावाल, आबु आदि स्थलों में होते हुए तारंगा सिद्धक्षेत्र पधारे।

तारंगा—सिद्धक्षेत्र की यात्रा

तारंगा सिद्धक्षेत्र से वरदत्त, सागरदत्त वगैरह साढ़े तीन करोड़ मुनिवरों ने मुक्तिपद पाया है। वरदत्त राजा ने तीर्थंकर नेमिनाथ, मुनिराज को आहारदान दिया था और बाद में वे नेमिनाथ के गणधर हुए थे। इस शान्त और रमणीय सिद्धक्षेत्र में अत्यन्त भावपूर्वक पूजा-भक्ति हुई थी। नीचे तलहटी में भक्ति होने के बाद गुरुदेव ने प्रवचन दिया था। तारंगा से गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में आये।

अहमदाबाद नगर में जन्मजयन्ती

अहमदाबाद में पाँच हजार जितने लोगों ने भावभीना स्वागत किया। गुरुदेव की 68वीं जन्मजयन्ती का मंगल-महोत्सव यहाँ मनाया जानेवाला था, इसलिए यहाँ के मुमुक्षु समाज को बहुत ही आनन्दोल्लास था। अहमदाबाद में चार दिवस के प्रवचनों द्वारा अध्यात्मधर्म की अच्छी प्रभावना हुई। अनेक श्वेताम्बर भाई-बहिनों ने भी गुरुदेव की अध्यात्मवाणी का अच्छा लाभ लिया।

सुवर्णपुरी में पुनः पदार्पण

गुरुदेव अहमदाबाद से पोलारपुर होकर वैशाख शुक्ला 6 के शुभ दिन निजसाधनाभूमि तीर्थधाम सोनगढ़ पधारे। भक्तों ने बहुत ठाटबाट से सुवर्णपुरी का शृंगार किया था। चक्रवर्ती छह खण्ड पर विजय प्राप्त करके अयोध्या में प्रवेश करे और वहाँ जैसा दृश्य दृष्टिगोचर हो, वैसा मंगलमय दृश्य, समग्र भारतवर्ष में अध्यात्मधर्म की प्रभावना का विजयध्वज लहराकर सुवर्णपुरी में पधारते हुए पूज्य गुरुदेव के मंगल-प्रवेश के प्रसंग पर था। जगह-जगह आसोपालव के तोरण, मण्डप, दरवाजे, ध्वज, रंगीन आकृतियाँ, तुरई के द्वार और चाँदी के दरवाजों से सुशोभित सुवर्णपुरी आज गुरुदेव का स्वागत करने के आनन्द में उछल रही थी। भव्य स्वागतयात्रा के बाद अनेक तीर्थों की यात्रा के मंगल-अवसर में वीतराग जैनधर्म की पवित्र प्रभावना करके, पौने छह महीने के बाद विदेहीनाथ श्री सीमन्धर भगवान के दर्शन करते समय, गुरुदेव का चित्त भक्ति से भींग गया था। पूज्य गुरुदेव ने मांगलिक सुनाया। मांगलिक में तीर्थयात्रा में आये हुए अनेक छोटे-बड़े शहरों में लोगों का अध्यात्मतत्त्व के प्रति उत्साह, प्राप्त हुई धर्मप्रभावना और यात्रा का प्रमोद व्यक्त किया। उसके बाद प्रमोद व्यक्त किया। उसके बाद आरणीय पण्डित श्री हिम्मतभाई ने बहुत सुन्दर, भावपूर्ण स्वागत-प्रवचन किया था और ऐसी भावना व्यक्त की थी कि गुरुदेव के चरणों की छाया में निशदिन रहकर आत्महित करें। बाद में बहिनों ने हृदयोर्मियों से भरा हुआ स्वागत-गीत गाकर जय-जयकार किया था।

प्रभावनायोग का प्रभाव

श्री सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की यात्रा-प्रसंग में अनेक गाँवों के लाखों जैन तथा अनेक जैनेतर लोग पूज्य गुरुदेव के परिचय में आये, जिससे

उनमें से बहुत जनों को सोनगढ़ आकर गुरुदेव की अध्यात्मवाणी का लाभ, उनकी अन्तर में भावना जागृत हुई। इसलिए सावन मास में चलते धार्मिक शिक्षण शिविर के समय गुरुदेव की वाणी का तथा शिक्षण का लाभ लेने के लिये अनेक दिगम्बर जैनबन्धु आने लगे। अनेक गाँवों से दशलक्षण पर्यूषण के दिनों में उनके यहाँ सोनगढ़ से प्रवचनकार भेजने के आवेदन आने लगे। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री का प्रभावना-उदय दिन-प्रतिदिन खूब फैलता गया। भिन्न-भिन्न अनेक नगरों की विनति से पूज्य गुरुदेव का प्रभावना-विहार भी प्रतिवर्ष होता था। प्रत्येक गाँव में भव्य स्वागत, प्रवचन और धर्मचर्चा आदि अनेकविध कार्यक्रमों से उस गाँव का वातावरण पूर्णतया धर्ममय बन जाता था। अनेक महानुभावों के हृदयोद्गार सुनने को मिलते कि— कानजीस्वामी द्वारा अभी जो व्यापक धर्मप्रभावना हो रही है, ऐसी प्रभावना भूतकाल के सैकड़ों वर्षों में हुई हो, ऐसा सुना नहीं। सचमुच, महाराजश्री द्वारा अध्यात्मधर्म की जो प्रभावना हो रही है, वह अति अद्भुत है।

दक्षिण एवं मध्यभारत की यात्रा

उत्तर भारत के प्रवास के बाद वि.सं. 2015 में भक्तों को पूज्य गुरुदेव के साथ दक्षिण और मध्य भारत के जैन तीर्थों की मंगलयात्रा का अवसर प्राप्त हुआ था। पौष महीने में गुरुदेव धंधुका, अहमदाबाद, पालेज, दाहोद, बडवानी, नाशिक, भीवंडी होकर बम्बई के श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर की पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा के लिये बम्बई पधारे। मुम्बादेवी प्लॉट में 25000 व्यक्ति सरलता से बैठ सकें ऐसा विशाल 'महावीरनगर' नामक सुन्दर मण्डप बाँधा गया था। अत्यन्त आनन्दोल्लासपूर्वक मनाया गया यह प्रतिष्ठा-महोत्सव बम्बई के इतिहास में अभूतपूर्व था। माघ शुक्ला के दिन

प्रतिष्ठा करके सुद 8वीं के दिन गुरुदेव ने 1000 मुमुक्षुभक्तों के विशाल संघ के साथ दक्षिण भारत की यात्रा के लिये मंगल-प्रस्थान किया।

यात्रास्थल और प्रवास के गाँव

बम्बई से पूना, दहिगाँव, फल्टन, कुम्भोज-बाहुबली, कोल्हापुर, हुबली, जोगफोल्स, शिमोगा, हुमच, कुन्दाद्रि, वारांग, मूडविद्रि, कारकल, वेणुर, हलेबीड, हासन, श्रवणबेलगोला (बाहुबली), मैसूर, तेल्लूर, बैंगलोर, कांचीपुरम, पुण्डीनगरी, मद्रास, वंदेवास, पोन्नूर, अकलंकबस्ती, केरेन्डे, नेल्लूर, बेझबाडा, हैदराबाद, सोलापुर, बार्शी, कुंथलगिरि, धाराशिव की गुफाएँ, उस्मानाबाद, इलोरा, अजन्ता, जलगाँव, मलकापुर, शिरपुर, वासीम, कारंजा, परतवाडा (एलिचपुर), मुक्तागिरि, अमरावती, भातकुली, बजारगाँव, नागपुर, डोंगरगढ़, खैरागढ़, रामटेक, सिवनी, जबलपुर, मड़ियाजी, भेलुघाट, पनागर, दमोह, कुण्डलगिरि-सिद्धक्षेत्र, शाहपुर, द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र, खजुराहो, पपौराजी, टीकमगढ़, आहारजी, ललितपुर, देवगढ़, चंदेरी, वारां, चांदखेड़ी, झालरापाटण, कोटा, बूँदी, मानपुरा, नीमच, चित्तोड, उदयपुर, केसरियाजी (धूलेव) ईडर, सोनासण, रामपुरा, फत्तेपुर (70वीं कहान गुरु-जन्मजयन्ती), तलोद, रखियाल, दहेगाम, कलोल, अहमदाबाद, पोलारपुर, शिहोर, भावनगर, घोघा—इस प्रकार 98 छोटे-बड़े गाँवों में धर्मप्रभावना करके गुरुदेव सोनगढ़ पधारे।

भव्य स्वागत

इस यात्रा प्रवास में भी गुरुदेव जहाँ-जहाँ पधारते, वहाँ हजारों लोग उत्सुकता से गुरुदेव को देखते रहते। गाँव-गाँव में छोटे-बड़े भव्य स्वागत

होते। मैसूर आदि कई स्थलों में स्वागत-यात्रा में हाथी रखते, वे हाथी सूंढ में पुष्पहार लेकर गुरुदेव को सलामी देते। स्वागत-यात्रा के मार्ग में आते जैनों के घरों के पास चौकी या पाटले पर अक्षत का स्वस्तिक बनाकर, उसके ऊपर श्रीफलयुक्त जलकलश रखकर, केले, सन्तरे आदि का अर्घ्य चढ़ाकर, गुरुदेव की बहुत भाव से आरती उतारते, पुष्पों से स्वागत और ऊपर से पुष्पवृष्टि भी करते। गुजराती तो क्या किन्तु हिन्दी भाषा भी बराबर न समझ सकने पर भी प्रवचन में हजारों लोग आते और गुरुदेव का धर्मपुरुष के रूप में दिव्य मुखारविन्द और प्रभाव देखकर अत्यन्त प्रसन्न होते। कन्नड़ या तामिल वगैरह भाषा में प्रवचन का थोड़ा सा अनुवाद उस-उस गाँव के विद्वान द्वारा सुनाया जाता, जिससे अध्यात्म की अश्रुतपूर्व नयी बात सुनकर वे आनन्द से रोमांचित होते थे। प्रतिदिन गुरुदेव के साथ नये-नये तीर्थों और नये-नये मन्दिरों के दर्शन करने में भक्तों को भी अत्यन्त आनन्द होता था।

मुख्य यात्रास्थल

दक्षिण भारत के मुख्य तीर्थों में:—(1) कुन्दाद्रि भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का समाधिस्थान है; घनी हरियाली से सुशोभित मनोहर पहाड़ के ऊपर भव्य जिनमन्दिर और कुण्ड जैसे छोटे सरोवर के किनारों पर कुन्दकुन्दाचार्यदेव के कमलयुक्त सुन्दर चरणचिह्न हैं; (2) मूड़बिद्रि में रत्नप्रतिमाएँ, ताड़पत्र पर षट्खण्डागमादि प्राचीन शास्त्र और त्रिभुवनतिलक चूड़ामणि आदि भव्य प्राचीन जिनमन्दिर हैं; (3) कारकल में 80 फीट उन्नत एक अखण्ड पाषाण का मानस्तम्भ, भव्य जिनमन्दिर और छोटी पहाड़ी पर 42 फीट उन्नत बाहुबलीजी की भव्य प्रतिमा है; (4) वेणुर में 31 फीट उन्नत

बाहुबलीजी हैं; (5) हलेबीड में कसोटी पत्थर के मन्दिर एवं भव्य जिनप्रतिमाजी हैं; (6) श्रवणबेलगोला में इन्द्रगिरि पहाड़ के ऊपर बाहुबलीजी की विश्वप्रसिद्ध 57 फीट उन्नत वीतरागभाववाही भव्य प्रतिमा और अनेक भव्य प्राचीन जिनमन्दिर, शिलालेख आदि, सामने चन्द्रगिरि पहाड़ के ऊपर श्री नेमिचन्द्र-सिद्धान्त चक्रवर्ती के शिष्य चामुण्डराजा द्वारा निर्मित अनेक प्राचीन भव्य जिनमन्दिर, प्राचीन शिलालेख, भद्रबाहुस्वामी की समाधिगुफा में उनके भव्य चरणचिह्न वगैरह हैं। नीचे गाँव में भी भट्टारकजी का मठ तथा भव्य जिनमन्दिर हैं; (7) पोन्नूर की छोटी रमणीय पहाड़ी पर चम्पावृक्ष के नीचे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के पवित्र चरण-कमल हैं; पूज्य गुरुदेव के प्रभावनायोग से विशेष प्रसिद्धि प्राप्त यह पावन तीर्थ कुन्दकुन्दाचार्यदेव की तपोभूमि है; (8) कुन्थलगिरि-सिद्धक्षेत्र देशभूषण, कुलभूषण केवली का सिद्धिधाम है; छोटे पहाड़ के ऊपर अनेक भव्य मन्दिर हैं और देशभूषण तथा कुलभूषण के भव्य चरणचिह्न हैं; (9) शिरपुर में अन्तरीक्ष-पार्श्वनाथ का अतिशय क्षेत्र है; (10) मुक्तागिरि भी एक छोटे मनोरम पहाड़ के ऊपर भव्य सिद्धक्षेत्र है, पहाड़ के ऊपर बावन जिनालय हैं; मध्यभारत में:—(11) रामटेक में जिनमन्दिर में बड़ी-बड़ी खड्गासन भव्य जिनप्रतिमा हैं; (12) कुण्डलगिरि-सिद्धक्षेत्र... नाम के एक अननुबद्ध केवली की मोक्षभूमि है, यहाँ भी कुण्डलाकर रमणीय पहाड़ी पर बावन जिनमन्दिर हैं, उनमें एक जिनमन्दिर 'बड़े बाबा' के नाम से प्रसिद्ध महावीर भगवान की विशाल जिनप्रतिमा है; (13) द्रोणगिरि-सिद्धक्षेत्र से गुरुदत्तादि मुनिवर मुक्त हुए हैं; (14) नैनागिरि-सिद्धक्षेत्र में पास के रेशंदीगिरि पर्वत पर से वरदत्तादि मुनिवरों ने सिद्धपद प्राप्त किया है।

बाहुबलीजी की यात्रा

इन सब पवित्र तीर्थों में पूज्य गुरुदेव के साथ पूजा-भक्ति, वगैरह का असाधारण लाभ मिला था। श्रवणबेलगोला में बाहुबलीजी की यात्रा तो बहुत ही आनन्दकारी हुई थी। पूज्य गुरुदेव ने अत्यन्त भक्तिभाव से अष्ट प्रकार की पूजा, संघ के साथ की थी; बाद में अत्यन्त उल्लसितभाव से भक्ति हुई थी। भगवान बाहुबली को बारबार भाव से निरखते हुए कहा:—'वाह! कितनी वैराग्यरसभरी मुद्रा! मुखमुद्रा पर कैसे अलौकिक शान्तभाव तैरते हैं! अहा! पवित्रता और पुण्य दोनों में पूर्ण! उनका ज्ञानोपयोग तो स्वरूप में ऐसा लीन हो गया है कि मानों बाहर आने का तो नाम ही नहीं। उनकी मुखमुद्रा से केवल वीतरागता झरती है। मानों साक्षात् चैतन्यबिम्ब, चैतन्य की शीतलता का पहाड़! इस दुनिया में बाहुबली का यह वीतरागबिम्ब सचमुच अद्वितीय है।' वहाँ पूज्य गुरुदेव को भक्तिभाव का जो समुद्र उछला था, उसकी शीतल तरंगें भक्तों के अन्तर को पावन कर रही थीं। वाह! धन्य वह काल! धन्य वह अवसर!

भक्ति के बाद अनेक सुवर्णकलशों द्वारा गुरुदेव ने बाहुबलीजी का चरणाभिषेक किया। अहा! तारणहार गुरुदेव के पवित्र करकमल से होते उस पावन अभिषेक का दृश्य ऐसा मनोज्ञ था कि मानों स्वानुभव-सागर के प्रभावना-जल से गुरुदेव भारतव्यापी अज्ञानमल को धो रहे हों! धर्मप्रभावक महापुरुष के पुनीत करकमल से यह विधि होती देखकर भक्तों के हृदय भक्तिभाव से उछल रहे थे। (अभिषेक की बोली आदि से प्राप्त रकमों से यहाँ एक 'श्री कानजीस्वामी दि. जैन विश्रांतिभवन' का निर्माण किया गया है।)

पूज्य गुरुदेव के देव-गुरु-भक्तिरसपूर्ण और अध्यात्मरसमय प्रवचन

सुनकर तथा उनके प्रभावनोदय को प्रत्यक्ष देखकर वहाँ के भट्टारकजी श्री चारुकीर्ति को बहुत ही प्रमोद हुआ। कन्नड़ भाषा में व्यक्त किये गये उनके प्रमोद का अनुवाद करते हुए उनके पण्डित ने कहा:—'स्वामीजी! श्री भद्रबाहुस्वामी बारह हजार श्रमणशिष्यों के साथ जब यहाँ पधारे थे, तब जो धर्मोद्योत हुआ था वैसा ही धर्मोद्योत, संघसहित, दक्षिण भारत में आपके पधारने से हुआ है। विशाल संघसहित आपके पदार्पण से मेरा चित्त प्रसन्न हुआ है। दक्षिण भारत के जैनों की ओर से मैं आपका स्वागत करता हूँ।'

पोन्नूर की भव्ययात्रा

बाहुबलीजी की यात्रा जैसी ही आनन्दकारी दूसरी यात्रा कुन्दकुन्द तपोभूमि पोन्नूर की हुई थी। पूज्य गुरुदेव और उस पावनकारी गुरुधाम का मिलन, फिर तो भक्तों के आनन्द की अवधि ही क्या रहे? वहाँ के निवासी गुरुदेव की प्रतिभाशली सुनहली भव्य मुद्रा और प्रभावक व्यक्तित्व देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। गुरुदेव ने कुन्दचरण का अत्यन्त उल्लासभाव से अभिषेक किया, पूजा की और भक्ति कराई। 'कुन्दकुन्द-चरण' ऊपर चम्पापुष्प का वृक्ष है। वहाँ के लोग गुरुदेव से महिमापूर्ण भाव से कहते:—'स्वामीजी! यहाँ कुदरत का ऐसा अतिशय है कि प्रतिदिन इस चरण-चिह्न के ऊपर चम्पापुष्प नियम से गिरता है, मानों 'कुन्द-चरण' अपूज्य न रहे, इस वास्ते प्रकृति ने पुष्पपूजा की व्यवस्था की न हो!' यह बात सुनकर कुन्दकुन्द-मार्गप्रभावक गुरुदेव, भगवती माता बहिनश्री चम्पाबेन और अन्य भक्तों को साश्चर्य आनन्द हुआ था।

भक्ति के बाद इस पवित्र धाम का परिचय देते हुए पूज्य गुरुदेव ने अति प्रसन्नता से कहा:—'कुन्दकुन्दाचार्यदेव यहाँ ध्यान करते थे। यह भूमि उनकी

तपोसाधना से पवित्र हुई है। वे यहाँ से पूर्व महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमन्धर भगवान के दर्शन करने गये थे। वहाँ वे आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर उन्होंने यहाँ समयसार वगैरह परमागमों की रचना की थी। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव का हमारे ऊपर बहुत उपकार है, हम उनके दासानुदास हैं।

अहा! गुरुदेव के साथ उस मंगल-यात्रा के आनन्द की तो क्या बात करें? गुरुदेव के उपकार की महिमा कैसे गायें? उनके पुनीत प्रताप से तो भक्तों की भवान्तकारी अध्यात्मविद्या मिली और साथ-साथ तीर्थंकरों, गणधरों और साधक मुनिवरों के पवित्र धाम भी देखने-जानने मिले।

उत्तर तथा दक्षिण भारत की दूसरी बार यात्रा

गुरुदेव का प्रभावनायोग इतना असीम था कि सूर्य के प्रकाश की तरह, उसके फैलाव को कोई न रोक सके। पुनः पुनः प्रभावक प्रतिष्ठाएँ, पुनः पुनः प्रवास और पुनः पुनः यात्रा। उत्तर भारत के सम्मेदशिखरादि तीर्थों की दूसरी बार की यात्रा, जयपुर में टोडरमल-स्मारक के उद्घाटन और उसमें श्री सीमन्धर जिनालय की वेदी प्रतिष्ठा के निमित्त से वि.सं. 2023 में हुए पावन प्रवास के अवसर पर हुई थी। उस समय बयाना में सीमन्धर भगवान की (500 वर्ष प्राचीन) प्रतिमा के दर्शन-अभिषेक में पूज्य गुरुदेव को जो अतीव आनन्द हुआ था और उस आनन्द के मधुर प्रवाह में पूज्य गुरुदेव जो कुन्द-सीमन्धर-मिलन की और दूसरी कहने योग्य कई अद्भुत बातें कही थीं, उसके मधुर संस्मरण भक्तों के हृदय को आज भी नचाते हैं।

ऐसी ही प्रभावनाकारी दक्षिण भारत की (दूसरी बार की) यात्रा वि.सं. 2020 में, दादर के (बम्बई) श्री महावीरस्वामी जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा के अवसर पर हुई थी। इस प्रकार अनेक प्रवास, प्रतिष्ठाएँ और यात्राओं में शासन

प्रभावक पूज्य कहान गुरुदेव के लोकोत्तर प्रभावनायोग से स्वानुभूतिप्रधान अध्यात्मधर्म की महान प्रभावना हुई थी।

जन्मजयन्ती-प्रसंग में धर्मप्रभावना

पवित्र प्रभावनयोग में गुरुदेव का जन्मजयन्ती-उत्सव भी उसका एक विशिष्ट अंग था। तीर्थंकर या आचार्यतुल्य परमोपकारी परम-तारणहार कहान गुरुदेव की जन्म-जयन्तियों के समय तो मुमुक्षु जगत गुरु भक्ति से उछल पड़ता था। उस समय हजारों मुमुक्षु गुरुदेव की प्रभावनागंगा में, भवदाह शान्त करने के लिये, पवित्र स्नान करने के लिये आते—अध्यात्मवाणी का अमृतपान करने के लिये आते।

सुवर्णपुरी में गुरुदेव के मंगल-जन्मोत्सव प्रशममूर्ति भगवती माता की गुरु भक्तिभीनी मंगल-प्रेरणा से आनन्दोल्लासपूर्वक मनाये जाते थे; उनमें चनपूर्णाहुति के वर्ष में—59वें वर्ष में—मंगल प्रवेश का 'गुरु जन्मजयन्ती-महोत्सव' (वि.सं. 2004 में) किसी विशिष्ट प्रकार के आनन्दोल्लास पूर्वक मनाया गया था। अहा! जन्म-महोत्सव के आनन्द की तो क्या बात! उसकी कितनी महिमा करें! 'गुरुजन्म-जयन्ती' का यह महोत्सव मनाने में भक्तों के हृदय तो हर्ष से नाच उठते थे। अहा! ऐसे दैवी महापुरुष का वर्तमानकाल में जन्मोत्सव मनाने का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ, उसके लिये किसके हृदय में आनन्द की ऊर्मियाँ न उछलें?—अरे! भक्तहृदय वश में न रहें, जिनके हृदय गुरु-उपकारों से अन्तर्बाह्य रससिक्त हो गये हैं, ऐसे भक्तों को तो ऐसा ही हो कि—अहो! यह भवोदधितारणहार गुरुदेव की क्या-क्या भक्ति करें?

अहा! ऐसे अनुपम और अद्भुत, शासनप्रभावक, अध्यात्मयुगसृष्टा

महापुरुष की कल्याणकारी जन्म-जयन्ती किस वर्ष की और किस नगर के भाग्यशाली भक्तों को मनाने का महान सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह यहाँ देखें:—

जन्मजयन्ती-क्रम	वि.सं.	स्थान
59	2004	सोनगढ़
60	2005	राजकोट
61	2006	सोनगढ़
62	2007	सोनगढ़
63	2008	सोनगढ़
64	2009	सोनगढ़
65	2010	सुरेन्द्रनगर
66	2011	सोनगढ़
67	2012	सोनगढ़
68	2013	अहमदाबाद
69	2014	सुरेन्द्रनगर
70	2015	फतेपुर
71	2016	उमराला
72	2017	सोनगढ़
73	2018	राजकोट
74	2019	लाठी
75	2020	बम्बई (अमृत-जन्मोत्सव भारत के गृहमन्त्री लालबहादुर शास्त्री के हाथ से अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पित)

76	2021	राजकोट
77	2022	सोनगढ़
78	2023	बोटाद
79	2024	वींछिया
80	2025	बम्बई (रत्नचिन्तामणि-जन्मोत्सव)
81	2026	भावनगर
82	2027	पोरबन्दर
83	2028	फतेपुर
84	2029	कलकत्ता
85	2030	बम्बई
86	2031	अहमदाबाद
87	2032	दादर (बम्बई)
88	2033	जामनगर
89	2034	घाटकोपर (बम्बई)
90	2035	बम्बई
91	2036	मलाड (बम्बई)

परम-तारणहार गुरुदेव की अनुपस्थिति में सभी गुरु-जन्मजयन्तियाँ सोनगढ़ में परमपूज्य कहानगुरु की लोकोत्तर महिमा बतलानेवाली परमोपकारी प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन की गुरु भक्तिभीनी कल्याणी छाया में मनाने की भक्तों की भावना होने से क्रमांक 92 से 99 तक की गुरु-जन्मजयन्तियाँ सोनगढ़-ट्रस्ट एवं अन्य मुमुक्षुमण्डलों की ओर से गुरुदेव की पवित्र साधनाभूमि में अत्यानन्दोल्लासपूर्वक मनाई गई थीं। इस

वर्ष गुरुदेव की जन्मशताब्दी भी सोनगढ़-ट्रस्ट कहानगुरु के पवित्र तीर्थधाम में—सुवर्णपुरी में—धन्यावतार, गुरुभक्त, भगवतीमाता के मंगल-सान्निध्य में बहुत बड़े समारोहपूर्वक मनायी जा रही है।

प्रभावना की विविध घटनाओं से भरपूर जीवन

—इस प्रकार अध्यात्मधर्मप्रभावना के मुख्य केन्द्र तीर्थधाम सुवर्णपुरी में रहकर की हुई,—प्रवचन, धर्मचर्चा, जिनायतन निर्माण और उनकी प्रतिष्ठाएँ, साल में दो बार लगनेवाले धार्मिक शिक्षणशिविर, जिनेन्द्रभक्ति और जिनसहस्रनाम—सिद्धचक्र—पंचमेरुनन्दीश्वरादि मुख्य मण्डल-विधान-पूजाएँ, आदि—अनेकविध धार्मिक गतिविधियाँ, मंगल विहार, बिम्ब प्रतिष्ठाएँ, तीर्थयात्रा, 'आत्मधर्म' पत्र और विपुल साहित्यप्रकाशन, आदि द्वारा हुई धर्मप्रभावना सचमुच अद्भुत और अनुपम है। अध्यात्ममूर्ति स्वानुभूतिसम्पन्न, तीर्थंकर-आचार्यतुल्य सातिशय प्रभावना-उदय के स्वामी, पवित्रात्मा पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के प्रभावनागगन के धर्मोद्योतकारी — चमकते प्रसंगसितारे संख्या में सीमित नहीं किये जा सकते, न उन्हें समर्थ लेखनी से भी लिपिबद्ध किया जा सकता है। प्रभावना-उदय की एक घटना याद करते, दूसरी अनेक छूट जायें—ऐसी शासनप्रभावना की अनेक अद्भुत घटनाओं से पूज्य गुरुदेव का जीवन विभूषित है।

निःस्पृह और निरपेक्ष व्यक्तित्व

पूज्य गुरुदेव के निमित्त से ऐसी असाधारण बाह्य प्रभावना सहजरूप से हो गई थी। गुरुदेव ने धर्मप्रभावना के लिये कभी किसी योजनाविषयक न तो विचार किया था और न उसका कोई आयोजन किया था। यह उनकी

प्रकृति में ही न था। उन्हें तो आत्मा का कल्याण कर लेने की ही धुन रहती थी; इसलिए उनका प्राय: सब समय शास्त्रों के न्याय गहराई से विचार करने में ही व्यतीत होता था। आत्मा की धुन के कारण, भोजन के समय आहार स्वाद है, या बेस्वाद है, उसके प्रति भी उनको हमेशा दुर्लक्ष्य रहता था। कई बार तो भोजन के समय भी उनका चित्त शास्त्रों के न्यायों के विचार करने में मग्न रहता था। वस्त्रपरिधान में भी वे अत्यन्त उपेक्षावृत्तिवाले थे। अन्य कोई परिग्रह रखने का भाव उनको स्वप्न में भी नहीं आता था। लकड़ी के पाट पर एक वस्त्र बिछाकर शयन करते थे और निद्रा भी अल्प लेते थे। उनका समग्र जीवन निजकल्याणसाधना को समर्पित था। बाह्य ख्याति-लाभ-पूजादि से वे बिल्कुल नि:स्पृह थे। उन्होंने जो सुधास्यन्दी आत्मानुभूति प्राप्त की थी, जो कल्याणकारी अध्यात्मतथ्य आत्मसात् किये थे, उसकी अभिव्यक्ति 'अहा! ऐसी वस्तुस्थिति!' इस तरह विविध रूपों में सहजभाव से उल्लासपूर्वक उनसे हो जाती थी, जिसका गहरा आत्मार्थप्रेरक प्रभाव श्रोताओं के हृदयों पर पड़ता। मुख्यरूप से इसी प्रकार उनके द्वारा सहजरूप से ऐसा देश-विदेशव्यापी महान धर्मोद्योत हो गया था। इतनी प्रबल बाह्य धर्मप्रभावना होने पर भी, पूज्य गुरुदेव को बाहरी बाबतों में थोड़ा-सा भी रस न था; उनका जीवन तो केवल आत्माभिमुख था, लोकाभिमुख नहीं।

गुरुदेव का अनुपम उपकार

अध्यात्ममार्ग के प्रभावक ऐसे पूज्य गुरुदेव के 45 वर्ष के सुदीर्घ काल तक, निवास के कारण सोनगढ़ अध्यात्मविद्या का एक अनुपम केन्द्र बन गया है। यहाँ के शान्त, शीतल और एकान्त वातावरण में वर्षों तक बहे हुए पूज्य

गुरुदेव के प्रवचनामृत द्वारा अनेकविध बहुत बड़ी धर्मप्रभावना हुई है। गुरुदेव के पुनीत प्रताप से-उनके चरणों से यहाँ का कण-कण पुरुषार्थप्रेरक और पवित्र बन गया है। सोनगढ़ एक सातिशय 'धर्मनगरी' बन गई है। अहा! गुरुदेव की महिमा का वर्णन कैसे किया जाये? गुरुदेव का द्रव्य ही अलौकिक था। इस पंचम काल में इस महापुरुष का—आश्चर्यकारी अद्भुत आत्मा का—यहाँ जन्म हुआ यह किसी महाभाग्य की बात है। उन्होंने स्वानुभूति की अपूर्व बात प्रकट करके सारे भारत के लोगों को जगाया है। गुरुदेव का द्रव्य 'तीर्थंकर का द्रव्य' था। इस भरतक्षेत्र में पधारकर महान-महान उपकार किया है।

पूज्य गुरुदेव का अन्तर सदा 'ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक, भगवान आत्मा, ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव, शुद्ध...शुद्ध... शुद्ध, परमपारिणामिकभाव' इस प्रकार त्रैकालिक ज्ञायक के आलम्बनभाव में निरन्तर—जागृति या निद्रा में—परिणम रहा था। सोनगढ़ में हों कि विहार में हों, वे सर्वत्र प्रवचनों और तत्त्वचर्चा में ज्ञायक के स्वरूप का मधुर संगीत गाते रहते थे। अहो! वह ज्ञायक और स्वतन्त्रता के उपासक गुरुदेव! उन्होंने मोक्षार्थियों को मुक्ति की सच्ची राह दिखायी!

आज भी सोनगढ़ में प्रवर्तता गुरुदेव का प्रभावना-प्रताप

पूज्य गुरुदेव के पवित्र चरणकमल के स्पर्श से और उनके चैतन्यस्पर्शी अध्यात्मोपदेश से किंचिदून-अर्धशताब्दी तक पावन बने इस सोनगढ़ तीर्थ का सौम्य, शीतल वातावरण, उनके सातिशय पुण्यप्रताप से, आज भी—गुरुमहिमाप्रभावक प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन

की मंगलवर्धिनी कल्याणी छाया में—आत्मार्थियों की आत्मसाधनालक्षी आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की मधुर सौरभ से महकता है। गुरुदेव के परम प्रताप से यह अध्यात्मतीर्थधाम सोनगढ़—आत्मसाधना का तथा बहुमुखी धर्मप्रभावना का पवित्र निकेतन—सदैव आत्मार्थियों के जीवनपद को उज्ज्वल करता रहेगा।

हे परमपूज्य परमोपकारी कहानगुरुदेव! आपश्री के पुनीत चरणों में—आपकी मांगलिक पवित्रता को, पुरुषार्थप्रेरक ध्येयनिष्ठ जीवन को, स्वानुभूतिमूलक सन्मार्गदर्शक अध्यात्मोपदेशों को और तथाविध अनेकानेक उपकारों को सदैव हृदय में रखकर—अत्यन्त भक्तिपूर्वक भावसहित प्रणाम हो। आपके द्वारा प्रकाशित वीर-कुन्द प्ररूपित स्वानुभूति का पंथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो! जयवन्त वर्तो!

—ब्रह्मचारी चन्दुभाई खी. झोबालिया

पावन-मधुर अद्‌भूत अहो! गुरुवदनथी, अमृत झर्यां,
श्रवणो मळया सद्‌भाग्यथी, नित्ये अहो! चिद्‌रसभर्यां;
गुरुदेव तारणहारथी आत्मार्थी भवसागर तर्या,
भवभव रहो अम आत्मने सांनिध्य आवा संतना।

गुरु-भक्ति

मेरा मनडा मांही गुरुदेव रमे;
जगना तारणहाराने मारुं दिल नमे

शासनतणा सम्राट अमारे आंगणे आव्या;
अद्‌भुत योगीराज अमारां धाम दीपाव्यां;

मीठो महेरामण आंगणिये कहान महाराज,
पुण्योदयनां मीठां फल फळियां आज। मेरा० 1

अमृतभयाँ ज्यां उर छे, नयने विजयनां नूर छे,
ज्ञानामृते भरपूर छे, ब्रह्मचारी ए भडवीर छे;

युक्ति-न्यायमां शूरा छो योगीराज,
निश्चय-व्यवहारना साचा छो जाणनहार। मेरा० 2

देहे मढेला देव छो, चरिते सुवर्णविशुद्ध छो;
धर्मे धुरंधर संत छो, शौर्येसिंहण-पीध दूध छो;

मुक्ति करवाने चाल्या छो योगीराज,
जिनवर धर्मना साचा आराधनहार। मेरा० 3

कुन्दकुन्द-नन्दनने वन्दन बारम्बार॥

भारतखंडमां संत अहो जाग्या रे

(राग:–विदेहवासी कहानगुरु भरते पधार्या रे)

भारतखंडमां संत अहो जाग्या रे,
पंचमकाळे पधार्या तारणहारा रे,
अनुभूति–युगसृष्टा स्वर्णे पधार्या रे,
आवो रे सौ भक्तो गुरुगुण गाओ रे,
उजमाबाना नंदनने भावे वधावो रे.... भारतखंडमां० 1.

आवो पधारो गुरुजी अम आंगणिये;
आवो विराजो गुरुजी अम मंदिरिये।

माणेक–मोतीना साथिया वुरावुं रे,
विधविध रत्नोथी गुरुने वधावुं रे... भारतखंडमां० 2

यात्रा करीने मारा गुरुजी पधार्या;
स्वर्णपुरीना संत स्वर्णे बिराज्या (पधार्या)।

स्वर्णपुरी नगरीमां फूलडां पथरावो रे,
(अंतरमां आनंदना दीवडा प्रगटावो रे,)
घर–घरमां रुडा दीवडा प्रगटावो रे... भारतखंडमां० 3

भारतभूमिमां गुरुजी पधार्या;
नगर–नगरमां गुरुजी पधार्या।

तारणहारी वाणीथी हिंद आखुं डोले रे,
गुरुजीनो महिमा भारतमां गाजे रे,
(भव्य जीवोनो आतम जागे रे।)... भारतखंडमां० 4

सम्मेदशिखरनी यात्रा करीने;
शाश्वत धामनी वंदना करीने;

भारतमां धर्मध्वज लहराव्या रे,
पगले पगले तुज आनंद वरस्या रे।... भारतखंडमां० 5

सीमंधरसभाना राजपुत्र विदेहे;
सतधर्म–प्रवर्तक संत भरते।

परम-प्रतापवंता गुरुजी पधार्या रे,
(भवभवना प्रतापशाळी गुरुजी पधार्या रे,)
चैतन्यधर्मना आंबा अहो! रोप्या रे,
नगर-नगरमां फाळ रुडा फाल्या रे... भारतखंडमां० 6

नगरे नगरे जिनमंदिर स्थपायां;
गुरुजी-प्रतापे कल्याणक उजवायां।

अनुपम वाणीनां अमृत वरस्यां रे,
भव्य जीवोनां अंतर उळजायां रे।
(सत्य धरमना पंथ प्रकाश्या रे।)... भारतखंडमां० 7

नभमंडळमांथी पुष्पोनी वर्षा;
आकाशे गंधर्वों गुरुगुण गाता।

अनुपम (अगणित) गुणवंता गुरुजी अमारा रे।
सातिशय श्रुतधारी, तारणहारा रे,
चैतन्य-चिंतामणि चिंतित-दातारा रे... भारतखंडमां० 8

सूरो मधुरा गुरुवाणीना गाजे;
सुवर्णपुरे नित्य चिद-रस बरसे।

ज्ञायकदेवनो पंथ प्रकाशे रे,
शास्त्रोनां ऊंडां रहस्यो उकेले रे... भारतखंडमां० 9

मंगलमूरति गुरुजी पधार्या;
अम आंगणिये गुरुजी बिराज्या।

महाभाग्ये मळिया भवहरनारा रे,
अहोभाग्ये मळिया आनंददाता रे,
पंचम काळे पधार्या गुरुदेवा रे,
नित्ये होजो गुरुचरणोनी सेवा रे... भारतखंडमां० 10

आध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी जन्मशताब्दी-विशेषांक

तंत्री : संपादक : शशिकान्त मनसुखलाल सेठ

If undelivered please return to :-

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ - 364250

स्वर्णपुरे धर्मायतनो सौ गुरुगुणकीर्तन गातां;
स्थळ-स्थळमां 'भगवान आत्म'ना भणकारा संभळाता;
—कण कण पुरुषारथ प्रेरे,

मुद्रक : अजित मुद्रणालय, सोनगढ़
कहान मुद्रणालय, सोनगढ़

कवर प्रिंटिंग : प्रीन्ट-ओ-ग्राफीक्स, मुम्बई

Licence No. 3 'Licensed to post without prepayment